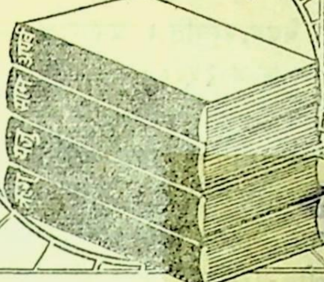
080047

080097



वेद प्रकाश



सुमनबाला एम. ए. (सुपुत्री श्री विजयकुमार-सम्पादक वेद प्रकाश) तथा डॉ० अरविन्द गुप्त एम. बी. बी. एस, एम. डी., (सुपुत्र श्री हरनारायण गुप्त) का पाणिग्रहण संस्कार १३ दिसम्बर १९७७ मंगलवार को श्री पं० चन्द्रभानु जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ।

—व्यवस्थापक

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १६७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

◈ ओ३म् ◈

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २७ अंक ६] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जनवरी, १९७८

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

सामवेद सूक्ति-सुधा

(स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती)

२२१. रास्व स्तोत्राय गिर्वणः । सा० २९४

वेदवाणियों द्वारा उपासना करनेवाले जीव ! तू अपने को परश्मेवर के लिए दे डाल, प्रभु के प्रति आतमसमर्पण कर दे ।

२२२. त्वष्टा नो दैव्यं वचः । सा० २९९

वेदवाणी हमारा निर्माण करनेवाली है ।

२२३. पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः । सा० २९९

पत्थर की लकीर के समान सत्यवचन, जो टल नहीं सकता, जो वस्तुतः हमारी रक्षा करनेवाला है, हमारी रक्षा करे, हमें असत्य आदि में गिरने से बचाए ।

२२४. इन्द्र सश्चसि दाशुषे । सा० ३००

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप आतमसमर्पण करनेवाले उपासक को प्राप्त होते हो ।

२२५. मघवन् भूय इन्नु ते दानम् । सा० ३००

हे ऐश्वर्यशाली ! तेरे दान बहुत हैं, सचमुच तेरे दान अनन्त हैं ।

२२६. युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी । सा० ३०१

वासनारूप विघ्नों का संहार करनेवाले साधक ! तू ज्ञान और कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को अपने शरीररूपी रथ में जोत ।

२२७. ज्योतिष्कृणोति सूनरी । सा० ३०३

सूनरी=उषा के समान वर्तमान ज्योतिष्मती प्रज्ञा जीवन में आध्यात्मिक प्रकाश भर देती है ।

२२८. अयं वामह्व ऽवसे शचीवसू । सा० ३०४

शचीवसू=प्रज्ञा और शक्तिरूप प्राणापानो ! मैं उपासक आप दोनों को अपनी रक्षा के लिए पुकारता हूँ ।

२२९. धत्तँ रत्नानि दाशुषे । सा० ३०६

हे प्राणायानो ! आपके प्रति अपना समर्पण करनेवाले के लिए, प्राणापान की साधना करनेवाले के लिए तुम रमणीय पदार्थ—शरीर का नैरोग्य, मन की पवित्रता और बुद्धि की तीक्ष्णता प्राप्त कराते हो ।

२३०. न सवनेषु चुक्रुधम् । सा० ३०७

हे प्रभो ! जीवन के प्रातः, माध्यन्दिन और सायन्तन—सभी सवनों में मैंने क्रोध नहीं किया ।

२३१. क ईशानं न याचिषत् । सा० ३०७

कौन ईश्वर से याचना नहीं करता ? अथवा, कौन ईश्वर को प्राप्त नहीं करना चाहता ।

२३२. अध्वर्यो द्रावया त्वम् । सा० ३०८

हे अहिंसामय उपासना यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले उपासक ! तू काम-क्रोध, लोभ आदि की भावनाओं को दूर भगा दे ।

२३३. सोममिन्द्रः पिपासति । सा० ३०८

इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव आध्यात्मिक भक्तिरस का पान करना चाहता है ।

२३४. इन्द्र ज्यायः कनीयसः । सा० ३०९

परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप बड़े हैं और मैं छोटा हूँ ।

२३५. पुरुवसुर्हि मघवन् बभूविथ । सा० ३०९

हे पवित्र ऐश्वर्यवाले प्रभो ! आप निश्चय ही अनन्त धन वाले हैं, अतः मुझे भी धन प्राप्त कराइए ।

२३६. रदावसो न पायत्वाय रँसिषम् । सा० ३१०

हे सम्पत्तियों के दाता ! मैं पाप कर्म के लिए आपकी दी सम्पत्ति में रमण न करूँ । अथवा, मैं पाप कर्मों के लिए धन न दूँ ।

२३७. अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि । सा० ३११

हे जीव ! अपनी शक्तियों को पहचान । तू अशुभ कर्मों और भावनाओं को नष्ट करनेवाला है, अपने जीवन में सद्गुणों का विकास करनेवाला है, मार्ग में आनेवाली विघ्न-बाधाओं का नाशक है ।

२३८. त्वं तूर्य तरुष्यतः । सा० ३१२

हे उपासक ! तू तेरी हिंसा करनेवाली अशुभ एवं हिंसक वृत्तियों को कुचल डाल ।

२३९. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि । सा० ३१४

हे परमेश्वर ! आप द्वारा प्रदत्त इस मिट्टी के घर में तेरे बैठने के लिए हृदयरूप स्थान बनाया गया है ।

२४०. सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा । सा० ३१६

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! भक्तिरस को जीवन में भरपूर करते हुए हम आपकी स्तुति करते हैं ।

२४१. आ नो भर सुवितं यस्य कोना । सा० ३१६

हे प्रभो ! आप सुगति को, भद्र को, श्रेष्ठ वस्तु को हमें प्रदान कीजिए, जिसे आप हमारे लिए उचित समझते हैं । अथवा, हमें मोक्ष प्रदान कीजिए जिसे हम चाहते हैं ।

२४२. तनात्मना सह्यामात्वोताः । सा० ३१६

हे परमेश्वर ! आप द्वारा रक्षित हम अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्तियों द्वारा आसुरी भावनाओं का पराभव करें ।

२४३. जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् । सा० ३१७

हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! हम तेरे उत्साहवर्धक और दानशील हाथ को पकड़ते हैं, तेरा आश्रय और सहारा लेते हैं ।

२४४. अस्मभ्यं चित्रं वृषणँ रयिं दाः । सा० ३१७

हे प्रभो ! हम उपासकों को आप अद्भुत, आनन्दवर्षी आध्यात्मिक धन प्रदान कीजिए ।

२४५. इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते । सा० ३१८

देवासुर संग्राम में, व्युत्थान और निरोध वृत्तियों में चलनेवाले संग्राम में उपासकजन परमैश्वर्यशाली प्रभु को सहायता के लिए पुकारते हैं ।

२४६. वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम् । सा० ३१९

कर्मशील उपासक परमैश्वर्यशाली परमात्मा को प्राप्त करते हैं ।

२४७. अप ध्वान्तमूर्णुहि । सा० ३१९

हे प्रभो ! आप अविद्या-अन्धकार के पर्दे को हटा दीजिए ।

२४८. पूर्द्धि चक्षुः । सा० ३१९

प्रभो ! हमारी आँखों को ज्ञान-ज्योति से पूर्ण कर दीजिए ।

२४९. मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् । सा० ३१९

प्रभो ! पक्षियों की भाँति संसार-जल में बद्ध हम लोगों को मुक्त कर दीजिए ।

२५०. मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्तु । सा० ३२४

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! प्राणों के साथ तेरी मित्रता हो । तू प्राण-साधना कर ।

२५१. देवस्य पश्य काव्यम् । सा० ३२५

परमेश्वर के वेदरूपी काव्य को देखो । वेद का स्वाध्याय करो ।

२५२. अद्या ममार स ह्यः समान । सा० ३२५

जो कल जीवित था, श्वास ले रहा था, वह आज मर गया ।

२५३. करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युः । सा० ३२७

परमात्मा सबका हित करनेवाले हैं, सब के स्वामी हैं। वे उपासकों को संसार-सागर से पार उतार देते हैं।

२५४. प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । सा० ३२८

हे उपासको ! प्रकृष्ट ज्ञान के लिए कल्याण कारक मति का सम्पादन करो।

२५५. शुन ँ हुवेम । सा० ३२९

हम उपासकगण सुखस्वरूप परमेश्वर का आह्वान करते हैं।

२५६. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्य । सा० ३३०

ज्ञान, यश और श्री की प्राप्ति के लिए वेदमन्त्रों का उच्चस्वर से गान किया करो।

२५७. इन्द्र ँ समर्ये महया वसिष्ठ । सा० ३३०

हे वसिष्ठ=वशियों, प्राणों का निरोध करनेवालों में श्रेष्ठ उपासक ! तू उत्तम जितेन्द्रिय बनने के लिए परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की उपासना कर।

२५८. गायन्ति त्वा गायत्रिणः । सा० ३४२

हे प्रभो ! साम मन्त्रों का गान करनेवाले आपके ही गीत गाते हैं।

२५९. अर्चन्त्यर्कमर्किणः । सा० ३४२

हे प्रभो ! ऋचाओं वाले, वैज्ञानिक भी अर्चना के योग्य आपकी ही उपासना करते हैं।

२६०. इममिन्द्र सुतं पिब । सा० ३४४

हे परमेश्वर ! हमारे द्वारा निष्पादित इस भक्तिरस को स्वीकार कीजिए। अथवा, हे जीव ! तू अपने शरीर में उत्पन्न वीर्य-बिन्दुओं का पान कर, उन्हें अपने शरीर में सुरक्षित रखकर शरीर का अंग बना। इस प्रकार तू सोमपायी बन।

२६१. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र । सा० ३४६

हे इन्द्र ! जो उपासक अन्तर्मुख होकर उपासना करता है तू उसकी पुकार को सुन।

२६२. रायस्पूर्धि महा ँ असि । सा० ३४६

प्रभो ! आप महान् हैं। हमें आध्यात्मिक धन-सम्पदाओं से परिपूर्ण कर दीजिए।

२६३. दिवं यय दिवावसो । सा० ३४८

हे परमेश्वर के प्रकाश के साथ रहनेवाले उपासक ! तू प्रकाशमय लोक= मोक्ष को प्राप्त कर।

२६४. एतोन्विन्द्र ँ स्तवाम शुद्धम् । सा० ३५०

हे उपासको ! शीघ्र आओ। हम सब मिलकर परमेश्वर की उपासना करें जो शुद्ध एवं पवित्र है।

२६५. सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति । सा० ३५१

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! तेरे शरीर में निष्पन्न यह वीर्यशक्ति तेरी सर्वविध उन्नति के लिए है ।

२६६. स्वधापते मदः । सा० ३५१

स्वधारण शक्तियों के स्वामिन् ! तू हर्षयुक्त हो, तेरा जीवन उल्लासमय हो ।

२६७. उग्रं वचो अपावधीः । सा० ३५३

हे उपासक ! तू कठोर वचनों को त्याग दे ।

२६८. स पूर्व्यो महोनाम् । सा० ३५५

वह परमेश्वर संसार की महाशक्तियों में प्रथम महाशक्ति है ।

२६९. गृणीषे शवसस्पतिम् । सा० ३५७

मैं उस प्रभु की स्तुति करता हूँ जो बलों का स्वामी है ।

२७०. दधिक्राव्णो अकारिषम् । सा० ३५८

मैं जगत् के धारक और निर्माता परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ।

२७१. सुरभि नो मुखा करत् । सा० ३५८

परमेश्वर हमारे मुखों को सुरभित करता रहे अर्थात् हम सदा मधुर ही बोलें ।

२७२. इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता । सा० ३५९

परमैश्वर्यशाली परमात्मा संसार की विविध क्रियाओं का धारक है ।

२७३. अर्चत प्रार्चता नरः । सा० ३६२

हे मुमुक्षुओ ! तुम परमेश्वर की अर्चना करो, भक्तिपूर्वक खूब अर्चना करो ।

२७४. प्रियमेधासो अर्चत । सा० ३६२

भगवत्सत्संग प्रिय उपासको ! तुम भी परमेश्वर की अर्चना किया करो ।

२७५. पुरभिद् धृष्ण्वर्चत । सा० ३६२

हे उपासको ! शरीररूपी पुर की अर्चना करने के समान तुम काम-क्रोध आदि की वासनाओं को परास्त करनेवाले प्रभु की उपासना किया करो ।

२७६. द्युम्नँ सुदत्र मँहय । सा० ३६६

हे उत्तम दानी ! उत्तम पालक ! हमें दिव्यधन, यशस्वी ऐश्वर्य प्रदान कीजिए ।

२७७. ऋचँ साम यजामहे । सा० ३६९

हम अपने जीवन में विज्ञान और भक्ति को संगत करते हैं ।

२७८. श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवे । सा० ३७१

हे उपासक ! काम-क्रोध आदि को भस्म करनेवाले तेरे सर्वोत्कृष्ट संकल्प के लिए मैं तुझे आदरणीय, श्रद्धा के योग्य समझता हूँ ।

२७९. भ्यसाते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः । सा० ३७१

हे वज्रतुल्य शरीरवाले नर ! तेरे बल से सारी पृथिवी=पृथिवी के निवासी काँप उठते हैं।

२८०. समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवः । सा० ३७२

हे उपासको ! जो परमेश्वर अपनी शक्ति के कारण द्युलोक=प्रकाशमय लोक का पति है, तुम सब मिलकर उसकी उपासना करो।

२८१. य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम् । सा० ३७२

वह परमात्मा ही लोगों के लिए सतत जानने योग्य है, वही हमारा चरम और परम लक्ष्य है।

२८२. स पूर्व्यः । सा० ३७२

वह परमेश्वर पूर्वकाल से विद्यमान है। वह पूर्ण करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ है।

२८३. नूतनमाजिगीषम् । सा० ३७२

हे उपासक ! तू निश्चय कर की मैं स्तुति के योग्य प्रभु को अवश्य प्राप्त करूँगा।

२८४. एक इत् । सा० ३७२

वह परमेश्वर एक ही है।

२८५. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत । सा ३७३

हे बहुतों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर ! ये हम उपासकगण आपके हैं, केवल आपके ही हैं।

२८६. त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो । सा० ३७३

हे प्रभूत सम्पत्तिशाली ! हम तेरा आश्रय लेकर संसार में विचरण करते हैं।

२८७. न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् । सा० ३७३

हे वेदवाणियों द्वारा आराधने योग्य ! आपसे भिन्न कोई भी शक्ति वेद-वाणियों का मुख्य विषय नहीं है।

२८८. क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः । सा० ३७३

जैसे पृथिवी पदार्थों को अपनी ओर खेंचती है, उसी प्रकार प्रभो ! आप हमारे स्तुति-वचनों को सुनें।

२८९. अभि त्यं मेषम् । सा० ३७६

हे उपासक ! तू उस प्रभु की ओर अभिमुख हो, चल, जो आनन्द की वर्षा करनेवाला है।

२९०. मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत । सा० ३७६

हे उपासको ! तुम महादानी और परिपूर्ण प्रभु की सब प्रकार से अर्चना किया करो।

२९१. त्यँ सु मेषं महया । सा० ३७७

हे मनुष्यो ! तुम उस प्रभु की उपासना करो जो आनन्द रस की वृष्टि करनेवाला है ।

२९२. इन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः । सा० ३७७

मैं जीवन-यात्रा में काम-क्रोध आदि दोषों का वर्जन करके अपनी रक्षा के लिए अपने-आपको परमैश्वर्यशाली प्रभु की ओर मोड़ता हूँ ।

२९३. प्र मंदिने पितुमदर्चता वचः । सा० ३८०

हे उपासको ! तुम परमानन्द स्वरूप और आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभु के लिए प्रार्थना-वचनों का खूब उच्चारण किया करो साथ ही प्रभु के नाम पर अन्नादि भोग्य पदार्थों का दान भी दिया करो ।

२९४. मरुत्वन्तँ सख्याय हुवेमहि । सा० ३८०

हम उपासकों के एकमात्र स्वामी परमात्मा को मित्रता के लिए पुकारते हैं।

२९५. तमु अभि प्र गायत पुरुहूतम् । सा० ३८२

जो परमात्मा अनेक नामों से स्मरणीय है, उसी प्रभु को लक्ष्य करके तुम खूब गान किया करो ।

२९६. एन्दुमिन्द्राय सिंचत । सा० ३८६

परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए तुम सोम=वीर्य को अपने अन्दर सींचो ।

२९७. एतो न्विन्द्रँ स्तवाम सखायः । सा० ३८७

हे मैत्री भावनावाले उपासको ! शीघ्र आओ, जिससे हम सब मिलकर परमैश्वर्यशाली प्रभु का स्तवन करें ।

२९८. इन्द्राय साम गायत । सा० ३८८

हे उपासको ! परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए सामगान करो ।

२९९. एन्द्र नो गधि । सा० ३९३

हे परमेश्वर ! आप हमें प्राप्त हूजिए ।

३००. आदित्यासो युयोतना नो अँहसः । सा० ३९७

हे उच्चकोटि के विद्वानो ! आप हमें कुटिलता और पापों से पृथक् कीजिए।

३०१. पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा । सा० ३९८

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! तू आध्यात्मिक भक्तिरस का, प्रभु के आनन्दामृत का पान कर । पान किया गया यह अमृत तुझे मस्त और उल्लास-मय बना दे ।

३०२. त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । सा० ३९९

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! तू अनादि काल से, स्वभाव से बन्धु और नेता रहित है । आपका कोई नेता नहीं और न ही आपका कोई सांसारिक बन्धु है ।

३०३. आ गन्त मा रिषण्यत । सा० ४०१

हे मनुष्यो ! उपासना मार्ग की ओर आओ । उपासना मार्ग से विमुख होकर तुम नष्ट मत होओ ।

३०४. प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः । सा० ४०१

शम-दम आदि उत्तम विचारों में स्थित मित्रो ! उपासनामार्ग से दूर मत हटो, प्रभु-स्तुति में सम्मिलित होओ । सदा उत्साह सम्पन्न बनो ।

३०५. सोमँ सोमपते पिब । सा० ४०२

हे भक्तिरस के स्वामिन् ! आप भक्तिरस को स्वीकार कीजिए ।

३०६. वयं प्रतिश्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि । सा० ४०३

हे सुखवर्षी प्रभो ! आपकी सहायता से हम फुंकार मारते हुए काम, क्रोध, अहंकार आदि आसुरी सर्पों को युद्ध के लिए ललकार दें ।

३०७. त्वं न इन्द्र आ भर ओजो नृम्णम् । सा० ४०५

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप हमारे जीवनों में ओज, यश, सुख और धन को खूब भर दीजिए ।

३०८. इत्था हि सोम इन्मदः । सा० ४१०

वास्तव में भक्तिरस ही ऐसा रस है जो आनन्द देनेवाला, हर्षित करनेवाला और तृप्ति देनेवाला है ।

३०९. इन्द्रो मदाय वावृधे । सा० ४११

इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव आनन्द-प्राप्ति के लिए बढ़ता चलता है ।

३१०. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि । सा० ४१३

हे साधक आगे बढ़ । तू शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ और अपने काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कुचल डाल ।

३११. न ते वज्रो नि यँसते । सा० ४१३

हे उपासक ! तेरा वज्र, तेरी गति रोकी नहीं जा सकती ।

३१२. इन्द्र नृम्णँ हि ते शवः । सा० ४१३

हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! तेरा बल शत्रुओं को झुका देनेवाला है ।

३१३. हनो वृत्रं जया अपः । ४१३

हे उपासक ज्ञान के आवरक काम-क्रोध आदि को नष्ट कर दे और यज्ञरूप कर्म=श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन कर ।

३१४. अर्चन्ननु स्वराज्यम् । सा० ४१३

हे उपासक ! तू आत्मिक स्वराज्य को प्राप्त कर ।

३१५. युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी । सा० ४१४

हे उपासक ! जिनसे मद चू रहा है, ऐसे ज्ञान और कर्मेन्द्रियरूप दो प्रकार के घोड़ों को तू अपने शरीररूपी रथ में जोत, योगयुक्त कर ।

३१६. अस्माँ इन्द्र वसौ दधः । सा० ४१४

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! हमें उत्तम स्थिति में, सम्पत्ति में स्थापित कीजिए ।

३१७. योजा न्विन्द्र ते हरी । सा० ४१५

हे मानव ! तू अपने इन्द्रियरूपी घोड़ों को लोकहित के लिए जोत, इन्हें प्राणिमात्र के कल्याण में लगा ।

३१८. कदा नः सूनृतावतः कर । सा० ४१६

हे प्रभो ! आप हमारी वाणियों को सत्य, प्रिय और माधुर्ययुक्त कब बनाएँगे ।

३१९. चन्द्रमा अप्स्वाऽऽन्तरा । सा० ४१७

हमारा मन सदा कर्मों में व्याप्त रहे । मन कभी खाली न रहे ।

३२०. सुपर्णो धावते दिवि । सा० ४१७

जीवात्मा सदा ज्ञानरूपी नदी में स्नान करता हुआ अपने को पवित्र बनाता रहे ।

३२१. न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतः । सा० ४१७

हे जीवो ! धन के चक्र में फँसे, ९९ के चक्र में फँसे लोग परमात्मा के पद=मोक्ष, स्थान को नहीं पा सकते ।

३२२. महे नो अद्य बोधयोषो राये । सा० ४२१

हे आध्यात्मिक उषा ! महान् आध्यात्मिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए तू हमें आज ही, वर्तमान जीवन में ही बोधयुक्त कर, जागरित कर ।

३२३. भद्रं नो अपि वातय मनः । सा० ४२२

हे प्रभो ! हमारे मन को भद्रता की ओर, शुभ-चिन्तन की ओर प्रेरित कीजिए ।

३२४. श्रिय ऋण्वः । सा० ४२३

हे मानव ! शोभा के लिए महान् बन, विशाल हृदय बन । अथवा, सम्पत्ति प्रदान करने के लिए परमात्मा सर्वोच्च शक्ति है ।

३२५. अग्निं तं मन्ये यो वसुः । सा० ४२५

मैं अग्नि=प्रगतिशील उसे मानता हूँ जो संसार में रहने का प्रकार जानता है ।

३२६. अस्तं यं यन्ति धेनवः । सा० ४२५

मैं घर उसे मानता हूँ जिसमें गौएँ प्राप्त होती हैं ।

३२७. अस्तमर्वन्त आशवः । सा० ४२५

मैं घर उसे मानता हूँ जिसमें तीव्रगामी घोड़े होते हैं ।

३२८. अस्तं नित्यासो वाजिनः । सा० ४२५

घर वह है जिसमें स्थिर वाज=बल, शक्तिवाले, यौवन के उल्लास से पूर्ण मनुष्य निवास करते हैं ।

३२९. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम । सा० ४२७

हे भक्तिरस ! तू सांसारिक बन्धनों को त्यागकर परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिए शीघ्र प्रवाहित हो जा, शीघ्रता से परमेश्वर को मुझे प्राप्त करा दे ।

३३०. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये । सा० ४२८

हे भक्तिरस ! तू सांसारिक बन्धनों को त्यागकर आध्यात्मिक शक्तियों की प्राप्ति के लिए शीघ्र प्रवाहित हो जा ।

३३१. परि वृत्राणि सक्षणिः । सा० ४२८

हे भक्तिरस ! तू सांसारिक बन्धनों का परित्याग करके काम क्रोध आदि पाप-वृत्रों का पराभव कर दे ।

३३२. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः । सा० ४२६

हे सोम्यस्वरूप परमात्मन् ! तू मुझे पवित्र बना दे जिससे मैं उदार बनूं और आनन्द से युक्त हो जाऊँ ।

३३३. पवस्व सोम महे दक्षाय । सा० ४३०

हे सोम ! तू मेरे जीवन को पवित्र बना जिससे मैं महान् दक्षता के लिए समर्थ होऊँ ।

३३४. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाय । सा० ४३१

चन्द्रमा की भाँति आह्लाद प्रदान करनेवाले इन्दु=वीर्य-बिन्दु जीवन को पवित्र बनाते हैं । ये सौन्दर्य के हेतु बनते हैं, आनन्द और तृप्ति प्रदान करते हैं ।

३३५. आविर्मर्य्याः । सा० ४३५

हे मनुष्यो ! अपना विकास करो । उन्नत और उन्नत बनो ।

३३६. आ वाजं वाजिनो अग्मं । सा० ४३५

मैं ज्ञानस्वरूप प्रभु के ज्ञान को प्राप्त करूँ ।

३३७. स्वर्गा ँ् अर्वन्तो जयत । सा० ४३५

हे मनुष्यो ! तुम प्रगतिशील होकर काम आदि शत्रुओं का नाश करते हुए स्वर्गीय जीवनों पर विजय प्राप्त करो । अथवा, तुम सुखमय स्थानों तथा मोक्ष को जीतो ।

३३८. विश्वतो दावन् विश्वतो न आ भर । सा० ४३७

हे सब ओर से दानशील प्रभो ! आप सब प्रकार के दानों से हमें भर दीजिए । आप हमें धन-धान्य, सम्पत्ति और सुख से पूर्ण कीजिए । आप हमारे शरीरों को नीरोगता से, इन्द्रियों को शक्ति से, मन को विशालता से और बुद्धि को ज्ञान से भर दीजिए ।

३३९. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुः । सा० ४४०

मनुष्य वे हैं जो अपने शरीररूपी रथ को शम-दम आदि के द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा के लिए साधते हैं, तैयार करते हैं ।

३४०. शं पदं मघं रयीषिणः । सा० ४४१

दानशील मनुष्य पाप रहित, सर्वश्रेष्ठ, निर्मल ऐश्वर्य से पूर्ण, पूर्ण शान्ति के स्थान ब्रह्म को प्राप्त करते हैं ।

३४१. न काममव्रतो हिनोति । सा० ४४१

अव्रती=दानव्रत से शून्य व्यक्ति कितना ही हाथ-पैर मारे, उस शान्ति के धाम प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता ।

३४२. सदा गावः शुचयो विश्वधायसः । सा० ४४२

उपासक लोग सदा मन-वचन और कर्म से शुद्ध, पवित्र और निर्मल होते हैं। वे विश्व का पालन-पोषण करते हैं। अथवा, गौएँ सदा पवित्र हैं, ये दूध पिलाकर सब का पालन-पोषण करती हैं।

३४३. सदा देवा अरेपसः । सा० ४४२

देवा=दानशील विद्वान् सदा निष्पाप होते हैं।

३४४. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिम् । सा० ४४४

मधुमती चित्तवृत्ति वाले चित्त में निवास करते हुए हम-योगिजन परमेश्वर रूपी महाधन का पोषण करें। अथवा, मधुमय शरीर में निवास करते हुए और प्रगतिशील रहते हुए हम धनों का पोषण करें।

३४५. धीमहे त इन्द्र । सा० ४४४

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! हम आपका ध्यान करते हैं।

३४६. अर्चन्त्यर्कं मरुतः । सा० ४४५

प्राणायाम के अभ्यासी मनुष्य उपासनीय प्रभु की अर्चना करते हैं।

३४७. श्रुतो युवा स इन्द्रः । सा० ४४५

वह परमैश्वर्यशाली प्रभु सदा युवा, अजर, अमर, अशुभ को दूर करने वाला और शुभ को प्राप्त करानेवाला प्रसिद्ध है।

३४८. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता । सा० ४४८

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आप हमारे निकटतम मित्र हैं और आप ही हमारे रक्षक हैं।

३४९. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति । सा० ४५१

जैसे प्रातःकाल की उषा अपनी बहन रात्रि के अन्धकार को दूर कर देती है, वैसे ही हृदयाकाश में प्रकट होनेवाली आध्यात्मिक ज्योति साधक के अविद्या अन्धकार को हटा देती है।

३५०. इमा नु कं भुवना सीषधेम । सा० ४५२

अब हम उपासक इन भुवनों=लौकिक वस्तुओं को सुख-प्राप्ति के लिए साधन बनाएँ। लौकिक वस्तुएँ हमारे साधन रहें, साध्य न बन जाएँ।

३५१. इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः । सा० ४५३

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! तेरे से दान के प्रवाह बहें। तू दानशील बन।

३५२. वाजं देवहितं सनेम । सा० ४५४

हम देवों के लिए हितकर ज्ञान को प्राप्त करें।

३५३. मदेम शतहिमा सुवीराः । सा० ४५४

हम आनन्दित रहें। हमारा जीवन उल्लासमय हो। हम सौ वर्ष तक जीएँ और उत्तम धर्मवीर, दानवीर, कर्मवीर सन्तानों को प्राप्त करें।

३५४. पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र । सा० ४५५

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! हमारे लिए परिपुष्ट अन्न और प्रभूत सम्पत्ति प्रदान कीजिए ।

३५५. इन्द्रो विश्वस्य राजति । सा० ४५६

परमैश्वर्यशाली परमेश्वर सारे संसार का शासक है ।

३५६. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानम् । सा० ४६०

मैं उस परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का बार-बार श्रद्धा और भक्ति से आह्वान करता हूँ जो पाप शून्य ऐश्वर्यों का स्वामी है ।

३५७. पुरो अग्नि धिया दध । सा० ४६१

मैं ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को अपनी बुद्धियों और धारणाओं के द्वारा सदा अपने सम्मुख रखता हूँ ।

३५८. प्रवो महे मतयो यन्तु । सा० ४६२

हे उपासको ! तुम्हारी बुद्धियाँ महान् परमेश्वर के प्रति प्रयाण करें ।

३५९. अर्चामि सत्यसवम् । सा० ४६४

मैं हृदयस्थ होकर सदा सत्य की प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर की अर्चना करता हूँ ।

३६०. कृधी नो यशसो जने । सा० ४७९

हे परमेश्वर ! मनुष्य समाज में हमें यशस्वी बना ।

३६१. विश्वा अप द्विषो जहि । सा० ४७९

प्रभो ! हमारी सब प्रकार की द्वेष भावनाओं को हमसे दूर करके नष्ट कर दीजिए ।

३६२. पवस्व देव आयुषक् । सा० ४८३

देव=दिव्य भक्तिरस ! तू आजीवन मुझ में प्रवाहित हो और मुझे पवित्र बना ।

३६३. वायुमारोह धर्मणा । सा० ४८३

हे उपासको ! तुम यम-नियम आदि धर्मों की साधना के द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा में स्थित होओ । अथवा, योग के धारणा आदि साधनों द्वारा वायु= आकाश गगन आदि सिद्धियों को प्राप्त करो ।

३६४. इन्दुं देवा अयासिषुः । सा० ४८७

दिव्यगुण और दिव्य जीवनवाले साधक, योगिजन आनन्दमय जीवन प्राप्त करते हैं ।

३६५. इन्दुरिन्द्राय धीयते । सा० ४८९

चन्द्रसम आह्लादक भक्तिरस इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव के लिए धारण किया जाता है ।

३६६. नुदस्वादेवयुं जनम् । सा० ४९२

हे ज्ञानिन् ! परमात्मा की उपासना न करनेवाले मनुष्य को ऐसी प्रेरणा कर कि वह भोग की वृत्ति छोड़कर आत्मा-परमात्मा की ओर झुकाव वाला बने । अथवा प्रभु की उपासना न करनेवाले का संग छोड़ दे ।

३६७. तरत् स मन्दी धावति । सा० ५००

जो उपासक उपासना मार्ग पर दौड़ लगाता है, वह आनन्दित हो जाता है और संसार-सागर से पार उतर जाता है ।

३६८. आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम । सा० ५०१

हे सोम ! आनन्दमय भक्तिरस ! तू मुझे वह आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करा जो सांसारिक सम्पत्तियों से सहस्रों गुणा श्रेष्ठ है ।

३६९. अस्मे श्रवांसि धारय । सा० ५०१

हे भक्तिरस ! तू हमारे जीवन में दिव्यश्रवण आदि अनुभूतियों को धारण कर ।

३७०. इन्दो रुचाभि गा इहि । सा० ५०५

हे चन्द्रसम शीतल भक्तिरस ! तू अपने रुचिकर प्रवाह द्वारा उपासक की इन्द्रियों को आप्लावित कर दे । अथवा, हे चन्द्रमा के समान कान्तिमान जीव ! तू ज्ञान से देदीप्यमान होने के लिए वेदवाणी की ओर चल, वेदवाणी का अध्ययन कर ।

३७१. अप सोमो अराव्णः । सा० ५१०

भक्तिरस हमारे जीवनों से अदान भावनाओं को दूर करता है ।

३७२. सोम उ ष्वाणः । सा० ५१५

भक्तिरस निश्चय ही जीवन में उत्तम प्राण शक्ति का संचार करता है, अथवा अन्तर्नाद उत्पन्न करता है ।

३७३. तवाहं सोम रारण सख्ये । सा० ५१६

हे चन्द्रमा के समान आनन्दप्रद प्रभो ! मैं तेरी मित्रता के निमित्त तेरे नामों को जपता हूँ, तेरे गुणों का गान करता हूँ ।

३७४. देवेभ्यः सोम मत्सरः । सा० ५२१

हे भक्तिरस ! तू दैवी-सम्पत्ति को प्राप्त उपासकों के लिए आनन्द एवम् उल्लास का देनेवाला है ।

३७५. वराहो अभ्येति रेभन् । सा० ५२४

सात्विक आहार करनेवाला स्तुति करता हुआ परमात्मा की ओर चलता है ।

३७६. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवः । सा० ५२६

मनुष्य उस प्रभु की प्रेरणा और अपनी क्रियाशीलता द्वारा अपने जीवन को पवित्र करता हुआ देव बनता है ।

३७७. देवो देवेभिः सम्पृक्त रसम् । सा० ५२६

दिव्यगुणयुक्त उपासक दिव्य गुणों के द्वारा आनन्दमय प्रभु के सम्पर्क में आता है।

३७८. मधुमाँ इन्द्र सोमः । सा० ५३१

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! सोमस्वरूप वह प्रभु आनन्दमय है, रस का स्रोत है।

३७९. वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः । सा० ५३१

वह परमात्मा आनन्द की वर्षा करनेवाला है अतः वह दीन-दुःखी प्राणियों पर सुख की वर्षा करनेवाले, दानशील उपासक के हृदय में व्याप्त होता है।

३८०. अभ्यर्चाम देवां । सा० ५३५

हम देवों=माता-पिता, आचार्य, अतिथि का आदर करें।

३८१. स्वादुः पवतामति वारमव्यम् । सा० ५३५

माधुर्यमय जीवनवाले हम ज्ञान के विघ्नभूत काम को लाँघ जाएँ। अथवा, पार्थिव भोगों के घेरे को लाँघ जाएँ।

३८२. आसीदतु कलशं देव इन्दुः । सा० ५३५

इस सोलह कलापूर्ण शरीर में चन्द्रमा के समान आह्लादक, सर्वशक्तिमान् और सकलैश्वर्य सम्पन्न प्रभु आकर विराजमान हों।

३८३. अप श्वाँ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् । सा० ५४५

हे उपासक मित्रो ! तुम लम्बी जिह्वावाले कुत्ते=लोभवृत्ति और लोभी मनुष्य को अपने से दूर करो।

३८४. सोमः पुनानो अर्षति । सा० ५४६

आनन्दप्रद परमेश्वर उपासक को पवित्र करता हुआ उसके हृदय में प्रकट होता है। अथवा, विनीत एवं अभिमान शून्य मनुष्य अपने जीवन को पवित्र करता हुआ ऋषि=तत्त्व द्रष्टा बनाता है।

३८५. देवान् गच्छन्तु वो मदाः । सा० ५४७

हे उपासको ! तुम्हारे तृप्तिकारक भक्तिरस तुम्हारी इन्द्रियों को भी तृप्त करें।

३८६. अप श्वानमराधसँ हता । सा० ५५३

हे उपासको ! उपासना न करनेवाले श्वानम्=लोभी, कामी और स्वजाति से द्रोह करनेवाले मनुष्य को अपने से दूर रखो, उनकी संगति मत करो।

३८७. सनिषन्तु नो धियः । सा० ५५५

हमारी बुद्धियाँ संविभागपूर्वक=बाँटकर सेवन करनेवाली हों।

३८८. सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् । सा० ५५७

मित्र मित्र की बात को नहीं टालता, वचन भंग नहीं करता।

३८९. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रव । सा० ५६१

हे आनन्दप्रद प्रभो ! तू साक्षात् होकर आत्मा के लिए आनन्दरस की धारा के रूप में प्रवाहित हो।

३९०. मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनः । सा० ५६१

दो वृत्तिवाले, छली-कपटी, संशय वृत्तिवाले, द्विविधा में पड़े हुए प्रभु के आनन्दरस की मस्ती को प्राप्त नहीं होते ।

३९१. द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः । सा० ५६१

इस संसार में इस जीवन में भक्तिरस के बिन्दुओं का संचय करनेवाले जीव ही वस्तुतः उत्तम धनवाले हैं, उन्होंने ही उत्कृष्ट परमार्थरूपी धन को कमाया है ।

३९२. हिरण्यपावा पशुमप्सु गृभ्णते । सा० ५६४

सुवर्ण की भाँति शुद्ध उपासक, शक्ति व ज्ञान का पान करनेवाले उपासक सर्वद्रष्टा परमात्मा को श्रद्धा भावों में निगृहीत करते हैं । अथवा, काम को कर्मों में निग्रहीत करते हैं, कर्मशील बनकर काम को जीतते हैं ।

३९३. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते । सा० ५६५

हे ब्रह्माण्ड और वेद के स्वामी ! तेरा पवित्र करनेवाला स्वरूप, आनन्दरस वैदिकज्ञान चारों ओर फैला हुआ है ।

३९४. अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते । सा० ५६५

जिसने अपने जीवन को तप की भट्टी में नहीं पकाया अतः अपरिपक्व है, वह पवित्र प्रभु को उसके आनन्दामृत को प्राप्त नहीं कर सकता ।

३९५. श्रृतास इद्वहन्त सं तदाशत । सा० ५६५

तपस्वी योगिजन ही अपनी जीवन-यात्रा को उत्तम प्रकार से चलाते हुए उस प्रभु को प्राप्त करते हैं ।

३९६. इन्द्रायेन्दो परि स्रव । सा० ५६७

हे भक्तिरस ! जीवात्मा के लिए प्रवाहित हो । हे आनन्दप्रद परमात्मन् ! आप परमैश्वर्य के लिए हम पर आनन्दरस की वर्षा कीजिए । प्रभो ! जीवात्मा पर कृपा-दृष्टि, करुणा-वृष्टि कीजिए ।

३९७. यज्ञैः परि भूषत श्रिये । सा० ५६८

हे मित्रो ! अपने जीवनों को श्रीसम्पन्न, शोभा एवं सौन्दर्ययुक्त बनाने के लिए अपने आपको शुभ कर्मों से अलंकृत करो ।

३९८. सखायो मदाय पुनानमभि गायत । सा० ५६६

हे मित्रो ! आनन्द के लिए, जीवन में मस्ती और उल्लास के लिए निरन्तर पवित्र करनेवाले प्रभु का गुणगान करो ।

३९९. पवस्व देववीतय इन्दो । सा० ५७१

हे आनन्दप्रद परमात्मन् ! दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हमारे जीवनों में प्रवाहित हो और उन्हें पवित्र कर ।

४००. आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः । सा० ५७१

हे आनन्दस्वरूप परमात्मन् ! आप मधुमान् हैं, माधुर्यरूप हैं । आप हमारे हृदय-कलश में आ विराजिए ।

४०१. शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय । सा० ५७४

प्रभो ! हमारी इन्द्रियों में पवित्रता का रंग भर दीजिए । अथवा, हमारी वाणी में पवित्र अक्षर रखिए, हम सदा सत्य, प्रिय एवं मधुर ही बोलें ।

४०२. गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि । सा० ५७५

प्रभो! हम वैदिक वाणियों द्वारा आपके स्वरूप को अपने जीवनों में बसाते हैं ।

४०३. पवते हर्यतो हरिरति ह्वराँसि रँह्या । सा० ५७६

क्लेशहारी और कामना=चाहने योग्य प्रभु अपने उपासकों को अति शीघ्र कुटिलताओं से पार ले जाते हैं ।

४०४. अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः । सा० ५७६

हे प्रभो ! अपने उपासकों को वीरता से पूर्ण यश प्राप्त कराइए, अपने स्तोताओं को धर्मवीर होने का यश प्राप्त कराइये ।

४०५. दिदीहि देव देवयुम् । सा० ५७९

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप देव को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले, देव को चाहनेवाले मुझ उपासक को बन्धनों से मुक्त कीजिए ।

४०६. वि कोशं मध्यमं युव । सा० ५७९

हे उपासक ! अपने मनोमय कोश को, अन्तःकरण को विकसित कर उसे अधर्म से पृथक् रखकर धर्म के साथ संयुक्त कर ।

४०७. आ सोता परि षिञ्चत । सा० ५८०

हे उपासको ! अपने जीवनों में भक्तिरस उत्पन्न करो और अपने आपको भक्तिरस में सराबोर कर दो ।

४०८. ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज । सा० ५८५

हे सर्वरक्षक ! पाप को कुचल डालनेवाले परमात्मन् ! जैसे कवचधारी सेनापति शत्रुओं का विनाश करता है, ऐसे ही आप हमारे काम-क्रोध आदि विकारों को नष्ट कीजिए ।

४०९. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम् । सा० ५८७

परमैश्वर्यशाली परमेश्वर जड़ और चेतन सारे संसार का शासक है ।

४१०. सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् । सा० ५९०

हे आनन्दप्रद परमात्मन् ! जीवन-संघर्ष में, देवासुर-संग्राम में हम सदा सफलता को प्राप्त करें ।

४११. वृषणं कृणुतैकमिन्माम् । सा० ५९१

प्रभो ! मुझे अद्वितीय शक्तिशाली बना दो । अथवा, हे उपासको ! देवासुर-संग्राम में विजय-प्राप्ति के लिए तुम आनन्दवर्षी, अद्वितीय शक्तिशाली मुझ परमेश्वर को ही एकमात्र अपना सहायक बनाओ ।

४१२. यो मा ददाति स इदेवमावत् । सा० ५९४

जो भी अपने आपको सर्वव्यापक परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है, वह समर्पण द्वारा अपनी रक्षा करता है और प्रभु को प्राप्त होता है ।

४१३. अन्नमदन्तमद्मि । सा० ५९४

जो व्यक्ति प्राकृतिक अन्नों को स्वादपूर्वक खाने में लगे हुए हैं प्रभु कहते हैं, मैं उन्हें खा जाता हूँ अर्थात् भोग-विलास में लीन व्यक्ति नाश को प्राप्त होता है।

४१४. मायाविनो ममिरे अस्य मायया । सा० ५९६

ज्ञान-प्रचारक के ज्ञान-प्रचार द्वारा बड़े-बड़े ठग भी श्रेष्ठ और महान् बन जाते हैं।

४१५. इन्द्रो वज्री हिरण्ययः । सा० ५९७

इन्द्रियों को वश में रखनेवाला जीव वज्र तुल्य शरीरवाला और ज्योतिर्मय मस्तिष्क वाला हो जाता है।

४१६. इन्द्र वाजेषु नोऽव । सा० ५९८

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! जीवन-संघर्षों में, वासनाओं के साथ होनेवाले संग्रामों में आप हमारी रक्षा कीजिए।

४१७. मयि वर्चो अथो यशः । सा० ६०२

हे प्रभो ! मेरे जीवन में ब्रह्मतेज और यश का निवास हो। मैं तेजस्वी और यशस्वी बनूँ।

४१८. सोम दिवि श्रवाँ स्युत्तमानि धिष्व । सा० ६०३

हे आनन्दप्रद परमात्मन् ! तू द्योतनात्मक मस्तिष्क में ज्ञानरूप उत्तम यश प्रदान कर।

४१९. त्वं ज्योतिषा तमो ववर्थ । सा० ६०४

हे उपासक ! तू ज्ञान-ज्योति के द्वारा अविद्या-अन्धकार को परे हटा, दूर फेंक।

४२०. अग्निमीडे । सा० ६०५

मैं ज्ञानस्वरूप सबको आगे ले जानेवाले परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना करता हूँ।

४२१. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञम् । सा० ६१०

सब भद्र-पुरुष, विद्वान् लोग मेरे यज्ञ को, श्रेष्ठ कर्मों को ही सुनें। विद्वानों को कभी ऐसा सुनने को न मिले कि मैंने कोई अयज्ञीय = अशुभ कर्म किया है।

४२२. मा वो वचाँसि परि चक्ष्याणि वोचम् । सा० ६१०

हे भद्रपुरुषो ! आप का बनकर मैं त्याज्य वचनों, अशुभ, कटु और कठोर वचनों को कभी न बोलूँ। मैं सदा सत्य, प्रिय और हितकर वचन ही बोलूँ।

४२३. यशो भगस्य विन्दतु । सा० ६११

मुझे ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य का यश प्राप्त हो।

४२४. यशो मा प्रतिमुच्यताम् । सा० ६११

मुझे यश ही यश प्राप्त हो।

४२५. यशसा३स्याः सँ सदोऽहं प्रवदिता स्याम् । सा० ६११

मैं इस मानव समाज का यशस्वी और उत्कृष्ट वक्ता बनूँ ।

४२६. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदाः । सा० ६१३

मैं स्वभाव से ही आगे बढ़नेवाला, उन्नति करनेवाला और ज्ञान-सम्पन्न हूँ ।

४२७. घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् । सा० ६१३

मेरी आँखों में स्नेह, प्रेम और मेरे मुख में अमृत, मधुर वचन हैं ।

४२८. अजस्रं ज्योतिः । सा० ६१३

मैं अक्षय्य=क्षीण न होनेवाली ज्योति हूँ ।

४२९. हविरस्मि सर्वम् । सा० ६१३

मैं पूर्णरूपेण हवि हूँ, अपने आपको लोकहित, जन-कल्याण के लिए समर्पित करनेवाला हूँ ।

४३०. वसन्त इन्नु रन्त्यः । सा० ६१६

हे प्रभो ! आप की बनाई वसन्त ऋतु कितनी रमणीय है ।

४३१. ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः । सा० ६१६

आहा ! ग्रीष्मऋतु भी कैसी रमणीय और आनन्दप्रद है ।

४३२. शिशर इन्नु रन्त्यः । सा० ६१६

अहो ! शिशिर ऋतु भी कितनी सुन्दर है ।

४३३. सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः । सा० ६१७

वह विराट् पुरुष सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा है ।

४३४. मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ । सा० ६२२

हे माता-पिताओ ! मैं आप दोनों को उत्तम पालन करनेवाला मानता हूँ ।

४३५. द्यावापृथिवी भवताँ स्योने । ६२२

माता और पिता, द्युलोक और पृथिवीलोक, प्राण और उदान हमें सुख देनेवाले हों ।

४३६. ते नो मुञ्चतमँ हसः । सा० ६२२

वे माता और पिता, स्त्री और पुरुष हमें पापों से बचाएँ ।

४३७. त्वा स्तुवन्ति कवयः । सा० ६२३

क्रान्तदर्शी विद्वान् प्रभु की स्तुति करते हैं ।

४३८. सहस्तन्न इन्द्र दद्धयोजः । सा० ६२५

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप हमें सहनशक्ति और ओज प्रदान कीजिए ।

४३९. वृत्रेषु शत्रून्त्सह ना कृधी नः । सा० ६२५

प्रभो ! काम-क्रोध आदि पाप वृत्रों के सम्बन्ध में आप हमें उन पापरूपी शत्रुओं को पराभव करनेवाला बनाइए ।

४४०. अग्न आयूँषि पव । सा० ६२७

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आप हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले हैं ।

४४१. आ सुवोर्जमिषं च नः । सा० ६२७

हे प्रभो ! आप हमें बल और अन्न, प्राणशक्ति और मोक्ष प्राप्त कराइए।

४४२. आरे बाधस्व दुच्छुनाम् । सा० ६२७

प्रभो ! दुष्ट-प्रवृत्तियों, दुर्वृत्तियों, कुत्तों की-सी कुप्रवृत्तियों को हम से दूर कीजिए।

४४३. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । सा० ६२९

वह परमात्मा जड़ और चेतन सारे संसार का आत्मा है।

४४४. ज्योतिष्कृदसि सूर्य । सा० ६३५

ज्ञान ज्योति से प्रकाशमान जीव ! तू ज्ञान-ज्योति का प्रसार करनेवाला, फैलानेवाला है।

४४५. त्वं वरुण पश्यसि । सा० ६३७

हे वरणीय प्रभो ! तू प्राणिमात्र के कर्मों और चेष्टाओं को देख रहा है।

४४६. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव । सा० ६४०

देव ! दिव्यगुणयुक्त उपासक ! शरीररूपी रथ में जुते हुए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धिरूपी—सात घोड़े तुझे परमेश्वर की ओर ले चलते हैं।

४४७. मघवन् विदा गातुम् । सा० ६४१

हे सर्वैश्वर्यशालिन् ! अपापविद्ध ! आप मुझे जीवनमार्ग का ज्ञान दीजिए।

४४८. शिक्षा शचीनां पते । सा० ६४१

हे पालक और पूरक शक्तियों के स्वामिन् ! वेदवाणियों के पति ! आप हमें सशक्त बनने की तथा वेदवाणियों की यथार्थ शिक्षा दीजिए।

४४९. प्रचेतन प्रचेतयः । सा० ६४२

हे प्रकृष्ट ज्ञान सम्पन्न प्रभो ! तू हमें सचेत कर, हमें बोध प्रदान कर।

४५०. इन्द्र द्युम्नाय न इषे । सा० ६४२

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! तुझे संसार में ज्ञान-ज्योति फैलाने के लिए भेजा गया है, दिव्य-धन=मोक्ष-प्राप्ति के लिए भेजा गया है, केवल अन्न= खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए नहीं।

४५१. आ याहि पिब मत्स्व । सा० ६४३

हे मानव ! इधर-उधर मत भटक। आध्यात्मिक मार्ग की ओर चल। भक्तिरस का पान कर और आनन्द लाभ कर।

४५२. भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु । सा० ६४४

संयमी लोगों का अनुसरण करता हुआ तू शक्तियों का स्वामी बन।

४५३. ऋञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् । सा० ६४४

जो शूरों में शूरतम है, जो जितेन्द्रिय है, काम और बाणों से आबिद्ध है, वही प्रभु की सच्ची आराधना करता है।

४५४. यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न्न शोचिः । सा० ६४५

जो ऐश्वर्यशालियों में सर्वाधिक दानदाता है, वह सूर्य की किरणों के समान चमकता है।

४५५. चिकित्वो अभि नो नय । सा० ६४५

हे ज्ञानसम्पन्न गुरो ! हमें धर्म-मार्ग की ओर ले चल ।

४५६. इन्द्रो विदे तमु स्तुहि । सा० ६४५

परमैश्वर्यशाली परमात्मा ज्ञानी हैं, ज्ञानदाता हैं । हे मानव ! तू उसी की स्तुति कर ।

४५७. ईशे हि शक्रः । सा० ६४६

जो जितेन्द्रिय होता है, वही शक्तिशाली बनता है ।

४५८. स नः स्वर्षदति द्विषः । सा० ६४६

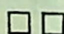
वह जगदीश्वर हमें द्वेष से छुड़ाकर सुख प्रदान करता है ।

४५९. इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे । सा० ६४७

मोक्षरूपी ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हम परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारते हैं ।

४६०. सुम्न आ धेहि नो वसो । सा० ६४८

हे सबको वास देनेवाले प्रभो ! हमें आनन्द में स्थापित कीजिए ।



गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहातमा आनन्द स्वामी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
” सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैतमीमांसा	६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश	७.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	२०.००
दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द**	१५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास	७.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था	८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	१.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज		५.००
महर्षि दयानन्द की देन		४.००
सत्यार्थप्रकाश	**स्वामी दयानन्द**	२५.००
संस्कारविधि	,,	४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	,,	८.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	,,	०.१५
आर्याभिविनय	,,	१.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	,,	०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला	,,	०.२५
बालशिक्षक	,,	०.३७
व्यवहारभानु	,,	१.००
सन्ध्या विनय	**नित्यानन्द वेदालंकार**	१.५०
पूर्व और पश्चिम	,,	७.५०
जीवन की राहें	,,	४.००
सु-राज्य की रूपरेखा	,,	०.५०
प्राणायामविधि	**नारायण स्वामी**	०.६०
आर्यसमाज क्या है ?	,,	१.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द**	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्यसिद्धान्त	२४.००
सांख्यदर्शन	१६.००
वेदान्तदर्शन	३०.००
वैशेषिकदर्शन	२५.५०
न्यायदर्शन	२४.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान	१.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना	१.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता	१.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त)	१.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द**	२.५०

बालोपयोगी

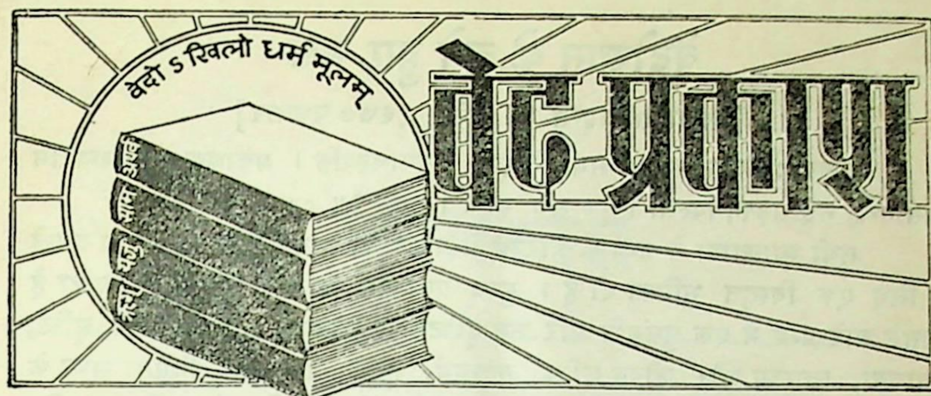
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

वैदिक धर्मशिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा	तृतीय भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	पंचम भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
वैदिक धर्मशिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



6-2

यज्ञ से रक्षा

11/2178

वषट् ते विष्णवास आकृणोमि
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः ।। सामवेद ।।

पदार्थ—(शिपिविष्ट) हे सूर्य की किरणों में व्याप्त ! (विष्णो) यज्ञ ! (ते) तेरे (आस) मुख में (वषट्) वषट्कारपूर्वक आहुति (मा कृणोमि) करता हूँ (तत्) उस वषट्कारपूर्वक (मे) मेरे (हव्यम्) घृतादि को (जुषस्व) तू सेवित-स्वीकृत कर (मे) मेरी (सुष्टुतयः) सुन्दर स्तुति-युक्त (वाचः) वाणियाँ (त्वा) तुझ यज्ञ को (वर्धन्तु) बढ़ावे (यूयम्) तू (स्वस्तिभिः) कल्याणों, भलाइयों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा कर ।

भावार्थ—जो लोग यज्ञानुष्ठान करते, स्वाहा, स्वधा, वषट्, श्रौषट्, वौषट् इत्यादि तथा विनियोग शब्दों के द्वारा उस यज्ञ के प्रचार तथा अनुष्ठान से लोक में यज्ञ को बढ़ाते हैं, यज्ञदेव सदा सब भलाइयों द्वारा उनकी रक्षा करता है । यह इस मन्त्र का भाव है ।

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १९७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २७ अंक ७] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [फरवरी, १९७८

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

अग्निहोत्र-अंक

(स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती)

अथ आचमनमन्त्राः

अपने-अपने जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने के लिए बैठे हों निम्न मन्त्रों से तीन आचमन करें अर्थात् एक-एक से एक-एक बार आचमन करें।

ओम्[1] अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।।—तैत्तिरीयारण्य० १।३२

हे (अमृत) अमृत अखण्डैकरस, अविनाशी प्रभो ! तू (उपस्तरणम्) मेरे नीचे का बिछौना (असि) है। (स्वाहा) यह मैं यथार्थरूप से समझ रहा हूँ।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।—तैत्ति० १।३३

हे (अमृत) नित्यशुद्धबुद्धमुक्त शान्त स्वभाव परमात्मन् ! तू (अपिधानम्) मेरे ऊपर का ओढ़ना (असि) है। (स्वाहा) यह मैं ठीक-ठीक समझ रहा हूँ।

ओम् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।—तैत्ति० १।३४

(सत्यम्) सत्यभाषण, सत्यव्यवहार, सत्यज्ञान (यशः) यश, कीर्ति और (श्रीः) स्वास्थ्य, शोभा, ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति (मयि) मुझ में (श्रीः) आश्रित होकर (श्रयताम्) रहें। (स्वाहा) यह मैं सत्य कहता हूँ कि मैं इनको प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा।

विशेष—अमृत का स्वरूप क्या है—

सत्य—यश—और श्री

इन तीनों में से कोई एक मेरे हृदय में इस ओढ़ने और बिछौने के बीच शयन करे।

---

१. 'ओम्' परमात्मा का मुख्य, निज, सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ नाम है। इसके अनेक अर्थ हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण अर्थ है—'सर्वरक्षक'। पाठक इसे ध्यान रखें।

सत्य ब्राह्मण का अमृत है, यश क्षत्रिय का अमृत है और श्री=लक्ष्मी, धन-सम्पत्ति वैश्य का अमृत है।

बाएँ हाथ की हथेली में जल ले लें। दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से जल का स्पर्श करके निम्नलिखित मन्त्रों से प्रथम दक्षिण और तत्पश्चात् वाम अङ्गों का स्पर्श करें—

अङ्गस्पर्शमन्त्राः

ओं वाङ् म ऽ आस्ये ऽस्तु। इस मन्त्र से मुख,

हे प्रभो! (मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वाणी, बोलने की शक्ति (अस्तु) हो।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु। इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

हे जीवनदातः! (मे) मेरे (नसोः) दोनों नासिका छिद्रों में (प्राणः) जीवन-शक्ति (अस्तु) विद्यमान रहे।

ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। इस मन्त्र से दोनों आँखें,

हे मार्गदर्शक प्रभो! (मे) मेरे (अक्ष्णोः) दोनों नेत्र गोलकों (चक्षुः) दर्शनशक्ति (अस्तु) सदा विद्यमान रहे।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। इस मन्त्र से दोनों कान,

हे भक्तों की टेर सुनने वाले! (मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कर्ण गोलकों में (श्रोत्रम्) श्रवणशक्ति (अस्तु) सदा बनी रहे।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु। इस मन्त्र से दोनों बाहु,

हे विघ्नविनाशक प्रभो! (मे) मेरी (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल, शक्ति एवं सामर्थ्य (अस्तु) सदा विद्यमान रहे।

ओम् ऊर्वोर्म ऽ ओजोऽस्तु। इस मन्त्र से दोनों जंघा,

हे पराक्रमशालिन्! (मे) मेरी (ऊर्वोः) दोनों जंघाओं में (ओजः) सत्त्व, दौड़ने, भागने और भार वहन करने की सामर्थ्य (अस्तु) सदा बनी रहे।

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।[1] इस मन्त्र से सारे शरीर पर मार्जन करना,

हे शरीर रक्षक प्रभो! (मे) मेरा (तनूः) शरीर और (सह) साथ ही (मे तन्वः) मेरे शरीर के (अङ्गानि) समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ (अरिष्टानि रोग रहित एवं शक्ति-सम्पन्न (सन्तु) हों।

अग्न्याधानमन्त्रः

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर आम, बिल्व आदि की समिधा वेदी में चयन करें पुनः

ओं भूर्भुवः स्वः।—गोभिल गृह्य० १।१।११

---

१. दृष्टव्य पारस्कर गृह्य १।३।२५।

(ओम्)[1] अब (भूः) पृथिवी लोक, (भुवः) अन्तरिक्षलोक और (स्वः) द्युलोक—इन तीन लोकों का वर्णन किया जाता है।

इस मन्त्र का उच्चारण कर घृत का दीपक जलाएँ।

अग्न्याधानमन्त्रः

प्रज्वलित दीपक से अग्नि लगा, किसी एक पात्र में धर, उसमें छोटी-छोटी लकड़ी लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर निम्न मन्त्र से अग्न्याधान करे—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।—यजु० ३।५

(भूः भुवः स्वः) हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर ! मैं पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों लोकों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा—

हे (पृथिवि) भूमे (देवयजनि) जहाँ देव=विद्वान् यज्ञ करते हैं अथवा जहाँ देवों=विद्वानों का आदर सत्कार होता है (तस्याः) उस (ते पृष्ठे) तेरी पीठ पर, तेरे ऊपर मैं—१. (भूः) पृथिवी-लोक (भुवः) अन्तरिक्ष लोक और (स्वः) द्युलोक का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, तथा—२. (अनाद्याय) आद्य=खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिए (अन्नादम्) हव्यरूप में आहुत किये जाने वाले पदार्थों को खानेवाले (अग्निम्) अग्नि का (आदधे) आधान करता हूँ। मैं इस यज्ञ को करता हुआ (द्यौः) द्युलोक के (इव) समान (भूम्ना) बाहुल्य से सुशोभित हो जाऊँ। मेरा मस्तिष्क ज्ञान-ज्योति से जगमगा उठे। मैं द्युलोक के समान उच्च, उदात्त, महान् और अनन्त बन जाऊँ तथा (पृथिवी) पृथिवी के (इव) समान (वरिम्णा) प्राणियों को आश्रय देनेवाला बन जाऊँ। मेरा हृदय अन्तरिक्ष के समान विशाल हो।

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर निम्न मन्त्र पढ़के व्यंजन=पंखे से अग्नि को प्रदीप्त करे—

ओम् उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सँ सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ।।—यजु० १५।५४

(अग्ने) हे यज्ञाग्ने ! (उद्बुध्यस्व) तू प्रकट हो, जल उठ (प्रति जागृहि) खूब प्रचण्ड हो जा (त्वम्) तू (च) और (अयम्) यह यजमान—तुम दोनों मिलकर (इष्टापूर्ते) इष्ट[2] और पूर्त[3] का (संसृजेथाम्) सम्पादन करो। (अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) सर्वश्रेष्ठ (सधस्थे) यज्ञ-स्थान में, यज्ञवेदि पर (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान्, ऋत्विक्, पुरोहित आदि अथवा घर के सब देव (च) और (यजमानः) गृहपति यजमान सब मिलकर (अधिसीदत) अधिकार के अनुसार अपने-अपने स्थान पर बैठो।[4]

---

१. 'ओम्' पद यहाँ आरम्भ अर्थ का द्योतक है।   २. इष्ट=यज्ञादि।
३. पूर्त=कुआँ, तालाब, धर्मशाला, विद्यालय आदि निर्माण।
४. मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ भी है—'हे आत्माग्ने ! तू जाग' इत्यादि। परन्तु यहाँ प्रमुख रूप से यज्ञ सम्बन्धी अर्थ ही दिया है।

समिदाधानमन्त्राः

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की आठ-आठ अंगुल की तीन समिधाएँ घृत में डुबा, उनमें से एक-एक निकाल निम्नलिखित मन्त्रों से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ाएँ—

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥[1] इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥१॥

—इस मन्त्र से पहली समिधा चढ़ाएं

हे (जातवेदः) यज्ञाग्ने ! (अयम्) यह (इध्मः) समिधा (ते) तेरा (आत्मा) जीवन है। तू (तेन) उस समिधा से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो और (वर्धस्व) बढ़, खूब प्रकाशित, प्रज्वलित एवं प्रचण्ड हो (च) और (अस्मान्) हमें भी (इद्ध) प्रकाशित कर दे, चमका दे (प्रजया) उत्तम सन्तति से, सुसन्तानों से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज से तेजस्वी कर दे (च) और (वर्धय) हमें खूब बढ़ा (पशुभिः) पशुओं से तथा (अन्नाद्येन) खाने योग्य भोग्य पदार्थों से और (समेधय) समिधा के समान मुझे भी प्रज्वलित कर दें, मेरे जीवन को भी चमका दे, मुझे ओजस्वी और तेजस्वी बना दे (स्वाहा) यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है (इदम्) यह समिधा की आहुति (जातवेदसे अग्नये) यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करने के लिए समर्पित है (इदं न मम) इस आहुति पर मेरा कोई स्वत्त्व=अधिकार, अपनेपन की भावना नहीं है।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥
इससे और
सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥–यजु० ३।१-२
इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

अर्थ—(समिधा) समिधाओं के द्वारा (अतिथिम्) अतिथि के समान आदरपूर्वक (अग्निम्) यज्ञाग्नि को (दुवस्यत) प्रज्वलित करो और इस अग्नि को (घृतैः) घृताहुतियों से (बोधयत) प्रचण्ड करो, बढ़ाओ फिर (अस्मिन्) घृताहुतियाँ पड़ी हुई इस अग्नि में (हव्या) सुगन्धित, पुष्टिकारक, मिष्ट, रोगनाशक—अनेक प्रकार के शाकल्यों से (आ) वेदी के चारों ओर बैठकर (जुहोतन) आहुतियाँ दो। (स्वाहा) मैं इस क्रिया को ठीक-ठीक समझकर कर रहा हूँ। (इदम्) यह आहुति (अग्नये) अग्निकेन्द्र पृथिवीलोक की शुद्धि के लिए है (इदम् न मम) इस कर्म में मुझे फल की आसक्ति=कामना नहीं है, मैं निष्काम भाव से यह कर्म कर रहा हूँ।

(जातवेदसे) वैद्युत=विद्युत् सम्बन्धी (अग्नये) अग्नि केन्द्र अन्तरिक्ष लोक के लिए (सुसमिद्धाय) अत्यन्त प्रचण्ड, तीव्रता के साथ जलती हुई (शोचिषे) अग्नि की

---

१. आश्व० गृह्य० १।१०।१२

ज्वाला में (तीव्रम्) अत्यन्त तपे हुए (घृतम्) घी की (जुहोतन) आहुतियाँ दो। (स्वाहा) मैं इसे ठीक-ठीक समझकर कार्य कर रहा हूँ। (इदम्) यह आहुति (जातवेदसे) वैद्युत (अग्नये) अग्नि-केन्द्र, अन्तरिक्षलोक की शुद्धि के लिए है। (इदम् न मम) इस कार्य में मुझे फल की कामना नहीं है, मैं निष्काम भाव से वह कार्य कर रहा हूँ।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठय् स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम ॥—यजु० ३।३

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

अर्थ—(अङ्गिरः) हे प्रकाशक अग्ने ! (तम्) उस सर्वत्र प्राप्त होने वाले (त्वा) तुझको हम यज्ञशील लोग (समिद्भिः) समिधाओं और (घृतेन) घी के द्वारा (वर्धयामसि) निरन्तर बढ़ाते हैं, प्रज्वलित रखते हैं। हे (यविष्ठय्) युवतम, पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने में अत्यन्त बलवान् अग्ने ! (बृहत्) अत्यधिक (आ शोच) प्रकाशित हो। (स्वाहा) मैं ठीक समझकर कार्य कर रहा हूँ। (इदम्) यह हवि (अङ्गिरसे) दिव्य (अग्नये) अग्निकेन्द्र द्युलोक की शुद्धि के लिए है। (इदम् न मम) इस कार्य में मुझे फल की आशा नहीं हैं, मैं निष्काम भाव से यह कार्य कर रहा हूँ।

पञ्चघृताहुतयः

निम्न मन्त्र से पाँच घृत आहुतियाँ दें। एक-एक बार मन्त्र को बोलकर एक-एक आहुति—

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥
आश्व० गृह्य० १।१०।१२

अर्थ—(जातवेदः) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (अयम्) यह (आत्मा) जीवात्मा (ते) तेरा (इध्मः) समिधा है। जैसे समिधा अग्नि में पड़कर अग्नि के समान प्रदीप्त हो जाती है, वैसे ही मेरा जीवात्मा प्रभु के प्रति समर्पित होकर प्रभु जैसा ही हो जाए। (तेन) उस आत्माहुति द्वारा तू (इध्यस्व) प्रकट हो जा, अपना साक्षात्कार करा दे और (वर्धस्व) अपनी ऐसी प्रजा से वृद्धि को प्राप्त कर अर्थात् आपकी ऐसी बहुत-सी प्रजाएँ हो जाएँ (च) और (अस्मान्) हम अपनी प्रजाओं को (प्रजया) सुसन्तानों से (इद्ध) चमकाओ तथा (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज से तेजस्वी बनाओ। हमें (पशुभिः) पशुओं से (च) और (अन्नाद्येन) भक्षणीय अन्न से (वर्धय) बढ़ाओ। हे देव ! हमें (सम् एधय) पूर्णरूपेण समिधा के समान बना दो। (स्वाहा) यह मैं जैसा कह रहा हूँ, वैसा ही अपने को बनाऊँगा। (इदम्) यह आहुति (जातवेदसे) सर्वव्यापक (अग्नये) परमात्मा की प्राप्ति के लिए है (इदम् न मम) मैं यह कर्म पूर्ण निष्काम भाव से कर रहा हूँ, मुझे फल की कोई आसक्ति=कामना नहीं है।

जलसेचनमन्त्राः

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व आदि दिशा और चारों ओर छिड़काए—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥—गोभि० गृह्य० १।३।१

इस मन्त्र से पूर्व दिशा में—

अर्थ—(अदिते) हे अखण्ड स्वास्थ्य ! (अनुमन्यस्व) तू मुझे अनुमति दे कि मैं यज्ञ का अनुष्ठान कर सकूं।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥—गोभि० गृह्य० १।३।२

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा में

अर्थ—(अनुमते) वेदशास्त्राविरोधी तर्क ! अनुकूलमते ! (अनुमन्यस्व) तू भी इस यज्ञ के लिए अनुमति प्रदान कर।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥—गोभि० गृह्य० १।३।३

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में जल छिड़कें—

अर्थ—(सरस्वति) अजस्र बहनेवाले ज्ञान प्रवाह ! (अनुमन्यस्व) इस यज्ञानुष्ठान के लिए तू भी अनुमति प्रदान कर।

विशेष—शरीर का स्वास्थ्य, मन की श्रद्धा और मस्तिष्क का ज्ञान—इन तीनों के सहयोग से ही हम यज्ञ कर पाते हैं।

ओं देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥

—यजु० ३०।१

[1]इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़काएँ—

अर्थ—हे (सवितः) सबको शुभ कर्मों में प्रेरित करने वाले (देव) सर्वप्रकाशक, आनन्दप्रद ! (भगाय) सुख-सौभाग्य एवं ऐश्वर्य के लिए प्रत्येक मनुष्य के हृदय में (यज्ञम्) यज्ञ की, परोपकार आदि श्रेष्ठ कर्म करने की (प्र सुव) प्रेरणा दो और (यज्ञपतिम्) यज्ञ के रक्षक यजमान को, श्रेष्ठकर्म करने वालों को (प्र सुव) बढ़ाइए, उनके उत्साह को बढ़ाइए, उन्हें समृद्धियुक्त कीजिए। (दिव्यः) प्रकाशमय, शुद्धस्वरूप (गन्धर्वः) वेदवाणी का धारक (केतपूः) ज्ञान के द्वारा हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाला परमेश्वर (नः) हमारे (केतम्) ज्ञान को (पुनातु) पवित्र करे। (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी परमात्मा (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) माधुर्ययुक्त बना दे।

---

१. जल छिड़कने की विधि इस प्रकार है—पूर्व में जल डालते हुए दक्षिण से उत्तर की ओर छिड़काएँ। पश्चिम में भी इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर की ओर डालें। उत्तर में जल छिड़कते समय पश्चिम से पूर्व की ओर छिड़काएँ। चारों ओर जल छिड़काते समय पूर्व में मध्य से आरम्भ करें और यज्ञकुण्ड को दाहिने रखते हुए पूरा एक चक्र लगाकर जहाँ से आरम्भ किया था, वहीं समाप्त करें।

आधारावाज्यभागाहुतिमन्त्राः

ये आहुतियाँ मुख्य होम के आदि और अन्त में दी जाती हैं। इनमें यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में जो दूसरी आहुति देनी होती है, उनका नाम 'आधारावाज्याहुति' है और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनका नाम 'आज्यभागाहुति' है। घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

ओम् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये—इदन्न मम ।।—यजु० १०।५

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

अर्थ—(ओम्) हे ज्ञान स्वरूप ! हम (अग्नये) ज्ञान-प्राप्ति के लिए (स्वाहा= सु+आ+हा) सम्यक्तया, पूर्णरूपेण अपना सर्वस्व ज्ञानस्वरूप यज्ञाग्नि में आहुत करते हैं। (इदम्) आप के द्वारा प्रदत्त ये समस्त पदार्थ (अग्नये) ज्ञान-प्राप्ति के लिए ही तो दिये गये हैं (इदम् न मम) ये सब द्रव्य मेरे नहीं हैं।

ओम् सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय—इदन्न मम ।। —यजु० १०।५

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी—

अर्थ—(ओम्) हे सौम्यस्वरूप प्रभो ! हम (सोमाय) कान्तिमान्, शान्त और सौम्यस्वभाव बनने के लिए (स्वाहा) अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं। प्रभो ! (इदम् सोमाय) ये सारे पदार्थ सोम बनने के लिए ही तो आपने ने हमें प्रदान किये हैं (इदम् न मम) ये सब पदार्थ मेरे नहीं हैं, मैं यज्ञ में इनका विनियोग करता हुआ सोम्य बनूं।

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।।—यजु० २२।३२

ओम् इन्द्राय स्वाहा ।। इदमिन्द्राय—इदन्न मम ।।[1]—यजु० २२।६

---

१. इन चार मन्त्रों की एक अन्य व्याख्या भी हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

ओम् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये—इदन्न मम ।।

(ओम्) हे सर्वप्रकाशक जगदीश्वर ! मैं (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए (स्वाहा) शुभ संकल्पपूर्वक, सच्चे हृदय से, सुसंस्कृत द्रव्यों की आहुति देता हूँ। (इदम् अग्नये) यह आहुति अग्नि के निमित्तहै (इदं न मम) यह मेरी नहीं है। मैं इस आहुति से किसी फल की कामना नहीं करता।

ओं सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय—इदं न मम ।।

(ओम्) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! मैं (सोमाय) चन्द्रमा के लिए (स्वाहा) शुभ संकलपपूर्वक, सच्चे हृदय से, सुसंस्कृत द्रव्यों की आहुति दे रहा हूँ। (इदम् सोमाय) यह आहुति चन्द्रमा के लिए है (इदं न मम) इस आहुति पर मेरा कोई स्वत्व नहीं है, किसी फल की कामना नहीं है।

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये—इदं न मम ।।

(ओम्) हे ज्योतिस्वरूप परमात्मन् ! मैं (प्रजापतये) सूर्य के लिए (स्वाहा) दिव्य आहुति समर्पित कर रहा हूँ। (इदम् प्रजापतये) यह आहुति सूर्य के लिए है

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

अर्थ—(ओम्) हे प्रजापालक ! हम (प्रजापतये) प्रजापति बनने के लिए (स्वाहा) अपने सर्वस्व की आहुति देते हैं। (इदम् प्रजापतये) ये सब पदार्थ तो आपने दिये ही प्रजापति बनने के लिए हैं (इदम् न मम) ये पदार्थ मेरे नहीं है, मेरे भोग विलास के साधन नहीं हैं।

(ओम्) हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! (इन्द्राय) ऐश्वर्यशाली एवं जितेन्द्रिय बनने के लिए (स्वाहा) मैं इन सब पदार्थों को समर्पित करता हूँ। (इदम् इन्द्राय) ये सब पदार्थ आपने इन्द्र बनने के लिए ही तो मुझे प्रदान किये हैं (इदम् न मम) ये पदार्थ मेरे नहीं हैं।

विशेष—अग्नि, सोम, प्रजापति और इन्द्र—यह जीवन विकास का एक क्रम है। सबसे प्रथम मनुष्य ज्ञान प्राप्त करे। ज्ञान मस्तिष्क में रहता है और मस्तिष्क उत्तर में है अतः प्रथम आहुति उत्तर की ओर दी जाती है। ज्ञान की प्राप्ति सोम=वीर्य-संरक्षण से होती है। वीर्य के ऊर्ध्वगामी होने पर मनुष्य सोम=कान्तिमान् बनता है। वीर्य के संरक्षण से ही मनुष्य शान्त एवं सौम्य बनता है। शक्ति के अभाव में मनुष्य अशान्त एवं चिड़चिड़ा बन जाता है। सोम=वीर्य मनुष्य के दक्षिण में है अतः दूसरी आहुति दक्षिण में दी जाती है। ज्ञानपूर्वक सोम=वीर्य का सन्तान प्राप्ति में विनियोग होने पर मनुष्य प्रजापति=उत्तम सन्तति का स्वामी बनता है तथा आजीवन वीर्य का संरक्षण और ज्ञान के उपार्जन में तत्पर रहने पर मनुष्य इन्द्र=ऐश्वर्यशाली एवं जितेन्द्रिय बन जाता है।

(इदम् न मम) इस पर मेरा कोई स्वत्व=अधिकार ममत्व नहीं है, मुझे फल की कोई कामना नहीं है।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ।। इदमिन्द्राय—इदं न मम ।।

(ओम्) हे सकलैश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! मैं इन्द्राय=विद्युत् के लिए (स्वाहा) यह सुसंस्कृत द्रव्याहुति दे रहा हूँ। (इदम् इन्द्राय) यह आहुति विद्युत् के लिए है (इदम् न मम) यह मेरी नहीं है, इस आहुति से मुझे किसी फल-प्राप्ति की इच्छा नहीं है।

विशेष—संसार में प्रकाश देने वाली चार वस्तुएँ मुख्य हैं—१. अग्नि, २. सोम=चन्द्रमा, ३. प्रजापति=सूर्य और ४. इन्द्र=विद्युत्। अग्नितत्त्व उत्तर में है और सोमतत्त्व दक्षिण में। अतः 'अग्नये स्वाहा' से उत्तर दिशा में आहुति दी जाती है और 'सोमाय स्वाहा' से दक्षिण दिशा में। प्रजापति=सूर्य और इन्द्र=विद्युत् के लिए कोई दिशा निर्दिष्ट नहीं की जा सकती अतः दो आहुतियाँ मध्य में दी जाती हैं।

प्रातःकालीन होममन्त्राः

निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करे—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥—यजु० ३।९

जो परमेश्वर (सूर्यः) चराचर जगत् का आत्मा (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप और (ज्योतिः) सूर्य आदि प्रकाशक लोकों तथा अन्य लोकों का भी प्रकाश करने वाला है (सूर्यः) तथा सबका प्राण है (स्वाहा) हम उस प्रभु की प्रसन्नता अर्थात् उसकी आज्ञा-पालन से सारे संसार के उपकारार्थ आहुति देते हैं।

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥—यजु० ३।९

(सूर्यः) जो चराचर जगत् का आत्मा परमेश्वर (वर्चः) सकल विद्याओं का देने वाला (ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप परमेश्वर (वर्चः) हम लोगों से वेदविद्या का प्रचार कराने वाला है (स्वाहा) उसकी कृपा और अनुग्रह के लिए हम अग्निहोत्र करते हैं।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥—यजु० ३।९

(ज्योतिः) जो परमेश्वर स्वयं प्रकाशमान और (सूर्यः) सारे जगत् को प्रकाशित करनेवाला है (सूर्यः) जो सारे संसार का ईश्वर है तथा (ज्योतिः) प्रकाश और ऐश्वर्य के देनेवाला है, ऐसे अद्वितीय पर ब्रह्म की प्रसन्नता के लिए हम होम करते हैं।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥

—यजु० ३।१०

जो परमेश्वर (देवेन) चराचर के प्रकाशक (सवित्रा) सूर्यादि लोकों में (सजूः) व्याप्त होकर उन्हें अपनी व्याप्ति से द्योतित कर रहा है, जगमगा रहा है, जो (इन्द्रवत्या उषसा) सूर्य के प्रकाशवाली उषा से (सजूः) संयुक्त है, प्रकाशमयी उषा को अपनी आभा से आभासित करनेवाला है, दीप्ति से द्योतित करनेवाला है, वह (जुषाणः) सब पर प्रीति करनेवाला, सबके अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त (सूर्यः) सबका आत्मा परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से (वेतु) मुझ में व्याप जाए और मुझे अपनी ज्योति जगमगा दे। (स्वाहा) प्रियतम देव! मैं तुझ में सुहुत होता हूँ, अपने आप को तेरे प्रति समर्पित करता हूँ।

प्रातः-सायंमन्त्राः

निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः-सायं आहुति देनी चाहिए—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय—इदन्न मम ॥१॥

(भूः) सत्स्वरूप, पृथिवीलोक के अधिष्ठाता परमात्मा के रचे ब्रह्माण्ड में (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए और (प्राणाय) पिण्ड में स्थित मुख्य प्राण के लिए (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह आहुति (अग्नये प्राणाय) अग्नि और प्राण के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है अर्थात् इस आहुति प्रदान से मुझे फल की कोई कामना नहीं है।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।। इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम ।।२।।

(भुवः) चित्स्वरूप, अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता परमात्मा के रचे ब्रह्माण्ड में (वायवे) वायु के लिए और (अपानाय) पिण्ड में अपानवायु के लिए (स्वाहा) यह शोभन आहुति है। (इदम्) यह आहुति प्रदान (वायवे अपानाय) वायु और अपान के लिए समर्पित है। (इदम् न मम) इसमें मेरा कोई स्वार्थ या फल की कामना नहीं है।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।। इदमादित्याय व्यानाय—इदन्न मम ।।३।।

(स्वः) आनन्दस्वरूप, द्युलोक के अधिष्ठाता परमात्मा के रचे ब्रह्माण्ड में (आदित्याय) सूर्य के लिए तथा (व्यानाय) पिण्ड में स्थित व्यान नामक प्राण के लिए (स्वाहा) यह आहुति है। (इदम्) यह आहुति प्रदान (आदित्याय व्यानाय) सूर्य और व्यान के द्वारा संसार के उपकार के लिए है (इदम् न मम) मुझे इस आहुति प्रदान से किसी फल की कामना नहीं है।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम ।।४ ।।

(भूः भुवः स्वः) हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर! (अग्निवाय्वादित्येभ्यः) ब्रह्माण्ड में अग्नि, वायु और सूर्य के द्वारा जल-वायु की शुद्धि के लिए और (प्राणपानव्यानेभ्यः) पिण्ड में प्राण, अपान और व्यान संज्ञक प्राणों की समान गति और पुष्टि के लिए (स्वाहा) मेरी यह आहुति है। (इदम्) यह आहुति प्रदान (अग्निवाय्वादित्येभ्यः) अग्नि, वायु और आदित्य तथा तदनुकूल (प्राणापानव्यानेभ्यः) प्राण, अपान और व्यान के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरा कोई ममत्व नहीं है। जैसा मेरा ज्ञान आत्मा में है, वैसा ही जिह्वा से बोलता हूँ, विपरीत नहीं। प्रभो! जैसे आपने इस जगत् के सारे पदार्थ प्राणियों के सुख के लिए रचे हैं, वैसे ही मैं भी परोपकार करूँगा।

ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।। ५ ।।

(आपः) सर्वव्यापक (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (रसः) आनन्दस्वरूप (अमृतम्) अविनाशी (ब्रह्म) सबसे महान् परमेश्वर का और (भूः) पृथिवीलोक (भुवः) अन्तरिक्ष-लोक (स्वः) द्यौ अथवा आदित्यलोक=इन तीनों लोकों का वर्णन (ओम्) समाप्त हो गया (स्वाहा) यह मैं हृदय से कहता हूँ कि यह यज्ञ मैंने सबके कल्याणार्थ किया है।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।। ६ ।।—यजु० ३२ । १४

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञान के प्रकाशक परमेश्वर! (याम्) जिस (मेधाम्) मेधा बुद्धि को (देवगणाः) सब विद्वान् लोग (च) और (पितरः) विज्ञानवेत्ता, विशेष ज्ञानी लोग (उप+आसते) प्राप्त करके सेवन करते हैं (माम्) मुझे भी (अद्य) आज ही, इसी जन्म में (तया) उसी (मेधया) मेधा बुद्धि से (मेधाविनम्) मेधावी=धारणा-वती बुद्धि से युक्त (कुरु) कीजिए। (स्वाहा) मैं सत्यवाणी से यह प्रार्थना करता हूँ, आप अपने अनुग्रह और प्रीति से इसे स्वीकार कीजिए जिससे मेरी सब जड़ता=मूर्खता दूर हो जाए।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रन्तन्न आ सुव ॥—यजु० ३० । ३

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! आप मेरी उन्नति और सुख के बाधक समस्त दुर्गुणों को दूर कर मुझे इहलौकिक और पारलौकिक सुखों को प्राप्त कराइए ।

ओम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥
—यजु० ४० । १६

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए सुपथ, धर्मानुकूल मार्ग से ले चलिए। प्रभो ! आप हमारे सम्पूर्ण ज्ञानों को कर्मों को सदा जानते हैं अतः हम लोगों को कुटिलतायुक्त पाप कर्मों से दूर कीजिए । हम आपकी बारम्बार स्तुति करते हैं ।

सायंकालीन होममन्त्राः

निम्न मन्त्रों से सायंकाल में अग्निहोत्र करें—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥—यजु० ३ । ९

जो परमेश्वर (अग्निः) ज्ञानस्वरूप (ज्योतिः) ज्ञानप्रदाता (ज्योतिः) सूर्य आदि प्रकाशक लोकों तथा अन्य लोकों का भी प्रकाश करने वाला है तथा (अग्निः) ज्योतिस्वरूप है उसकी आज्ञा से हम (स्वाहा) परोपकार के लिए होम करते हैं और भौतिक अग्नि में हव्य-द्रव्य डालते हैं जिससे यह अग्नि उन द्रव्यों को परमाणुरूप बनाकर जल, वायु और वृष्टि के साथ उन्हें शुद्ध कर दे जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो ।

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥

जो (अग्निः) ज्योतिस्वरूप परमात्मा (वर्चः) सकल विद्याओं का देनेवाला (ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप परमेश्वर (वर्चः) हम लोगों से वेद विद्या का प्रचार करानेवाला है तथा भौतिक अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने का हेतु है (स्वाहा) इसलिए हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं ।

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३ ॥

इस मन्त्र को मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी ।

इस मन्त्र का अर्थ प्रथम मन्त्र के समान है ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

जो परमेश्वर (देवेन) चराचर के प्रकाशक (सवित्रा) सूर्य आदि लोकों और प्राण आदि में (सजूः) व्याप्त होकर उन्हें अपनी दीप्ति से देदीप्यमान कर रहा है, जो (इन्द्रवत्या रात्र्या) चन्द्रमा के प्रकाशवाली रात्रि से (सजूः) संयुक्त होकर उसे अपनी व्याप्ति से मोदमान बना रहा है, वह (जुषाणः) सबसे प्रीति करने वाला और सबके अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त (अग्निः) परमेश्वर अपनी कृपा से (वेतु) प्राप्त हो और हमें मोक्ष सुख के लिए प्रेरित करे । (स्वाहा) हम उस जगदीश्वर की प्रसन्नता के लिए होम करते हैं ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ २ ॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ ३ ॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५ ॥

इन पाँचों मन्त्रों का अर्थ हो चुका ।

यदि सायंकाल का होम प्रातःकाल ही करना हो तो उसकी विधि इतनी ही है। परन्तु सायंकाल का होम अलग से करना हो तब अग्न्याधान से लेकर सारी विधि करें और प्रातःकाल वाले मन्त्रों के स्थान पर सायंकाल वाले मन्त्र बोलें ।

यदि अधिक आहुति देनी हों तो गायत्री मन्त्र और 'विश्वानि देव' मन्त्र से दे लें ।

पूर्णाहुति-प्रकरण

प्रधान होम अर्थात् जिस-जिस कर्म में जितना-जितना होम करना हो करके [पू]र्वोक्त चार अघारावाज्यभागाहुति देवें—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥
ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय—इदन्न मम ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥
ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

इन चारों मन्त्रों का अर्थ हो चुका ।

व्याहृतिमन्त्राः

पुनः शुद्ध किये हुए उसी घी में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

(भूः) पृथिवी-स्थानीय (अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) यह आहुति समर्पित है (इदम्) यह आहुति (अग्नये) अग्नि के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है, इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

(भुवः) अन्तरिक्ष-स्थानीय (वायवे) वायु=विद्युत् के लिए (स्वाहा) यह आहुति अर्पित है (इदम् वायवे) यह आहुति वायु=विद्युत् के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥

(स्वः) द्युस्थानीय (आदित्याय) आदित्य=सूर्य के लिए (स्वाहा) यह होम है। (इदम् आदित्याय) यह आहुति आदित्य लोक की शुद्धि के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरी कोई कामना निहित नहीं है ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ॥

(भूः भुवः स्वः) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु-स्थानीय (अग्निवाय्वादित्येभ्यः) अग्नि, वायु=विद्युत् और आदित्य=सूर्य के द्वारा जल-वायु की शुद्धि से सब जगत् के उपकार के लिए (स्वाहा) यह मेरी आहुति है। (इदम्) यह आहुति प्रदान (अग्निवाय्वादित्येभ्यः) अग्नि, वायु और आदित्य के लिए है (इदम् न मम) यह आहुति मेरी व्यक्तिगत उन्नति या स्वार्थ के लिए नहीं है।

स्विष्टकृतमन्त्रः

ये चार घी की आहुति देकर निम्न मन्त्र से स्विष्टकृत होमाहुति दें। यह एक ही है। यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिए।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम ॥

—आश्व० १। १०। २२

हे दोषनिवारक प्रभो! (अस्य) इस (कर्मणः) यज्ञरूपी कर्म के अनुष्ठान में (यत्) जो अति (अरिरिचम्) अतिरेक कर बैठा हूँ, विधि से अधिक कर दिया है (यद्वा) अथवा (इह) इस यज्ञ-कर्म में (न्यूनम्) विधि से कम (अकरम्) कर बैठा हूँ (तत्) उस (सर्वम्) सबको वह (स्विष्टकृत् अग्निः) यज्ञ, शुभ कर्म और उत्तम इष्ट=कामनाओं को पूर्ण करने वाला प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (विद्यात्) जाने और (मे) मेरे लिए उस सब (स्विष्टम्) यज्ञ और शुभकर्मों को (सुहुतम् करोतु) भली-भाँति पूर्ण करे अर्थात् उत्तम फलदायक बनाए। मैं (स्विष्टकृते) यज्ञ कर्म और शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाले (सुहुतहुते) यज्ञों के सफल करने वाले और सुकृत के फल देने वाले (सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनाम्) सब प्रायश्चित्त आहुतियों और (कामानाम्) सब कामनाओं के (समर्द्धयित्रे) पूर्ण करने वाले (अग्नये) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की आज्ञापालन के लिए यह आहुति दे रहा हूँ। हे अग्ने! (नः) हमारी (सर्वान् कामान्) यज्ञ-विषयक सब कामनाओं को (समर्द्धय) पूर्ण कीजिए (स्वाहा) मेरी यह वाणी सत्य हो (इदम्) यह आहुति (स्विष्टकृते अग्नये) सब यज्ञों को सफल करने वाले परमेश्वर के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है।

प्राजापत्याहुतिमन्त्रः

निम्नलिखित मन्त्र को मन में बोलकर प्राजापत्याहुति दें—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

इससे मौन करके एक आहुति दें।

(प्रजापतये) सकल ब्रह्माण्ड के पालक और पोषक, सबके पिता परमात्मा के लिए (स्वाहा) मैं यह आहुति देता हूँ, अपना यह यज्ञ उसी को समर्पित करता हूँ। (इदम्) यह आहुति (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी परमात्मा के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे निज स्वार्थ के लिए नहीं है।

यज्ञाग्नि-वन्दना

निम्न मन्त्रों से चार आज्याहुति घृत की देवें—

ओं भूर्भुवः स्वः।[1] अग्न आयूँषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः॥
आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥

—ऋ० ९। ६६। १९

(भूः) पृथिवीलोक (भुवः) अन्तरिक्षलोक (स्वः) द्युलोक का ज्ञान कराने वाले (अग्ने) यज्ञाग्ने! तू (आयूंषि पवसे) चराचर जीवों के जीवनों की रक्षक, जीवनों को शुभ, पवित्र और निर्मल बनाने वाली तथा उनकी आयुओं को बढ़ाने वाली है। हे यज्ञाग्ने! तू (नः) हमें (इयम्) शुद्ध, सात्विक, रसीला अन्न (च) और (ऊर्जम्) बल, शक्ति, पराक्रम (आ सुव) प्रदान कर तथा (दुच्छुनाम्) कीड़े-मकौड़े और रोग कीटाणुओं को (आरे बाधस्व) दूर हटा दे, नष्ट कर दे। (स्वाहा) इस बुद्धि से मैं इन यज्ञों में आहुति देता हूँ। (इदम्) ये सब पदार्थ (अग्नये) इस यज्ञाग्नि के लिए हैं जो कि (पवमानाय) सारे वायुमण्डल को पवित्र करने वाला है (इदम् न मम) ये पदार्थ मेरे खाने के लिए नहीं हैं, मुझे तो यज्ञशेष के ही ग्रहण का अधिकार है।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥

ऋ० ९। ६६। २०

(भूः भुवः स्वः) पृथिवी आदि तीनों लोकों का ज्ञान कराने वाली (अग्निः) यज्ञाग्नि (ऋषिः)[2] रोग कीटाणुओं की नाशक है (पवमानः) पवित्र करने वाली और जीवनों की शोधक है, यह सर्वत्र बहने वाला, गति करने वाला है (पाञ्चजन्यः) पञ्च महाभूतों से विकसित यह यज्ञ हमारे अन्नमय आदि पाँच कोषों को विकसित करने वाला तथा पञ्चजन=मनुष्यमात्र का हितकारी है (पुरोहितः) प्रत्येक शुभ कार्य में सबसे पूर्व स्थापित की जाने वाली है। (तम्) उस (महागयम्) बड़े-बड़े कुण्डों वाली यज्ञ विद्या को (ईमहे) हम जानने का प्रयत्न करें (स्वाहा) इस भावना से हम यज्ञों में आहुति देते हैं (इदम्) ये सब पदार्थ (अग्नये पवमानाय) इस यज्ञाग्नि के लिए हैं जो सारे वायु-मण्डल को पवित्र करने वाला है (इदम् न मम) इन पर मेरा कोई स्वत्व= अधिकार, ममत्व नहीं है।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥

—ऋ० ९। ६६। २१

(भूः भुवः स्वः) पृथिवी आदि तीनों लोकों का ज्ञान प्राप्त कराने वाले (अग्ने) यज्ञाग्ने! तू (स्वपाः) उत्तम कर्मों का अधिष्ठाता है, जितने उत्तम कर्म हैं, वे सब यज्ञ

---

१. इस मन्त्र में तथा अगले मन्त्रों में 'भूर्भुवः स्वः' भाग और अन्त में पठित 'स्वाहा। इदं···न मम' अंश वेद में नहीं है।

२. ऋष्=नष्ट करना, to kill.

से ही आरम्भ होते हैं। तू (पवस्व) हमारी वृद्धि कर तथा हमारे जीवनों को पवित्र बना। (अस्मे) हममें (वर्चः) कान्ति, ब्रह्मतेज (सुवीर्यम्) शत्रुओं को कम्पित करने की शक्ति, रोग निवारक शक्ति को (दधत्) धारण करते हुए (मयि) मेरे जीवन में (रयिम्) जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक धन-धान्य को और (पोषम्) शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की पुष्टि को प्राप्त करा (स्वाहा) इसी निमित्त यह आहुति है (इदम्) यह आहुति (अग्नये पवमानाय) पवित्र करने वाले अग्नि के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है, इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥
इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥—ऋ० १०। १२१। १०

(भूः भुवः स्वः) पृथिवी आदि तीनों लोकों का ज्ञान प्राप्त कराने वाले (प्रजापते) प्रजापालक अग्ने! (एतानि) इन (ता=तानि) उन (विश्वा=विश्वानि भूतानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों में, सारे संसार में (अन्यः) कोई वस्तु (न) नहीं है जो (त्वत्) तुझसे संरक्षित हो, जिसका तू पालन करे उसमें (परिबभूव) चारों ओर से, कहीं से भी कोई बुराई उत्पन्न हो जाए। हे यज्ञाग्ने! तू कल्पवृक्ष है, कामधेनु है अतः (यत् कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होकर हम (ते) तुझमें (जुहुमः) हवन करें, आहुति प्रदान करें (नः) हमारी (तत्) वह-वह कामना (अस्तु) सिद्ध हो, पूर्ण हो और (वयम्) हम (रयीणाम्) प्रजा, पशु, अन्न, धन और ब्रह्मवर्चस आदि के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों (स्वाहा) इसी निमित्त यह आहुति है। (इदम् प्रजापतये) यह आहुति प्रजा का पालन पोषण करने वाली यज्ञाग्नि के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है। स्वलाभ के लिए नहीं है।

विद्वद्-वन्दना

निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में आठ आज्याहुतियाँ दें—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्[1] स्वाहा॥
इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥—ऋ० ४। १। ४

(अग्ने) अग्नि के समान अपनी विद्या से देदीप्यमान हे विद्वन्! (त्वम्) आप (नः) हमें हमारे जीवनों को विद्वान्) जानते हैं, अतः आप से प्रार्थना है कि (वरुणस्य देवस्य) श्रेष्ठ विद्वानों के प्रति हमारे जो (हेळः) अनादर के भाव हैं, उन्हें आप (अव यासिसीष्ठाः) हमसे दूर करो। हे विद्वन्! आप (यजिष्ठः) अत्यन्त पूजनीय हैं, यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हैं (वह्नितमः) विद्या के तेज से अत्यन्त तेजस्वी हैं (शोशुचानः) अत्यन्त शुद्ध एवं पवित्र हैं, अतः (अस्मत्) हमसे (विश्वा द्वेषांसि) सब द्वेष भावनाओं

१. 'स्वाहा। इदम्···मम' अंश वेद में नहीं है।

को (प्रमुमुग्धि) निकाल दीजिए। (स्वाहा) यह मेरी प्रार्थना और याचना है। (इदमग्नी-वरुणाभ्याम्) मैं यह आहुति अग्नि और विद्वान् के लिए दे रहा हूँ (इदम् न मम) अपने लिए कुछ नहीं।

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा।।
इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम।। २।।—ऋ०। ४। १। ५

(अग्ने) हे ज्ञानज्योति से चमकने वाले विद्वान्! (सः त्वम्) वह तू (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो। हे विद्वन्! आप (अस्य) इस (उषसः व्युष्टौ) उषा काल की पौ फटते ही, ब्राह्ममुहूर्त से ही (ऊती) हमारी रक्षार्थ (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप, घरेलू व्यक्ति की भाँति (भव) रहो, होओ। (नः) हमारे (वरुणम्[1]) आवरण करने वाले पाप को (अव यक्ष्व) हमसे दूर कीजिए। (रराणः) ज्ञान प्रदान करते हुए (मृळीकम्) सुख (वीहि) प्रदान कीजिए और (नः) हमारे लिए (सुहवः) सरलता से बुलाये जानेयोग्य (एधि) होओ, सरलता से हमें मिलने वाले हूजिए। (स्वाहा) यही मेरी सच्ची प्रार्थना और याचना है (इदम् अग्नी वरुणाभ्याम्) मैं यह आहुति यज्ञाग्नि और विद्वान् के लिए दे रहा हूँ (इदम् न मम) अपने लिए, अपने स्वार्थ के लिए नहीं।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युराचके स्वाहा।। इदं वरुणाय—इदन्न मम।। ३।।

—ऋ० १। २५। १९

(वरुण) हे विद्या आदि में श्रेष्ठ, वरणीय विद्वन्! (मे) मेरी (इमम्) इस (हवम्) पुकार को (श्रुधी) सुनो। मैं पुकार कर कहता हूँ (अद्य) आज ही, इसी जीवन में (आ मृळय) मुझे सुखी करो (च) और मेरे दुःखों को दूर करो। (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहने वाला मैं अपनी रक्षा के लिए (त्वाम्) आपको (आचके) पुकारता हूँ, मुझे सदाचार पर चलाओ (स्वाहा) मैं सदा शुभ कामों में प्रवृत्त रहूँ, इसी भावना से यह आहुति देता हूँ। (इदम् वरुणाय) यह आहुति पाप निवारक विद्वान् के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं है।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मण वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा।।
इदं वरुणाय—इदन्न मम।। ४।।—ऋ० १। २४। ११

(हविर्भिः) यज्ञ में आहुतियाँ देता हुआ (यजमानः) यज्ञशील पुरुष (तत्) उसी बात को (आशास्ते) चाहता है, उसी बात की आशा करता है तथा (ब्रह्मणा) वेदमन्त्रों द्वारा (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं भी हे विद्वन् (त्वा) आप से (तत्) उसी बात की (यामि) याचना और प्रार्थना करता हूँ कि (वरुण) हे पूजनीय विद्वन्! (अहेळमानः) हमारा अनादर, तिरस्कार और हम पर क्रोध न करते हुए आप (इह) इस जीवन में,

---

१. वृञ्=वरणे

इस यज्ञ में (बोधि) हमें सदसत् का बोध, विवेक प्रदान कीजिए। उरुशंस) हे प्रशंसा को प्राप्त विद्वन्! आप (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा प्र मोषीः) मत कटने दीजिए, मत कम होने दीजिए। हम अकाल मृत्यु के ग्रास न बनें, अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त करें। (स्वाहा) हम दीर्घायु प्राप्त करें, इसी भावना से यह आहुति दे रहा हूँ (इदम् वरुणाय) यह आहुति विद्वान् के निमित्त है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम॥
—कात्यायन श्रौत० २५। १। ११

हे (वरुण) विद्वन्! (ये) जो (ते) वे (शतम्) सैंकड़ों और (ये) जो (सहस्रम्) हजारों (यज्ञियाः) यज्ञ सम्बन्धी (महान्तः) बड़े-बड़े (पाशाः) बन्धन, मर्यादाएँ, व्यवस्थाएँ, नियम (वितताः) फैले हुए हैं, प्रचलित हैं, (नः) हम यजमान लोगों को (तेभिः) उन नियम और मर्यादाओं को सिखाकर उन बन्धनों के द्वारा (सविता) राजशासक (विष्णु) शिल्प विद्या के जानने वाले (मरुतः) पुरोहित (उत) और (स्वर्काः) गम्भीर स्वाध्यायशील व्यक्ति (विश्वे) ये सब (अद्य) आज ही, अत्यन्त शीघ्र (मुञ्चन्तु) मुक्त कर दें, उन बन्धनों के द्वारा छुड़ा दें। (स्वाहा) यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है। (इदम्) यह आहुति (वरुणाय) विद्वान् (सवित्रे) राज्य शासन के सञ्चालक (विष्णवे) शिल्प विद्या के जानने वाले (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) साधारण जनता (मरुद्भ्यः) पुरोहित और (स्वर्केभ्यः) गम्भीर स्वाध्याय करने वालों के लिए है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है।

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ स्वाहा॥
इदमग्नये अयसे—इदन्न मम॥ ६॥—कात्यायन श्रौत० २५। १। ११

(अग्ने) हे विद्वन्! (अयाः असि) आप अग्नि के समान तेजस्वी हो (सत्यम् इत्) मैं सत्य कहता हूँ वस्तुतः (त्वम्) आप (अयाः असि) प्रचण्ड अग्नि के समान ब्रह्म तेज से, ज्ञान दीप्ति से देदीप्यमान हो (च) और आप (अनभिशस्तिपाः) अहिंसक, निरपराध, पुण्यात्माओं की दुर्दमनीय काम-क्रोध आदि शत्रुओं से रक्षा करने वाले हो। (अयाः) जिसमें से काली, कराली ज्वालाएँ उठ रही हों, ऐसी अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (वहासि) द्युलोक तक ले जाती है (च) और (अयाः) वह अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि ही (नः) हमें (भेषजम्) औषध, रोग-निवारक शक्ति (धेहि) प्रदान करती है (स्वाहा) यह मेरी सत्य वाणी है। (इदम्) यह आहुति (अग्नये अयसे) विद्वान् और अग्नि के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरा निजी स्वार्थ नहीं है।

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥
इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च—इदन्न मम॥ ७॥—ऋ० १। २४। १५

(वरुण) हे विद्वन् ! (अस्मत्) हमसे (उत्तमम्[1]) उत्तम (पाशम्) बन्धन को (उत् श्रथाय) परमेश्वर को सामने रखकर छुड़ा दो। (अधमम्)[2] अधम पाश को (अव-श्रथाय) घृणा दिलाकर छुड़ा दो (मध्यमम्)[3] मध्यम पाश को (विश्रथाय) अशान्ति का कारण समझाकर छुड़ा दो। (अथ) इन पाशों से मुक्त होने के पश्चात् (आदित्य) हे अखण्ड, अविनाशी, एकरस प्रभो ! (वयम्) हमलोग (तव व्रते) तेरे व्रत, नियम, वेद मर्यादा में रहते हुए (अनागसः) निष्पाप होकर (अदितये) मोक्ष प्राप्ति के लिए (स्याम) समर्थ हों। (स्वाहा) इसी मोक्ष-प्राप्ति के लिए यह होम किया जाना है। (इदम्) यह आहुति (वरुणाय) विद्वान् (आदित्याय) अखण्डैकरस प्रभु और (अदितये) मोक्ष प्राप्ति के लिए है (इदं न मम) इसमें मेरी कोई स्वार्थ भावना नहीं है।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम॥ ८॥

—यजु० ५। ३

यजमान और यज्ञ कराने वाला विद्वान्—तुम दोनों (नः) हमारे लिए (समनसौ) एक मन वाले, शिव-संकल्प वाले (सचेतसौ) एक चित्त वाले, एक-दूसरे को आदर की दृष्टि से देखने वाले (अरेपसौ) ग्रामीण भाषा न बोलने वाले, मधुर और शिष्ट बोलने वाले, ईर्ष्या-द्वेष रहित (भवतम्) होओ। तुम दोनों (यज्ञम् मा हिंसिष्टम्) यज्ञ की हिंसा, यज्ञ का लोप मत करो और (मा यज्ञपतिम्) न ही यज्ञपति=यजमान की हिंसा करो, यजमान को भी हानि मत पहुँचाओ। तुम दोनों (अद्य) आज (नः) हमारे लिए, मनुष्यमात्र के लिए (जातवेदसौ) बहुज्ञानी, समझदार और (शिवौ) कल्याणकारी (भवतम्) होओ (स्वाहा) इसी भावना से यह सुन्दर आहुति है (इदम्) यह आहुति (जातवेदोभ्याम्) पुरोहित और यजमान के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरा निजी स्वार्थ नहीं है।

पूर्णाहुति

घृत का स्रुवा भरके निम्नलिखित मन्त्र से तीन बार पूर्णाहुति करे—

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा॥

इस मन्त्र से एक आहुति दे ऐसे ही दूसरी और तीसरी आहुति दे।

(ओम्) प्रभु कृपा से (सर्वम्) यज्ञ की सब क्रियाएँ (वै) निश्चय से (पूर्णम्) पूर्ण हुई हैं (स्वाहा) यह मैं सत्य कहता हूँ तथा अपने आपको प्रभु के प्रति समर्पित करता हूँ।

(सर्वम्) समस्त जन (वै) निश्चय से (ओम्) उस अखण्डैकरस परब्रह्म से (पूर्णम्) ओत-प्रोत हो जाएँ। उस सर्वविधि पूर्ण ब्रह्म के लिए (सर्वम् स्वाहा) मेरा सर्वस्व समर्पित है।

---

१. उत्तम पाश—पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा।

२. अधम पाश—शराब, मांस, जुआ, व्यभिचार आदि।

३. मध्यम पाश—ईर्ष्या, राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि।

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश। (जैसे हारून का Haron)
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादिक्रम से प्रमाण सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वांइट के मोटे मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की सुनहरी जिल्द।

विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
" सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैतमीमांसा	६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश	७.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	२०.००
दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द**	१५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास	७.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था	८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	१.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज		५.००
महर्षि दयानन्द की देन		४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द**		२५.००
संस्कारविधि	,,	४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	,,	८.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	,,	०.१५
आर्याभिविनय	,,	१.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	,,	०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला	,,	०.२५
बालशिक्षक	,,	०.३७
व्यवहारभानु	,,	१.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार**		१.५०
पूर्व और पश्चिम	,,	७.५०
जीवन की राहें	,,	४.००
सु-राज्य की रूपरेखा	,,	०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी**		०.६०
आर्यसमाज क्या है ?	,,	१.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द**	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्यसिद्धान्त	२४.००
सांख्यदर्शन	१६.००
वेदान्तदर्शन	३०.००
वैशेषिकदर्शन	२५.५०
न्यायदर्शन	२४.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान	१.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना	१.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता	१.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त)	१.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द**	२.५०

बालोपयोगी

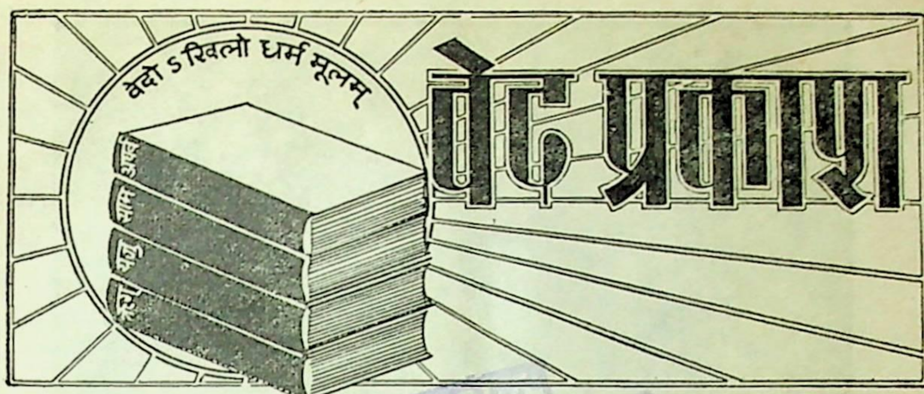
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

वैदिक धर्मशिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा	तृतीय भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	पंचम भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
वैदिक धर्मशिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



6

हा हन्त !

मनीषी विद्वान् नित्यानन्द पटेल नहीं रहे !

जिन आर्य महानुभावों ने 'सन्ध्या-सुमन' का स्वाध्याय कर रखा है, जिन जिज्ञासुओं ने 'सन्ध्या-विनय' का मनन किया है, जिनके द्वारा 'प्रार्थना-प्रदीप' का अवलोकन हुआ है, जो मासिक पत्रिका 'वेद प्रकाश' पढ़ते रहे हैं, जिनको 'जीवन की राहें', 'पूर्व-पश्चिम' और 'सु-राज्य की रूपरेखा' ग्रन्थों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे सभी इनके लेखक श्री नित्यानन्द पटेल के पाण्डित्य का लोहा मान चुके हैं। ५ फरवरी १९७८ को वे इस पार्थिव संसार को त्याग गए और अपने जिज्ञासु पाठकों के हृदयों में अपना चिरजीवी स्थान बना गए।

दिवंगत विद्वान् का सम्पूर्ण जीवन अध्ययन-अध्यापन एवं शोध-कार्यों के लिए समर्पित रहा।

'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार' के वे सुयोग्य स्नातक रहे। हिन्दी, संस्कृत एवं दर्शन-शास्त्र के वे उद्भट पण्डित थे। कुशल प्राध्यापक के रूप में उन्होंने असंख्य छात्रों का सुयोग्य मार्ग-दर्शन किया। 'महिला कॉलेज, पोरबन्दर' के प्रिंसिपल-पद से उन्होंने सराहनीय शैक्षिक संचालन किया।

आर्यसमाज के वे अग्रणी विद्वान् रहे।

लगभग चालीस वर्ष पूर्व 'गुरुकुल कांगड़ी' के प्रकाशन-विभाग ने उनके द्वारा लिखित 'सन्ध्या-सुमन' को प्रकाशित कराया था। यह पुस्तक आर्य-जनता में इतनी लोकप्रिय रही कि तत्पश्चात् उनकी लेखनी से निरन्तर मनन-योग्य पुस्तक-रत्न निकलते रहे। 'सन्ध्या-विनय' और 'प्रार्थना-प्रदीप' के तो कई संस्करण हाथोंहाथ बिके। सारगर्भिता और विषय का प्रतिपादन उनकी विशिष्टता रही।

राष्ट्रीयता के जिस सार्वभौमिक स्वरूप की झलक इनकी रचनाओं में मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है।

स्वर्गीय गोविन्दराम हासानन्द जी की सुपुत्री डॉक्टर सुभद्रादेवी (एम० ए० पी-एच० डी०) के वे श्रद्धेय जीवन-साथी (पति) थे। उनके दो सुपुत्रों में से अग्रज इस समय भारतीय वायु-सेना में योग्य फ्लाइट लेफ्टिनेंट हैं और अनुज इस समय अमेरिका में विज्ञान के छात्र हैं।

'वेद प्रकाश'-परिवार की प्रभु से प्रार्थना है कि अपने कर्मठ जीवन से जिस ज्योति को वे जगा गए हैं, उसका प्रकाश जन-जन के मानस में बना रहे।



आज से लगभग ५२ वर्ष पहले स्वर्गीय श्री गोविन्दराम जी ने इस प्रकाशन-संस्था की स्थापना की थी। आर्य साहित्य के प्रकाशन में वे मृत्युपर्यन्त लगे रहे।

शिवरात्रि

को

श्री गोविन्दराम जी का देहावसान हुआ था। उनकी पुण्य तिथि पर हम उनके वंशज वैदिक साहित्य के प्रकाशन एवं प्रसार में लगे रहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द

(आर्य साहित्य के प्रमुख प्रकाशक व विक्रेता)

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ८] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [मार्च, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

बुद्धि प्रखर कैसे हो ?

(प्रि० नित्यानन्द वेदालंकार, एम० ए०)

मानव का शृंगार बुद्धि है।
बुद्धि का सदुपयोग देवत्व है, दुरुपयोग पशुता।
बुद्धि का दुरुपयोग ही बुद्धि-नाश है।
बुद्धि-नाश ही असली नाश या आत्म-नाश है।
आत्मा का नाश सम्भव ही नहीं, वह अमर है।
शरीर का नाश कोई नाश नहीं, वह मरण-धर्मा है।
मनुष्य स्वर्ग रचे या नरक में पड़े, वह स्वतन्त्र है।

(१)

आचार्य चाणक्य की आकांक्षा है—

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यताः ।
एका केवलमर्थसाधनविधौ सेना शतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।। (मुद्राराक्षस १-२७)

'किसी अभिलाषा के कारण जो मेरे साथी-संगी चले गये, वे तो चले ही गये, जो बचे हैं, वे भी भले ही साथ छोड़कर जाने को उद्यत हो जावें। अपने लक्ष्य सिद्ध करने में सैकड़ों सेनाओं से भी अधिक सामर्थ्यवती केवल मेरी बुद्धि, जिसकी महिमा नन्द-वंश के उन्मूलन से प्रत्यक्ष सिद्ध हो चुकी है, मुझे छोड़कर न जावे।'

आचार्य चाणक्य के इस वचन से बुद्धि के महत्त्व को भली-भाँति समझा जा सकता है। यदि बुद्धि है तो समृद्धि प्राप्त की जा सकती है, साम्राज्य फिर से स्थापित किया जा सकता है, स्वर्ग और मोक्ष सिद्ध किये जा सकते हैं। बुद्धि गई तो धर्म गया, तेज गया, शौर्य गया, ऐश्वर्य गया, सदाचार गया, सर्वस्व गया। बुद्धि ही मनुष्य का सार है, श्रृंगार है, सर्वस्व है।

बुद्धि के चले जाने का अर्थ क्या है? धन, सम्पत्ति आदि आज हमारे पास हैं, कल वे हमें छोड़कर किसी दूसरे के पास चले जाते हैं। परमेश्वर की कृपा है, बुद्धि को उन्होंने ऐसा चंचल नहीं बनाया। वह हमें परित्याग कर किसी दूसरे का आलिङ्गन करने जाती हो, ऐसी निर्मम नहीं है। ऐसी अवस्था में बुद्धि के जाने का अर्थ है उसका अपने कार्य को ठीक प्रकार से करने में असमर्थ हो जाना।

बुद्धि का कार्य है निर्भ्रान्त रूप से निर्णय करना, वस्तु के स्वरूप को भली-भाँति परखना, दोनों ओर की दलीलों के बलाबल को बराबर समझना, योग्यायोग्य का विचार करना, उलझनें सुलझाना, सारी परिस्थिति को समक्ष रखकर अचूक निर्णय देना, मार्गभ्रष्ट होते हुए का ठीक-ठीक मार्गदर्शन करना। भगवान् कृष्ण ने बुद्धि के कार्यों का निम्न रूप से निर्देश किया है :—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ (गीता १८-३०)

"प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य-अकार्य, भय-अभय, बन्ध-मोक्ष का भेद जो बुद्धि उचित रीति से जानती है वह सात्त्विक बुद्धि है।"

जो बुद्धि धर्म-अधर्म का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का, योग्य-अयोग्य का यथावत् निर्णय नहीं कर पाती, वह शिथिल-प्रभ है। अंधकाराच्छादित जो बुद्धि अधर्म को धर्म और अयोग्य को योग्य समझती है वह मूर्च्छित है, हतप्रभ है या तामस है। ऐसी बुद्धि है तो क्या, और नहीं है तो क्या?

बुद्धि क्यों जाती रहती है? वह मूर्च्छित क्यों हो जाती है? उसकी प्रखरता कुण्ठित क्यों हो जाती है? अपने कर्त्तव्य कर्म करने में वह असमर्थ क्यों हो जाती है? इन प्रश्नों का उत्तर भगवान् कृष्ण ने निम्न शब्दों में दिया है :—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ (गीता २-६७)

"विषयों में भटकनेवाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है, उसका मन, जैसे वायु नौका को जल में खींच ले जाती है, वैसे ही उसकी बुद्धि को जहाँ चाहे खींच ले-जाता है।"

इन्द्रियों और बुद्धि के बीच में मन है। जब मन, मनमाने रूप से विषयों में भटकनेवाली इन्द्रियों के पीछे चलने लगता है तो फिर बुद्धि सही-सलामत नहीं रह पाती। वह असहाय और अकेली पड़ जाती है। इन्द्रियाँ और मन मिलकर प्रबल और प्रचंड हो जाते हैं। वे ऐसा बवण्डर खड़ा करते हैं कि बुद्धि बेचारी भौंचक रह जाती है। उसकी आँखों में धूल भर जाती है। उसे सही मार्ग सूझता ही नहीं। अपने

कर्त्तव्य करने में वह असमर्थ हो जाती है। मन उसे फुसलाने लगता है। विवश बनी वह उसके इशारों पर नाचने लगती है, कुतर्क करती है, उलटे-सुलटे मार्ग सुझाती है, जीवन-नौका भटक जाती है, सब रंग-ढंग बदलने लगता है, व्यवहार अयोग्य होने लगता है, मंज़िल पर पहुँचना तब असम्भव हो जाता है।

इन्द्रियों के पीछे-पीछे फिरनेवाले मन के चक्कर में पड़ी बुद्धि विषयों के रस का विचार करने लगती है। इसे अधिक-से-अधिक मात्रा में कैसे प्राप्त किया जाय, भोग की अभिलाषा भी पूर्ण हो और समाज में प्रतिष्ठा भी बनी रहे, इन्हीं सब छलछन्दों के सोचने में बुद्धि बेचारी व्यस्त हो जाती है। इस विषय-व्यवस्था के कारण अचूक निर्णय देने के अपने विशाल सामर्थ्य से वह वंचित हो जाती है। शैतान के चक्कर में पड़ी वह किस मुँह से परमेश्वर के पास पहुँचेगी? जो अपने सेवक की मीठी-मीठी बातों में आकर फिसल पड़ी, वह अयोध्यापुरी के राजा से परिणय की आशा कैसे रख सकती है? धर्माधर्म का योग्य विचार करते हुए, दिन-प्रतिदिन सतेज और उज्ज्वल बनते हुए जो बुद्धि आत्मा के समीप पहुँच सकती थी, वह जाने किस उधेड़बुन में उलझ गई।

सरल शब्दों में विषयों के वात्याचक्र में पड़ा मन बुद्धि को हर लेता है। इन्द्रियों के विषयों में स्वच्छन्द विचरण से विषयों का ध्यान और चिन्तन होने लगता है। उससे मन में विविध विषयों को प्राप्त करने की इच्छा (काम), राग-द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं। राग-द्वेष अपने साथ तृष्णा, लोभ, स्वार्थ, क्रोध, मोह, मद आदि विकारों को बुला लेते हैं। एक-दूसरे की सहायता पाकर राग-द्वेषादि विकार खूब प्रबल और प्रचण्ड हो जाते हैं। प्रगाढ़ बने विकारों, वृत्तियों और विकल्पनाओं के रंग बुद्धि पर चढ़ने लगते हैं। द्वेष का रंग बुद्धि पर चढ़ने से बुद्धि द्वेष-बुद्धि हो जाती है, स्वार्थ का रंग चढ़ जाने से स्वार्थ-बुद्धि। अनेक प्रकार के विकारों से रंगी बुद्धि वस्तु के स्वरूप को अपने रंग में रंगकर ही देखती है। इससे वह वस्तु के अपने रूप को ठीक देख ही नहीं पाती। अचूक निर्णय वह क्या दे सकेगी?

जो बुद्धि तटस्थ रहती है, जिसपर विकारों और विकल्पनाओं का रंग नहीं चढ़ता, वही वस्तुओं का यथायोग्य विवेचन कर सकती है और ठीक-ठीक मार्गदर्शन के अपने काम में समर्थ होती है।

मनसस्तु परा बुद्धिः। (गीता ३-४२)

बुद्धि का तो मन पर राज्य होना चाहिये था। हाथ जोड़कर बुद्धि की सेवा में मन को हाज़िर रहना चाहिये था, परन्तु यह सब उलट कैसे हो गया? मन इतना महाबली और मनोरम कैसे हो गया कि बुद्धि उसकी दासी बन गई?

उत्तर यह है कि इन्द्रियों के साथ मिलकर ही मन बलवान् हो जाता है। अपने-आप में वह बुद्धि से बलवान् कहाँ? विषयों में स्वतन्त्र विचरण करनेवाली इन्द्रियाँ ही मन में राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि विकारों को उभारती हैं। नित्यप्रति रसीले और स्वादिष्ट पकवान लाकर ये ही इन्हें पालती-पोसती और पुष्ट करती हैं।

इन्हीं की प्रेमपूर्ण परिचर्या से राग-द्वेषादि विकार एक दिन विशाल-काय व्यूडोरस्क और वृष-स्कन्ध हो जाते हैं। साल-वृक्ष जैसे विशाल रूपधारी इन विकारों के सामने बुद्धि सहम जाती है ; वह लाचार होकर इनके पीछे चलने को रज़ामन्द हो जाती है ; उनकी अशुभ वासनाओं को तृप्त करने को भी विवश होती है। प्रौढ़ उम्र के और विकराल रूप धारण कर गये इन विकारों से मन कितना बलिष्ठ हो जाता है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

वस्तुतः मन इन विकारों से कोई अलग वस्तु नहीं। संकल्प-विकल्प, विकार और वासनाओं के गट्ठड़ का नाम ही मन है। विकार और कामनाएँ प्रचण्ड हैं तो फिर मन के क्या पूछने ? वह ऐंठने और इतराने लग़ता है। बुद्धि के निर्णय के अनुसार अमल करने की अपनी मर्यादा का उल्लंघन करता है। बुद्धि के निर्णय करने के कार्य में दखल देने लगता है। परिणामतः गड़बड़ होती है। बुद्धि सारासार-विचार में, योग्य निर्णय में असमर्थ हो जाती है। जज के सामने सोने-चाँदी का ढेर लगा दिया जाय तो वह कब तक बच-बचकर चलेगा ? रुपहली और सुनहली चमक से आँखें चुंधियायेंगी ही। चकाचौंध से भरी आँखें क्या देख सकती हैं ! जज का न्याय और निर्णय कब क्या होगा, यह समझना क्या कठिन है ?

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि बुद्धि तटस्थ रहकर हिताहित का अचूक निर्णय कर सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि यह राग, द्वेष, स्वार्थ, आसक्ति, आग्रह आदि मनोविकारों से आच्छन्न और आविष्ट न हो। राग-द्वेषादि प्रबल और प्रचण्ड होंगे तो बुद्धि आच्छन्न होगी ही। अतः बुद्धि को तटस्थ और स्वकार्य-समर्थ रखने के लिए यह सिद्ध हुआ कि राग-द्वेष को क्षीण किया जाय। इनके क्षीण होते ही मन बुद्धि का अनुसरण करने लगता है।

बुद्धि के अनुसरण का अर्थ है कि मन अंडबंड कामनाएँ न सेवे। बुद्धि जिस कामना को अयोग्य कहे, उसे बिना चूं-चपड़ किये छोड़ दे और जिसे वह योग्य कहे, उसे पूर्ण करने के प्रयत्न में सम्पूर्ण शक्ति से तत्पर हो जाय। अयोध्या नगरी में राज्य बुद्धि का रहे। कानून बुद्धि पास करे, मन उनका उत्साह और प्रीति से पालन करे तथा इन्द्रियाँ आदि शेष प्रजा से यथावत् पालन करावे। यदि यह हो सके तो अयोध्या स्वर्गपुरी या देहपुरी बन सकेगी।

(२)

मुख्य प्रश्न यही है कि राग-द्वेष क्षीण कैसे किये जाएँ ? मनुष्य के सबसे बड़े दुश्मन यही हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ (गीता ३-३४)

हमारी इन्द्रियाँ हर समय 'यह चाहिये, वह चाहिये' कहती हुई विषयों के पीछे दौड़ती हैं। जो चाहिए, उसके प्रति मन में द्वेष उत्पन्न होता जाता है। धीमे-धीमे राग-द्वेष बढ़ने लगते हैं और सम्पूर्ण मन पर छा जाते हैं। श्रेयार्थी प्रबल शत्रुरूप इन राग-द्वेष के चक्कर में न पड़े।

यह कहना चाहिए कि राग-द्वेष आदि मनोविकारों को मार डालना संभव ही नहीं है। राग-द्वेष आदि मनोविकार मनुष्य के अंग हैं। स्वभाव का उच्छेद कैसे हो सकता है? फिर राग-द्वेष छोड़कर मनुष्य रहता ही क्या है! भावना-शून्य मनुष्य और पत्थर में विशेष अन्तर ही क्या है! इसलिए राग-द्वेष को नष्ट करने के धर्मध्वजियों के सब उपदेश पाखण्ड हैं। वे लाख चिल्लावें, कितना ही गला फाड़ें, जब तक दुनिया है, राग-द्वेष तो रहेंगे ही।

फिर क्रिया-प्रवर्तक तो राग-द्वेष आदि भाव या मनोविकार ही हैं। कानून पास कर देने मात्र से उसका अमल नहीं हो जाता। कानून अच्छा है, बुद्धि-सम्मत है, इस ज्ञान-मात्र से क्रिया में कौन प्रवृत्त होता है? क्रिया-प्रवृत्त होने के लिए मन में कुछ वेग आना आवश्यक है। कानून की किसी बात से अथवा उसके पालन के परिणामस्वरूप मिलनेवाले किसी फल से उल्लास, हर्ष, प्रीति, रुचि, राग, उत्साह आदि की भावनाएं उमड़नी चाहियें। इन भावनाओं द्वारा जब मन में वेग आता है, तभी बुद्धि के कानून का उत्साह और उमंग से परिपालन होता है। इससे यह स्पष्ट है कि राग-द्वेष आदि भावनाओं को मार डालने के सब उपदेश न केवल अस्वाभाविक ही हैं, अपितु सर्वथा अयोग्य भी हैं।

देश के प्रति राग, सत्य के प्रति आग्रह, धर्म के प्रति प्रीति, कर्तव्य के प्रति आस्था, कला के प्रति प्रेम, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, माता-पिता के प्रति भक्ति, अधर्म के प्रति द्वेष, गन्दगी के प्रति घृणा, पाप के प्रति नफ़रत आदि भी राग-द्वेष के ही विभिन्न रूप हैं। बुद्धि के आदेश के अनुसार ही ये आबद्ध किये गये हैं। इनका विरोध कौन कर सकता है? कहने का तात्पर्य इतना ही है कि राग-द्वेष आदि का परिमार्जन और परिष्कार करना ज़रूरी है। वे अस्थान पर न हों; बुद्धि नियन्त्रित हो, योग्य स्थान पर हो। राग-द्वेष क्षीण करने का यही अर्थ है। राग का अभाव जड़ता है। योग्य स्थान पर आबद्ध राग, शोभा है, भक्ति है, मानवता है, मुक्ति है।

राग-द्वेष आदि मनोविकार के परिष्कार में साहित्य के अध्ययन से बहुत सहायता मिल सकती है। श्रेष्ठ साहित्य का चरम लक्ष्य रोगों का परिष्कार ही है। परन्तु आध्यात्मिक चर्चा के प्रसंग में यह चर्चा शायद विषयान्तर ही हो। भगवान् ने जिन साधनों की ओर संकेत किया है, हम उन्हीं का यहाँ उल्लेख करेंगे।

विषयों में इन्द्रियों के स्वच्छ और सतत भटकते रहने से उनके प्रति हमारे मन में राग-द्वेष, आसक्ति और आग्रह आदि दृढ़ हो गये हैं। इन्हें शिथिल करना है। इसके लिए कैसी सीधी और सरल युक्ति है—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ (गीता २-५८)

'कछुआ जहाँ खतरा होता है, अपने अंगों को समेट लेता है, उसी प्रकार अशुभ विषयों से अपनी इन्द्रियों को समेट लेना चाहिये।' दुनिया में शुभाशुभ सभी कुछ है। जहाँ तक हो सके, कामोद्दीपक दृश्यों से, अश्लील उपन्यासों से, नशीले दृश्यों से, गन्दे

गानों से, वैभव-विलास से, बनाव-ठनाव से, विलासी वारांगनाओं से दूर ही रहना चाहिये। कोयले की कोठड़ी में जाते रहने से कालस न लगे, यह कम ही सम्भव है। कीचड़ में पत्थर फेंकने से पास में खड़े हुओं के कपड़ों पर दाग़ न लगे, यह कब सम्भव है ! इसलिए सब आग्रह और अहंकार व्यर्थ है।

हम ईश्वर नहीं हैं। वह भला-बुरा सब-कुछ देखता है, फिर भी अनासक्त बने रहता है। उसी की यह सामर्थ्य है कि वह कांचनवर्णी कामिनी के अनावृत रूप को फिर-फिर निहारे और राग-शून्य बना रहे। मानव में यह शक्ति कहाँ ! कवि-शिरोमणि ने 'ज्ञातस्वादो विवृतजनां को विहर्तुं समर्थः" में इसी बात का संकेत किया है। इसलिए दूर रहना ही ठीक है। यदि फिर भी सब-कुछ देखने का हम हठ करेंगे तो आँखें फूट जावेंगी और सिर चकरा जावेगा। इसलिए विलास उभारनेवाली सब बातों से नम्रता-पूर्वक दूर रहना ही सुरक्षित और श्रेयस्कर है। इस प्रकार अयोग्य स्थान पर बँधा राग शिथिल और क्षीण होने लगा।

हृदय में गुदगुदी उत्पन्न करनेवाली बातों से इन्द्रियों को दूर रखना कोई कठिन बात नहीं है। वस्तुतः आग में हाथ न डालने जैसी नैसर्गिक बात है। फिर भी, यदि न देखने योग्य को देखने की खोटी आदत दृढ़ हो गई हो तो बुद्धि उसे सुदृढ़ संकल्प की सहायता लेकर दूर कर सकती है। बुद्धि का यह बड़ा समर्थ मित्र है।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ (गीता २-६०)

सच है कि 'इन्द्रियाँ बड़ी हठीली हैं, वे मन को भी घसीट ले जाती हैं।' परन्तु मनुष्य भी ऐसा कमज़ोर नहीं जैसा वह अपने को समझता है। भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि के साथ दृढ़ संकल्प की अद्भुत शक्ति भी दी है। विवेक द्वारा संकल्प को जागृत कर वह जो चाहे सिद्ध कर सकता है। वह विद्वान् बन सकता है, विस्तृत वैभव प्राप्त कर सकता है, बड़ी-से-बड़ी विजय प्राप्त कर सकता है।

मनुष्य ने अपने दृढ़ संकल्प को जागृत करके और तदनुकूल पुरुषार्थ द्वारा दुनिया में क्या-कुछ सिद्ध नहीं किया है। कौन-सी ऊँचाई है जहाँ वह चढ़ा नहीं है ! कौन-सी गहराई है जहाँ वह पैठा नहीं है ! भौतिक और आध्यात्मिक, सभी क्षेत्रों में उसकी सिद्धि अद्भुत और अनुपम है। फिर वह दीन-हीन क्यों बने ? प्रभु ने उसे पृथिवी का शृङ्गार बनाया है।

"मनुष्य को आत्मा की अपनी शक्ति का भान नहीं, इसी कारण वह मानता है कि इन्द्रियाँ बस में नहीं रहतीं, या मन नहीं रहता, बुद्धि काम नहीं करती। आत्मा की शक्ति का विश्वास होते ही दूसरा सब आसान हो जाता है।"

(अनासक्ति योग—गांधी जी)

आरोग्य स्थान पर बँधे रोग को शिथिल करने की यह बात हुई। यह निषेधात्मक साधना है। राग को कहीं समाश्रय भी मिलना चाहिए। कहीं तो इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकने पर मन-ही-मन विषयों का सेवन होने लगता है, जो कम भयंकर नहीं है। बना-बनाया खेल इससे बिगड़ सकता है। इसी से निर्देश है—

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः । (गीता २-६१)

'युक्तिपूर्वक, विवेक और संकल्प के बल से, इन्द्रियों को अशुभ विषयों से रोककर मनुष्य मत्परायण होकर रहे।' रोग को कहाँ स्थिर करना चाहिये, इसी का यहाँ निर्देश है। भगवान् कृष्ण जैसे महापुरुषों के शील और चरित्र के श्रवण, मनन और अनुकरण में अनुरक्ति उत्पन्न करना उपयोगी है।

अज्ञात, अनन्त और अरूप परमेश्वर की बात हम करने लगें तो वह किसे सुहायेगा ? धरती की बात छोड़, क्षितिज के उस पार की जब-तब चर्चा करना बहुत बार दम्भ और पाखण्ड ही तो होता है। अज्ञेय और अनन्त की चर्चा साधु-सन्तों के लिए छोड़ देना अधिक श्रेयस्कर है। हमारे लिए तो भगवान् कृष्ण की जाह्नवी-जैसी पावन जीवन-गाथा ही पर्याप्त है। उनकी बालक्रीड़ा में, गोचारण में, घोड़ों के खुदखुर्दा करने में, निश्छल प्रेम में, सुहृद्भाव में, शास्त्र-ज्ञान में, कला में, बुद्धि-प्रखरता में, नम्रता में, नीति-निपुणता में, मन को आकर्षित करने और रमाने की अनन्त सामग्री है। भगवान् की ही यह सब प्रत्यक्ष विभूति है।

यदि मन यहाँ न रमे तो फिर अपने दैनिक व्यवसाय में, स्वधर्माचरण में, सच्छास्त्र में, काव्य में, संगीत में, ज्ञानार्जन में, अन्याय-निवारण में, सद्वृत्तियों के विकास में, दुःखितों की सेवा-सहायता में मन को अधिकाधिक पिरोना उपयोगी है। राग के लिए बुद्धिसम्मत यह विशाल क्षेत्र है। सद्गुणों और सत्कर्मों में वही एक झाँकता है। यहाँ उससे मिलते-जुलते रहना कितना आसान है ! रोज़ मिलने-जुलने से परिचय और प्रेम हो ही जाता है। उससे अनुराग हो गया तो सब काम सिद्ध ही है।

प्रकृति हमें चारों ओर से घेरकर खड़ी है। मनुष्य के समस्त सुख-दुःखों में यह अपना स्वर मिला रही है। ऋतु-ऋतु में यह नवीन उमंगों से उल्लसित होती है, प्राणों के कम्पन प्रदर्शित करती है। तरह-तरह की भाव-भंगियों, ध्वनियों और रूप-वैचित्र्य द्वारा हमें आकर्षित करती है और उसकी ओर मौन परन्तु सशक्त संकेत भी करती है।

नक्षत्रों-भरे आसमान में बिखरे पड़े उसके वैभव का, हँसते फूलों में उसके सौन्दर्य का, उमड़-घुमड़कर बहती नदियों में उसकी करुणा का, हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों में उसकी धवलता का, अतलस्पर्शी समुद्रों में उसकी गहराई का, पक्षियों के कलरव में उसके सुरीले स्वरों का, स्पर्श से पुलकित करनेवाले पवन के झकोरों में उसके प्यार का सहृदय लोग दर्शन कर सकते हैं। यदि हम प्रकृति के पृष्ठों पर लिखी इस भाषा को न पढ़ सकें, तो भी सौन्दर्य-भरे ये दृश्य नयनों और हृदय को कुछ कम तृप्त करनेवाले नहीं हैं। मन यहाँ खूब रम सकता है।

ज़रा दृष्टि बदलने की ज़रूरत है। पहले थोड़ा परिश्रम करना पड़ता है, फिर तो धीमे-धीमे सत्पुरुषों के चरित्र के श्रवण-मनन में आनन्द आने लगता है। उनके असंख्य उपकार, प्रीति, अनुकम्पा, उदारता आदि का स्मरण कर रोमांच होने लगता है, आँखें सजल होने लगती हैं, प्रेरणा और उत्साह मिलता है, नवजीवन का संचार होता है, धर्म का पथ आलोकित हो उठता है। फिर तो धृति दृढ़ चरणों से क़दम बढ़ाने लगती है।

इसे सात्त्विक रस कहिए या भगवल्लीलावगाहन का रस कहिए, जब तक मन ने यह रस चखा नहीं, तभी तक वह रस या उस विषय का रस लेने को छटपटाता है। परन्तु जब असली रस मिल गया, सचाई मन में बैठ गई तो फिर वह क्यों भटकेगा ?

रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते । (गीता २-५६)

'जिसे ईश्वर-साक्षात्कार का रस लग जाता है, वह दूसरे रसों को भूल ही जाता है ।'

राग-द्वेषादि भावनाओं को बुद्धि के आदेशानुसार तथा संकल्प की सहायता से अयोग्य स्थान के शिथिल करने और योग्य स्थान पर स्थिर करने से उनका आवश्यक परिष्कार हो गया । मन में अब विकारों का अंधड़ नहीं । बुद्धि की आँखें अब धूल से भर-भर नहीं जातीं । बुद्धि पूर्ण प्रभा से चमकती है । निर्भ्रान्त रूप से वह पथ देख रही है । सात्विक शृङ्गार किये वह आत्मा के समीप चली है । मन उसके वस्त्रादि प्यारपूर्वक सँभालते हुए पीछे-पीछे चल रहा है । क्या सुनहला दृश्य है !

श्रेय और प्रेय

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयोऽहि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।।

कठोपनिषद् का यह प्रसिद्ध वचन है । श्रेय और प्रेय प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख उपस्थित होते हैं । जो धीर पुरुष है वह दोनों की परीक्षा और भली-भाँति विवेचन करता है । वह प्रेय की अपेक्षा श्रेय को पसन्द करता है । पर 'मन्द' अर्थात् जो मन्द-बुद्धि है, वह सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति, और प्राप्त, दोनों पदार्थों की रक्षा की भावना से, दूसरे शब्दों में लोभ एवं आसक्ति के कारण प्रेय को चुनता है ।

दुनिया में दो मार्ग हैं—एक श्रेय मार्ग है, दूसरा प्रेय मार्ग । एक मार्ग वह है जो हमारे सच्चे कल्याण का मार्ग है। दूसरा वह मार्ग है जो हमें आकर्षक, सुन्दर और प्रिय प्रतीत होता है । प्रेय मार्ग सांसारिक सुखों की उपलब्धि का मार्ग है, विषयों की ओर जाती हुई इन्द्रियों की सन्तुष्टि का मार्ग है, प्रलोभनों के सामने सिर झुकाने का मार्ग है। यह बड़ा हरा-भरा है, फल-फूलों से लदा है । सुहावनी इसकी सड़क है, आराम का मार्ग है। दूसरी ओर सूखी पगडण्डी है, न कोई साज़ है न रौनक है, न चमक-दमक है, न तड़क-भड़क है; कर्त्तव्य का कठिन पथ है । यह प्रलोभनों से निरन्तर युद्ध का मार्ग है और प्रिय प्रतीत होनेवाले पदार्थों के परित्याग का मार्ग है—संयम और अनासक्ति का मार्ग ।

एक सुहावना है, दूसरा सूना है । एक सरस है, दूसरा सूखा है । एक सुन्दर है, दूसरा नीरस है । एक में शोर भरा है, दूसरा शांत है । दोनों का अपना-अपना रूप और आकर्षण है । इसी अपने रूप और आकर्षण से वे हमारे जीवन को भिन्न-भिन्न दिशा में ले-चलना चाहते हैं । जो प्रेय को अपनाता है उसका जीवन कैसा होता है, जो श्रेय

मार्ग का पथिक है उसके जीवन की क्या विशेषताएँ होती हैं, श्रेय ग्रौर प्रेय का परिणाम क्या है, यह बताना ही इस लेख का ग्रभिप्राय है।

जो प्रेय मार्ग को पसन्द करता है वह गम्भीर नहीं है, उथला है। वह जीवन के ग्रर्थ को समझता नहीं है, दूर तक देख नहीं सकता। उपनिषद् के शब्दों में 'मन्दः' (मूढ़मति) है, विवेक ग्रौर विचार से शून्य है। मानव-जीवन के सुवर्ण ग्रवसर को ग्रौर भगवान् की दी हुई ग्रमूल्य शक्तियों को वह निर्दयतापूर्वक बिखेरता है ग्रौर विनाश करता है। सारहीन गप्पों में, दूसरों की निन्दा ग्रौर दोष-दर्शन में, ताश एवं शतरंज इत्यादि ग्रनुपयोगी खेलों के खेलने में, ग्रश्लील उपन्यासों के पढ़ने में, गन्दे सिनेमाग्रों के देखने में, बाह्य टीपटाप ग्रौर ग्रपने को सजाने में वह बहुत-सा समय नष्ट करता है। सच पूछो तो समय की उसके सामने कोई विशेष कीमत नहीं। वह इसे बिना दर्द के नष्ट करने की चीज़ समझता है। जीवन उसका नियमित नहीं, ग्रादतें उसकी नियमित नहीं, वह न समय पर सो सकता है ग्रौर न प्रभात में उठ सकता है।

खाने-पीने का वह बड़ा शौक़ीन है। रसना पर तनिक संयम नहीं। शराब पीने में शूरता ग्रौर सिगरेट पीने में वह ग्रद्भुत शान समझता है।

ग्रालस्य ग्रौर प्रमाद उसके जीवन का सार है। परिश्रम ग्रौर पुरुषार्थ से वह जी चुराता है। ग्रपनी ग्राजीविका के लिए तो उससे ग्रनथक परिश्रम हो सकता है, परन्तु निस्स्वार्थ कार्य के लिए ग्रौर किसी पवित्र उद्देश्य के लिए कठोर पुरुषार्थ हो नहीं सकता। उद्यम, एकाग्रता, दृढ़ता इत्यादि उसके लिए ग्रभिशाप हैं।

वह वर्तमान ही की चिन्ता करता है। क्षणिक सुखों से ग्रागे वह ग्रपनी दृष्टि दौड़ा नहीं सकता। इसलिए जीवन-रूपी समुद्र पर तैरनेवाली झाग को पकड़कर वह सन्तुष्ट हो जाता है। समुद्र की गहरी गोद में पड़े मोती ग्रौर गुप्त खज़ाने को खोजने के लिए वह ग़ोता लगा नहीं सकता।

वह पैसे का मीत (money-minded) है। दिमाग़ को वह दुनियावी दौलत के खज़ाने की कुञ्जी समझता है। स्वाध्याय ग्रथवा गम्भीर मानसिक चिन्तन को, जिससे धन प्राप्त नहीं हो सकता, मूर्खता समझता है। विज्ञान, धर्म ग्रौर तत्त्वज्ञान की गम्भीर पुस्तकों को न वह स्वयं पढ़ सकता है ग्रौर न इस सम्बन्ध की चर्चा सुनना पसन्द करता है। धन उसके जीवन का साधन नहीं, पर साध्य है। ग्रधिक-से-ग्रधिक ग्रौर जैसे-तैसे धन बटोरना ही उसके जीवन का परम उद्देश्य है।

इन्द्रियाँ उसकी विषयों की ग्रोर दौड़ती हैं, पर उसके मन में उनको दमन करने की शक्ति नहीं। वह रोमांच को पसन्द करता है। ग्रधिक-से-ग्रधिक ग्रनुकूल वेदनाग्रों को लेना चाहता है। इन्द्रियों को गुदगुदानेवाले ग्रौर काम-भावना को उत्तेजित करनेवाले विषयों को वह पसन्द करता है। वह समझता है मैं बड़ा सुख भोग रहा हूँ, प्रतिष्ठा पा रहा हूँ ग्रौर सफल हो रहा हूँ, जबकि वस्तुतः वह ग्रपने को मूर्ख बना रहा होता है।

संक्षेप में कहा जाय तो वह ग्रविवेकी ग्रौर ग्रदूरदर्शी है। विषयों की मस्ती के बाद क्या है, प्रलोभन के पर्दे के पीछे क्या है, यह वह देख नहीं पाता। परिणाम यह

होता है कि वह छला जाता है। छाया को पकड़ता है, सार और तत्त्व को छू नहीं पाता।

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यपिहितं मुखम्।'

'चमकीले सोने के ढकने से सत्य का मुँह ढका हुआ है।' दुनिया में सब कहीं धोखा है, झूठी चमक-दमक है। सत्य तो आड़ में छिपा है। जो बाह्य चमक-दमक में फँसता है, वह सत्य का साक्षात् कर नहीं पाता।

प्रेय मार्ग का परिणाम पतन है, व्यक्तित्व को कुण्ठित करना है, मन और आत्मा का बौनापन है। दुनिया में जो शरीर से बौना है, कितना दुःखी है! ठीक इसी प्रकार जो सांसारिक ऐश्वर्य के पीछे भागकर अपने मन और आत्मा का विकास नहीं करता, वह मानसिक विकास और ज्ञान की प्राप्ति से मिलनेवाले अनिर्वचनीय आनन्द से वंचित होता है। भोग के पीछे पड़नेवाले का अन्त पश्चात्ताप है, निराशा है, उदासीनता है, अपयश है, अन्धकार है, रोग है और मृत्यु है। प्रेय मार्ग को जो चुनता है वह सुख तो प्राप्त करता है, परन्तु शान्ति और आनन्द को वह अनुभव नहीं कर सकता। प्रेय मार्ग से प्राप्त होनेवाला सुख राजस है। भगवान् कृष्ण के शब्दों में—

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

कठोपनिषद् के शब्दों में 'हीयतेऽर्थात् य उ प्रेयो वृणीते'—'जो प्रेय मार्ग को स्वीकार करता है वह अपने जीवन के लक्ष्य से च्युत हो जाता है।' कोलोमन (Colomen) जिसने अपना समूचा जीवन राजकीय विलास में और ऐश में व्यतीत किया था और जिसके विषय में कहा जाता है कि उसकी सात सौ स्त्रियाँ थीं, उसके अन्तिम शब्द ध्यान देने योग्य हैं—"Vanity of all vanities all is vanity." प्रेय मार्ग के परिणाम की यह कितने स्पष्ट शब्दों में घोषणा है! प्रेय मार्ग के पथिक वयोवृद्ध ययाति राजा के अनुभव-भरे शब्दों में भी इसी की प्रतिध्वनि है—

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

दूसरा मार्ग श्रेय मार्ग है। सुन्दर और आकर्षक मार्ग को छोड़कर सूखे और कठिन मार्ग को पसन्द करने के लिए गम्भीर चिन्तन और विवेक चाहिये। उपनिषद् के शब्दों में वो 'धीर' है—

'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः।'

'प्रलोभन के उपस्थित होने पर भी जिनके चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होता है वही धीर पुरुष है। वही उसके पथ का राही है।'

श्रेय मार्ग के अनुगामी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता सादगी है। सादगी वह गुण है जो मनुष्य को सच्ची महानता की ओर ले चलती है। जिसमें सादगी नहीं, वह महापुरुष हो ही नहीं सकता। थॉमस ए० कैम्पिस (Thomas A. Kempis) ने लिखा है—

"Purity and simplicity are the two wings with which man soars above the earth, and all temporal nature."

'पवित्रता और सादगी, ये दो पंख हैं जिनसे मनुष्य इस पृथिवी और सब पार्थिव स्वभाव के ऊपर उड़ता है।'

कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी आवश्यकताओं को घटाने से, दूसरे शब्दों में सादगी स्वीकार करने से, मनुष्य उच्च विचारक और स्वर्गिक जीवन के योग्य बनता है। आजकल आडम्बर और आवश्यकताएँ बढ़ाने को सभ्यता और शान समझा जाता है, पर सच्ची सभ्यता आवश्यकताओं को सीमित करने में ही है। ऊँची संस्कृति का जन्म सादगी से होता है। पवित्र भारतीय संस्कृति का जन्म तपोवनों और ऋषियों की झोंपड़ियों में हुआ है। व्यायाम से जिस प्रकार शरीर स्वस्थ और सुघड़ बनता है, सादगी से आत्मा उन्नत और विकसित होता है।

श्रेय मार्ग का पथिक इस सादगी को अपनाता है। बहुत-से ढंगों से यह सादगी उसके जीवन में प्रकट होती है। उसका भोजन सादा और सात्त्विक होता है। उत्तेजक राजसी भोजनों को वह नापसन्द करता है। आहार उसका परिमित होता है। दिन में बहुत बार नहीं खाता है और न एक समय के भोजन में तरह-तरह की बहुत-सी चीज़ें खाता है। डॉक्टर हेग (Dr. A. Haig) ने लिखा है—"Simple food of not more than two or three kinds at one meal is another secret of health."

इसे श्रेय मार्ग पर चल रहा व्यक्ति समझता है और इसपर आचरण करता है। वह रसना का गुलाम नहीं। वह जीने के लिए खाता है, खाने के लिए नहीं जीता। यह स्मरण योग्य है कि रसना पर विजय पाना संयम की पहली सीढ़ी है। जो व्यक्ति स्वाद और रसना का दास है, वह न तो ब्रह्मचारी हो सकता है, न उच्च ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न श्रेय के रास्ते पर चल सकता है।

श्रेय के मार्ग पर चल रहा व्यक्ति अपनी वेश-भूषा में और घर के साज-सामान में भी सादगी बर्तता है। वह न बहुत महँगे कपड़े खरीदता है और न आवश्यकता से अधिक सामान अपने पास जोड़ता है। वह समझता है कि झूठी प्रतिष्ठा (Prestige) और पदवी (Position) के लिए धन अपव्यय करने का उसे अधिकार नहीं। वेष-भूषा में सादगी का अर्थ मैले और भद्दे कपड़े पहनना बिल्कुल नहीं है। स्वच्छता और सफ़ाई तो आवश्यक है। परन्तु दर्जनों लिबास रखना और प्रतिदिन नई ड्रेस से अपने को सजाना आवश्यक नहीं है। क़ीमती कपड़ों द्वारा अपने धन का प्रदर्शन करना भगवान् के दिये धन का दुरुपयोग है। सुन्दर कपड़ों से, कृत्रिम साधनों से सौन्दर्य को उधार नहीं लिया जा सकता। सच्चे सौन्दर्य को चमकीले-भड़कीले आवरणों की आवश्यकता नहीं। खादी के मोटे और सादे कपड़ों में भी क्या किसी का सौन्दर्य छिपा है? सादगी में शायद सौन्दर्य अधिक वेग से फूट पड़ता है। उत्तम स्वास्थ्य से, सादगी से और सौम्य स्वभाव से जितना सौन्दर्य बढ़ता है, उतना किसी बाह्य साधन से नहीं बढ़ता। A. V. Claten ने ठीक कहा—

"The brightly arrayed, it is true, can enchant, yet it worries us."

"The simple gives ever refreshment to eyes of the soul."

श्रेय मार्ग पर चल रहा व्यक्ति व्यवहार में अत्यन्त सरल, सीधा और सादा होता है। उसमें बनावट और कपट नहीं होता। वह न अभिमान करता है, न दम्भ करता है। जो उससे मिलना चाहता है वह उसके पास आसानी से पहुँच सकता है। वह सबसे नम्रता और सरल भाव से मिलता है। सबकी बात सहानुभूति के साथ सुनता है। जैसा उसके मन में होता है, वैसा ही वाणी से बोलता है और जैसा वाणी से बोलता है, वैसा ही व्यवहार करता है। व्यवहार की इस सरलता और सीधेपन को आजकल मूर्खता और भोंदूपन समझा जाता है। प्रकृति की पूजा करनेवाली पश्चिम की सभ्यता जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे दम्भ, छल, कपट और कुटिलता भी बढ़ती जा रही है। आकर्षक और मधुर व्यवहार के पर्दे में कुटिल, काले और कलुषित मन को छिपाना आजकल की परिभाषा में कला है। कल्याण-मार्ग का राही यह कला जानता नहीं। वह अपने भावों को न छिपा सकता है और न दुनिया को धोखा दे सकता है। [ऐ]सा व्यक्ति झूठे और अनुचित (undue) सम्मान से वंचित रहता है, पर उसका हृदय [ए]क सुदृढ़ दुर्ग होता है जिसमें पाप सुगमता से प्रवेश नहीं पाता। भगवान् कृष्ण के शब्दों में सरलता दैवी सम्पद् है; हृदय की पवित्रता का यह चतुर प्रकाशन है; दैवी कृपा प्राप्त करने का यह अमोघ साधन है।

श्रेय पथ का पथिक अपनी इन्द्रियों का दमन करता है। काम-वासना को वह नियन्त्रित और अपने आधीन रखता है। मन उसका शक्तिशाली होता है। काम-वासना का वह 'दास' नहीं, 'स्वामी' होता है। यह वासना ऐसी आग है जो हमारे व्यक्तित्व को जलाकर भस्म कर सकती है और हमारी महत्त्वाकांक्षाओं और आदर्शों को धूल में मिला सकती है। फ़ैनीलोन (Fenelon) ने ठीक कहा—

"Sensuality corrupts the entire heart and eradicates every virtue."

'विषयासक्ति समूचे हृदय को बिगाड़ देती है और प्रत्येक गुण को जड़-मूल से उखाड़ फेंकती है।' यौवन के समय जब इन्द्रियाँ प्रबल होती हैं, वही संयम का अस्ली समय होता है। प्रारम्भ में ही जो संयम करता है, वही प्रेम का मधुर आनन्द ले सकता है। जिसने अपनी शक्ति को नष्ट कर दिया है, वह तो उस आनन्द के लिए सिर्फ़ तरस ही सकता है।

आजकल हमारे समाज का वातावरण इतना गन्दा और विषैला हो गया है कि हमारे देश के नवयुवकों में समय से पूर्व काम-वासना जागृत हो जाती है। गन्दे सिनेमा, अश्लील नाटक-उपन्यास और नाचघर कामवासना को उत्तेजित करते हैं। परिणाम यह है कि नवयुवकों के चेहरों पर जिस समय यौवन की चमक और आँखों में ज्योति होनी चाहिये उस समय उनका शरीर जर्जरित हो जाता है, चेहरे पर पीलापन और आँखों में अँधेरा छाने लगता है, अनेक प्रकार के रोगों के शिकार होते हैं और युवावस्था में ही संसार से कूच कर जाते हैं। जो विषयासक्त है, उसका मन दुर्बल हो जाता है। शरीर उसका मृत-आत्मा का कफ़न होता है। संयम से प्राप्त

होनेवाले आनन्द और मस्ती को वह अनुभव कर ही नहीं सकता। श्रेय मार्ग का पथिक समय पर सावधान होता है और विषय-वासना के विषैले विषधर को वश में करता है।

श्रेय पथ का पथिक कर्त्तव्यनिष्ठ होता है। वह यह समझता है कि—

"We are not here to play, to dream, to drift. We have hard work to do, and loads to lift, shun not struggle, it is God's gift."

'हम संसार में खेलने के लिए नहीं, स्वप्न लेने के लिए नहीं और परिस्थितियों के थपेड़ों से इधर-उधर बहने के लिए नहीं आये हैं। हमने कठोर कर्म करना है, भारी बोझा उठाना है और संघर्ष का सामना करना है।' ऐसा समझनेवाला अपने कर्त्तव्य को प्रभु का प्रसाद समझता है। जो भी वह कार्य करता है, उसे पैसे कमाने का साधन नहीं अपितु सामाजिक सेवा का साधन समझता है और इसी भावना से वह अपने कर्म को करता है। धन का संचय तो कर्म का गौण कार्य है। निस्स्वार्थ और परोपकार की वृत्तियों का प्रकाशन करना हमारे जीवन का मुख्य कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी कर्म के लिए इस कर्मभूमि में आया है।

श्रेय पथ का पथिक अपने उस कर्त्तव्य को निश्चित करता है और उसे विशुद्ध भावना से सम्पन्न करता है। सैकड़ों प्रलोभनों के आने पर भी वह अपने कर्त्तव्य पर अटल और अडिग रहता है। दुनिया में उसकी निन्दा हो या प्रशंसा, लक्ष्मी आवे या चली जावे, उसे चिन्ता नहीं होती। जिसे वह सत्य धर्म और अपना कर्त्तव्य समझता है, उससे एक क़दम भी वह पीछे हटने को तैयार नहीं होता। व्यर्थ की बातों में समय व्यतीत करने से उसे व्यथा होती है। संसार में कुछ सृजन करने की उसकी अभिलाषा होती है। अपनी शक्तियों से वह संसार के सुख और सौन्दर्य की वृद्धि करना चाहता है। अपने कर्त्तव्य द्वारा अमिट छाप छोड़ जाने की उसकी धुन होती है। इसीलिए अनथक परिश्रम और कठोर पुरुषार्थ का उसका जीवन होता है।

श्रेय मार्ग का परिणाम आनन्द और कल्याण है। प्रेय मार्ग से प्राप्त होनेवाले सुख और श्रेय मार्ग से प्राप्त होनेवाले आनन्द में भेद है। सुख क्षणिक है, आनन्द स्थायी है। सुख बाह्य वस्तुओं पर आश्रित है, पर आनन्द आत्मा का धन है। वह राजस है, यह सात्विक है। भगवान् कृष्ण के शब्दों में—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

'आत्मा और बुद्धि की निर्मलता से उत्पन्न हुआ सात्विक सुख आरम्भ में विष की तरह कटु, परिणाम में अमृत की तरह मधुर होता है।' श्रेय का परिणाम जीवन में सार्थकता है, अनुपम शान्ति है और अमर यश है। कठोपनिषद् के शब्दों में 'तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति' अर्थात् श्रेय और प्रेय में से श्रेय को चुननेवाले का कल्याण होता है।

भगवद्भजन ज़रूरी है

'जो मनुष्य अपने मानव-बन्धुओं की सेवा करता है, उसके हृदय में ईश्वर स्वयं अपना निवास-स्थान बनाना चाहता है।' —महात्मा गांधी

कर्म ही पूजा है

अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे आजकल के किसी नवयुवक से पूछो कि भाई, घड़ी-दो-घड़ी बैठकर कभी परमेश्वर का स्मरण, ध्यान व भजन आदि करते हो या नहीं ? तो वह झट से उत्तर देगा कि हम तो कर्त्तव्य कर्म ठीक से करने को ही सबसे बड़ी ईश्वरोपासना मानते हैं। सन्ध्या-वंध्या को हम व्यर्थ समझते हैं। अपने विचार की पुष्टि में 'Work is worship' इस प्रसिद्ध सूत्र को भी वह बड़ी गम्भीरता से प्रस्तुत करेगा। पूछनेवाला इसका क्या जवाब दे ?

ऐसा नवयुवक अपनी विजय पर मन-ही-मन हँसेगा और कहेगा कि भोले भाई साहब को खूब बनाया। कहना होगा कि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे नवयुवकों के हाथ में एक अचूक हथियार आ गया है। वह सब अपील और दलील को आसानी से काटने में समर्थ हो गया है। साथ ही 'Work is worship' ऐसा सूत्र है, जिसकी ओट में भगवद्भजन के प्रति अरुचि, अश्रद्धा और आलस्य इत्यादि को आसानी से छुपाया जा सकता है। आत्म-प्रवंचना ऐसी सूक्ष्म है कि हर कोई आसानी से उसका शिकार हो सकता है।

गीता की भक्ति कर्मप्रधान है

'भगवद्गीता' में जिस भक्ति की अपेक्षा रखी गई है वह भी पूजा-पाठ या आरती-प्रधान नहीं, कर्मप्रधान है। अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येनसर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (गीता १८-४६)

'जिससे यह समस्त विश्व व्याप्त है उस परमात्मा की, स्व-कर्म-पालन द्वारा पूजा करके मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है।'

सेवा के द्वारा ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तु इष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ (गीता ३.१०-११)

परमेश्वर का आदेश है—

'पृथिवी पर जाओ, एक-दूसरे की सेवा करो और वृद्धि पाओ, जीवमात्र को देवतारूप समझो। इन देवों की सेवा करके तुम इन्हें प्रसन्न रक्खो, ये तुम्हें प्रसन्न रखेंगे। प्रसन्न हुए देव तुम्हें बिना माँगे मनोवांछित फल देंगे।'

गीता के अनुसार परम-श्रेय का साधन सेवा है, यह स्पष्ट है। सेवा के बिना किसी ने सिद्धि प्राप्त नहीं की है।

अपने प्रिय भक्तों की चर्चा करते हुए भी, गीता ने यह नहीं कहा है कि प्रातः-सायं जो रोज़ सन्ध्या-वन्दन करता है, अथवा खड़ताल लेकर ज़ोर-ज़ोर से जो नाचता है वही मेरा प्रिय भक्त है। नैवेद्य की नाप-तोल वहाँ नहीं है। नम्रता और निर्वैरता को ही भक्ति की कसौटी कहा है। भक्त वह है जो ईर्ष्या नहीं रखता, जो दया का भण्डार है, जो निस्स्वार्थ है, जो क्षमाशील है, जो न दूसरों को डराता है और न दूसरों से डरता है, जो कर्म में कुशल है, जो शत्रु-मित्र सबको समान समझता है, इत्यादि।

भक्त कबीर ने भी कीर्तन आदि के प्रति अपनी अरुचि प्रकट की है—

कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो करूँ सो पूजा;
जहँ-जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत्, पूजूँ और न देवा
साधो सहज समाधि भली॥

इस प्रसंग में महात्मा गांधी के विचार मनन-योग्य हैं—

'भक्ति शाब्दिक पूजा-मात्र नहीं है, यह तो सिर का सौदा है।'

'जिसे भक्त बनना हो उसे शरीर और मन से दुःखी, दलित और दरिद्रों की सेवा करनी चाहिए। जो दलित वर्गों को अछूत मानता है, वह शरीर द्वारा उनकी सेवा कैसे कर सकता है?'

'जो हिन्दू इस युग में पूरे दिल से अछूतों की सेवा करते हैं, वे सच्ची प्रार्थना करते हैं।'

'मेरे लिए मोक्ष का मार्ग यही है कि मैं अपने देश की और देश के द्वारा मानव-जाति की सेवा के लिए अविश्रान्त परिश्रम करता रहूँ। मैं सब प्राणियों के साथ एकता स्थापित करना चाहता हूँ।'

'मैं उस ईश्वर के सिवाय, जो लाखों मूक जनों के हृदयों में निवास करता है, और किसी ईश्वर को नहीं मानता। मैं उस ईश्वर की···इन लाखों लोगों की सेवा द्वारा ही पूजा करता हूँ।'

उपर्युक्त उद्धरणों से महात्मा जी का मन्तव्य यही प्रतीत होता है कि दुःखियों और गरीबों की सेवा ही सच्ची ईश्वरोपासना है।

आचार्य विनोबा जी ने भी, लाक्षणिक ढङ्ग से यही बताने का प्रयत्न किया है कि भक्ति में पूजा-पाठ या अर्घ्य आदि की नहीं, सेवा-भाव की ही प्रधानता है—

$$\text{भक्ति} = \frac{\text{सेवा}}{\text{अहङ्कार}}$$

सेवा के साथ यदि 'मैं'-'मैं' न हो तो वही भक्ति बन जाती है, अथवा—

'कर्म यानि प्रत्यक्ष सेवा।
भक्ति यानि सेवा-भाव।'

हमारे देश में भक्ति का रूप पर्याप्त विकृत हो चुका है। सामान्य जनता तिलक और कण्ठी धारण करनेवाले को भक्त मान लेती है। समझा जाता है कि भक्त को माला जपते रहना चाहिए; भूखे को भोजन देने के लिए भी उसे माला छोड़नी न चाहिए। किसी बीमार की सेवा के लिए माला छोड़ देने से भी भक्ति में विक्षेप पहुँचता है। हाँ, अपनी पेट-पूजा के लिए माला छोड़ने में कोई विक्षेप नहीं है।

भक्ति की कसौटी ही किसी समय सेवा न करना या निष्कर्मण्यता बन गई थी; इसलिए भक्ति के क्षेत्र में एक ज़बर्दस्त क्रान्ति की आवश्यकता थी। गीता, गांधी तथा विनोबा जी के उद्धृत किये गए विचारों में यह क्रान्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पूजा-पाठ तथा भगवद्भजन आदि निरर्थक क्रिया-कलाप हैं।

स्वधर्माचरण कठिन साधना है

यह बिलकुल सही है कि कर्त्तव्य कर्म का पालन (स्वधर्माचरण) जीवन की सबसे बड़ी साधना है। सेवा ही सच्ची भक्ति है, इसमें तनिक सन्देह नहीं है। परन्तु स्वधर्माचरण या सेवा में प्रवृत्त होना कुछ आसान नहीं है। स्वाध्याय, सत्सङ्ग, शिक्षा तथा उपदेश आदि से हमारे हृदय में यह बात भली-भाँति बैठ सकती है कि हमें पड़ोसियों के साथ भाईचारे से रहना चाहिए और दूसरों की यथाशक्ति मदद करनी चाहिए। परन्तु इस समझ या ज्ञान से हममें क्या तत्काल कुछ सद्भाव आ जाता है? नहीं; मौका लगते ही हम गरीबों की असहाय-अवस्था का लाभ उठाने से बाज़ नहीं आते; अपने द्वार पर आए हुए भिखारी को भी दुत्कार देते हैं। और तो और, घर में आये हुए अतिथि का भी हम यथायोग्य स्वागत नहीं कर सकते। सेवा और स्वधर्म के सब उपदेश धरे-धराये रह जाते हैं। हमारी जीवन-स्थिति कुछ ऐसी ही है चाहे इसे करुणता कहिए अथवा जीवन की कठिन समस्या।

बात यह है कि ठीक-ठीक जानकर भी कि अमुक काम अच्छा है या बुरा, लाभ-दायक है या हानिकारक, हम उस काम को करने या न करने को तैयार नहीं होते। वास्तव में शुद्ध ज्ञान और विवेक में कर्त्तव्य-शक्ति को उत्तेजित करने की पर्याप्त शक्ति है ही नहीं। कर्त्तृत्व के प्रेरक तो मुख्य रूप से क्रोध, करुणा, प्रेम, दया आदि भाव ही हैं। इनमें से कोई भाव हमारे हृदय में पर्याप्त वेग से उमड़े, तभी हम किसी क्रिया में प्रवृत्त होते हैं। भाव-प्रसार, ज्ञान-प्रसार के साथ-साथ नहीं हो जाता। बुद्धि ख़रगोश की चाल से चलती है, हृदय कछुए की चाल से। फलतः बुद्धि आगे दौड़ जाती है, हृदय पीछे रह जाता है।

विचार और व्यवहार में अन्तर

हमारी परिस्थितियाँ, प्राचीन और नवीन संस्कार, समाज, आदतें, पशुत्व की भावनाएँ, आलस्य, आत्मविश्वास तथा निष्ठा आदि का अभाव आदि बुद्धि तथा भाव के अनुकूल व्यवहार में अनेक बाधाएँ उपस्थित करते हैं। परिणाम यह होता है कि

हमारे विचार और व्यवहार में शुभेच्छाओं (pious wishes) और वास्तविक जीवन में पर्याप्त अन्तर बना रहता है। इसी बात को दुर्योधन ने यों स्वीकार किया है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥

महाभारत की उपर्युक्त पंक्तियों में बताई गई स्थिति केवल दुर्योधन की ही नहीं, हम सबकी भी है।

व्यास मुनि ने ज़रा झुँझलाहट के साथ पूछा है—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येषः न कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

'धर्म से धन और सुख की प्राप्ति होती है। फिर धर्म का तुम लोग पालन क्यों नहीं करते?'

व्यास मुनि ने धर्म के लाभ खूब विस्तार से समझा दिए और आशा की कि अब लोग धर्म का पालन करने लगेंगे। परन्तु धर्माचरण करनेवाले तो गिने-चुने दो-चार ही निकले। अपने समय के महाज्ञानी भीष्म से पूछो—दुर्योधन का उन्होंने पक्ष क्यों लिया? आचार्य द्रोण से पूछो—निहत्थे अभिमन्यु को जैसे-तैसे घेर-घारकर अन्याय से क्यों मार डाला? क्या यह सब धर्म था? व्यास मुनि तभी तो खीझ उठते हैं और पूछते हैं कि धर्म का सेवन क्यों नहीं करते?

कृष्ण-सखा अर्जुन प्रश्न करता है—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ (गीता ३-३६)

'न चाहने पर भी मनुष्य विवश-सा होकर अधर्म का आचरण क्यों करने लगता है?'

भगवान् ने सुन्दर उत्तर दिया है—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।' (गीता ३-३७)

'इच्छा रहती है, इसलिए मनुष्य पाप करता है। अन्तर में छिपे हुए स्वार्थ, स्पृहा, तृष्णा, क्रोध, कामना आदि मनुष्यों को स्वधर्माचरण में प्रवृत्त होने नहीं देते।' अर्जुन-जैसों की जब यह स्थिति है, तब हम-जैसों का तो पूछना ही क्या!

आवश्यक प्रश्न यही है कि यह स्थिति कैसे बदले? हमारे हृदय में आवश्यक अनुराग उत्पन्न कैसे हो जिससे हम सेवा या स्वधर्माचरण में प्रवृत्त हो सकें?

कर्त्तव्य कर्म ईश्वरोपासना-रूप हैं—यह कुछ देर के लिए मान भी लिया जाय, तो भी पूछा जा सकता है कि हममें से कितने हैं जो ठीक-ठीक यह दावा कर सकते हैं कि वे सिर्फ कर्त्तव्य कर्म ही करते हैं? रोज़-रोज़ हमसे भूल-चूक होती ही रहती है। हम बहुत-से ऐसे कर्म कर जाते हैं जिन्हें निश्चित रूप से अकर्म ही कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में यह दावा करना कि हम तो अपने कर्त्तव्य कर्मों द्वारा परमेश्वर की उपासना करते हैं, वस्तुतः आत्मप्रवंचना ही है। ऐसी प्रवंचना से विचारशील के अन्तस् को सन्तोष कैसे हो सकता है?

अनुरागशून्य सेवा क्या पूजा है ?

प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म को ईश्वरोपासना कहना कठिन ही है । उदाहरणार्थ, एक गृहिणी अत्यन्त कर्त्तव्य-निष्ठ हो सकती है; परन्तु हो सकता है उसे ईश्वरोपासक न कहा जा सके । जो गृहिणी पति की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखती है, उसकी आवश्यकताओं और अभिलाषाओं का अनुसरण करती है, बाल-बच्चों को खूब साफ़-सुथरा रखती है, उन्हें नियत समय पर खिला-पिलाकर स्कूल भेज देती है, घर की व्यवस्था सुन्दर रखती है, मितव्ययता से सब काम-काज चलाती है, उसे कर्त्तव्यनिष्ठ कहना ही होगा । परन्तु हो सकता है उस गृहिणी के मन में अपने काम के प्रति विशेष अनुराग न हो, उसका दिल भीतर-ही-भीतर से कुढ़ता हो, उच्च शिक्षण प्राप्त करने के लिए उसका मन छटपटाता हो; उसे लगता हो कि घर के धन्धों में उसका अमूल्य समय व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है । कुलीनता अथवा उच्च संस्कारों के कारण वह अपनी मानसिक व्यथा स्पष्ट रूप में कहती न हो, यद्यपि उसे अपना कर्त्तव्य भारी बोझ-रूप और जीवन नीरस एवं निरानन्द प्रतीत होता हो । इस गृहिणी का धैर्य धन्य हो सकता है, परन्तु उसके अनुराग-शून्य अतएव आनन्दहीन कर्म को ईश्वरोपासना कहना विचारणीय ही है ।

अहङ्कार से कर्त्तव्य में कुरूपता

एक सेठ अपनी अपार सम्पत्ति में से १० लाख रुपये किसी शिक्षा-संस्था को दान देता है । वैश्य होने के नाते दान देना सेठ का परम धर्म ही है । विद्या के प्रसारार्थ दिया गया दान सबसे उच्च कोटि का दान है । इसलिए कहा जा सकता है कि सेठ ने अपने आवश्यक कर्त्तव्य का सुन्दर ढंग से पालन किया है । सेठ का दान अनुकरणीय भी हो सकता है; उसे पुण्य कर्म भी कहना होगा । परन्तु इस दान को ईश्वरोपासना कहने से पहले, दाता की भावनाओं की सूक्ष्म छानबीन करना जरूरी होगा । दान दस लाख रुपयों का होने से ईश्वरोपासना नहीं हो जाता । यदि लाखों रुपयों का दान ख्याति के लिए, अपने अहंकार के पोषण के लिए, अपने-जैसे दूसरे सेठ को नीचा दिखाने के लिए, अपने अधिकार और सत्ता की मर्यादा विस्तृत करने के लिए, अथवा किसी सूक्ष्म स्वार्थ की पूर्ति के लिए दिया गया है, तो सेठ का दान राजस कोटि का ही है । ईश्वरोपासना-रूप होने के लिए दान सात्त्विक ही होना चाहिए । इस प्रसंग में गीता के निम्न श्लोक विचारणीय हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

(गीता १७ । २०-२१-२२)

भक्ति की खरी कसौटी

कर्त्तव्य कर्म को ईश्वरोपासना-रूप कहने के लिए गीता ने निम्न कड़ी शर्त प्रस्तुत की है—

> अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ (गीता १७-२८)

स्पष्ट है कि भगवान् कृष्ण श्रद्धा या अनुरागशून्य दान और परोपकार-जैसे पुण्य कार्य को भी सत, शुभ या प्रशस्त कर्म कहने को तैयार नहीं, ईश्वरोपासना तो कोसों दूर की बात है ।

उपर्युक्त विवेचना का तात्पर्य यह है कि कर्त्तव्यनिष्ठा प्रशंसनीय तो है, परन्तु पूजा-रूप नहीं है। स्वार्थ, आसक्ति, अहंकार आदि से शून्य कर्त्तव्य कर्म ही गीता की दृष्टि में प्रशस्त कर्म है । यह प्रशस्त कर्म ही अनुराग और श्रद्धा से भरपूर होकर ईश्वरोपासना-रूप बन जाता है । ईश्वरोपासना-रूप कर्म अनुराग से खचाखच भरा होने से आनन्द का अक्षय स्रोत होता है; अन्तःकरण को वह परितृप्त और जीवन को कृतार्थ करता है ।

आत्मशुद्धि का प्रबल अस्त्र

मुख्य समस्या अब यही हो जाती है कि अन्तस् को स्वार्थ-अहंकार आदि विकारों से शून्य (अर्थात् शुद्ध) और अनुरागपूर्ण कैसे बनाया जाय ? प्रभु-प्रार्थना तथा भजन आदि मुख्य रूप से हमारी यहीं सहायता करते हैं ।

'Blessed are the pure in heart, for they shall see God.'

'जो हृदय से शुद्ध नहीं हैं, उन्हें ईश्वर-दर्शन कभी नहीं हो सकता ।' ठीक है; परन्तु शुद्धि का मार्ग कठिन और दुर्गम है । पूर्ण शुद्धता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को मन, वचन और कर्म में सर्वथा विकार-रहित बनना पड़ता है । उसे प्रेम और घृणा, राग और द्वेष की विरोधी धाराओं से ऊपर उठना होता है । मैं जानता हूँ कि मुझमें अभी तक यह त्रिविध शुद्धि नहीं आई है, यद्यपि मैं उसके लिए अविश्रान्त प्रयत्न करता हूँ । सूक्ष्म विकारों पर विजयी होना मुझे शस्त्रबल द्वारा संसार की भौतिक विजय से कठिन प्रतीत होता है ।'

इस कठिन कार्य में श्रेयार्थी की सहायता करनेवाली प्रभु-प्रार्थना ही है । आत्म-शुद्धि का इससे अधिक प्रबल अस्त्र दुनिया ने अभी तक नहीं जाना है । महात्मा जी अपने जीवन के अनुभव से कहते हैं कि 'सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना चमत्कार कर सकती है । प्रार्थना, शुद्धि की एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रक्रिया है, और जो चीज़ शुद्धि करती है वह अवश्य ही हमें अपना कर्त्तव्य अधिक अच्छी तरह करने और अपना लक्ष्य सिद्ध करने के लिए समर्थ बनाती है ।'

'प्रार्थना या तो याचना-रूप होती है या व्यापक अर्थ में वह ईश्वर से भीतरी लौ लगाना है । दोनों ही सूरतों में अन्तिम परिणाम एक ही होता है । जब वह याचना

के रूप में हो, तब यह आत्मा की सफ़ाई और शुद्धि के लिए, उसके चारों ओर लिपटे हुए अज्ञान और अन्धकार के आवरण को हटाने के लिए होनी चाहिए। इसलिए जो अपने भीतर दिव्य ज्योति जगाने को तड़प रहा हो, उसे प्रार्थना का आसरा लेना होगा।'

'यह मैं अपने और अपने साथियों के थोड़े अनुभव से कहता हूँ कि जिसने प्रार्थना के जादू का अनुभव किया है, वह लगातार कई दिन तक आहार के बिना तो रह सकता है, परन्तु प्रार्थना के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। कारण, प्रार्थना के बिना भीतरी शान्ति नहीं मिलती।'

आदर्श की दृष्टि से यह अवश्य कहा जा सकता है कि सच्ची सेवा ईश्वरोपासना-रूप ही है; इसलिए दूसरों की सच्ची सेवा करनेवालों को भगवद्-भजन आदि की ज़रूरत नहीं है। परन्तु सच्ची सेवा है कहाँ? वह भी तो आदर्श की वस्तु ही है! हम यह कह सकने के लिए पर्याप्त उन्नत नहीं हैं कि हमारे सब कार्य समर्पण के कार्य हैं, अथवा हम सच्चे सेवक हैं। इसलिए मेरे-जैसों के लिए प्रार्थना तथा भगवद्भजन आदि की शरण लिये बिना कोई चारा ही नहीं है। सेवा को निरन्तर शुद्ध और सच्ची बनाये रखने के लिए बड़े-से-बड़े भक्त को भी भगवद्भजन आदि की ज़रूरत शायद रहती ही है। इसीलिए किसी सच्चे कर्मयोगी या भक्त ने जीवन में प्रार्थना व भगवद्-भजन को अनावश्यक समझकर छोड़ दिया हो, कहीं सुना नहीं गया है।

अन्त घड़ी तक भजन

महात्मा जी से बड़ा सच्चा कर्मयोगी इन दिनों कौन हुआ है! महात्मा जी की मूर्ति निहारकर तथा उनकी सेवाओं को स्मरण करके हमारी आँखें जब-तब आनन्दाश्रुओं से भीनी हो जाती हैं। महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने ठीक ही तो कहा है कि 'आनेवाली पीढ़ियाँ शायद ही विश्वास कर सकें कि महात्मा जी जैसे उच्च आध्यात्मिक व्यक्ति के चरण इस धरती पर कभी पड़े थे।' उन्होंने भगवद्भजन, जीवन की अन्तिम घड़ी तक भी कहाँ छोड़ा था! भगवद्भक्ति का अमृत पिलाने के लिए ही मन्दिर में आते हुए उस देवदूत को किसी सिरफिरे हत्यारे ने अपनी गोलियों का शिकार बनाया था। कैसी करुणता और क्रूरता है! हत्यारे के पाप से हिमगिरि का धवल शृंग ही गिर गया, अथवा कहो कि जनता के दिल में पवित्रता और प्रेम के उद्गार उत्पन्न करनेवाला भक्ति-स्रोत ही सदा के लिए सूख गया। उस सबको याद करके जितने आँसू बहाओ, कम ही हैं।

लेख में स्थान-स्थान पर हमने महात्मा जी के वचन मुक्त-रूप से उद्धृत किये हैं। हम अपने शब्द अवश्य लिख सकते थे, परन्तु वे शायद निष्प्राण होते। महात्मा जी की अनुभव-भरी वाणी में जादू है। वह कठोर-से-कठोर और शुष्क हृदय की जड़िमा को भी छिन्न-भिन्न कर सकती है। सहस्रों मुखों से उसका पुनरुच्चारण हो, तो भी शायद पर्याप्त न हो।

हम जाने कहाँ बह गये ! हम कह रहे थे कि आदर्श की बात चाहे कुछ भी हो, व्यवहार में किसी सच्चे कर्मयोगी ने प्रार्थना तथा भगवद्भजन से कभी किनारा नहीं किया। श्री अरविन्द तथा महर्षि दयानन्द के उदाहरण भी इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य हैं। वे दोनों महर्षि अपने-अपने ढंग से पूर्ण कर्मयोगी ही थे। भगवद्भजन द्वारा ही वे अपने कर्मयोग में शायद पूर्णता ला सके थे। प्रार्थना आदि का यही चमत्कार है। इसीलिए कहा है—

भजन ढाल है

'हमारा जन्म अपने मानव-बन्धुओं की सेवा के लिए हुआ है, और यह काम हम अच्छी तरह नहीं कर सकते, यदि हम पूरी तरह से जागृत न रहें। मनुष्य के हृदय में अन्धकार और प्रकाश की शक्तियों में सतत संग्राम रहता है। अतः जिसके पास प्रार्थना की ढाल का सहारा नहीं है, वह अन्धकार की शक्तियों का शिकार हो जायगा।'

जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्म पर्याप्त निष्ठा से करते हैं, उनके लिए भी प्रार्थना की ढाल आवश्यक ही है। कारण—

'हमारे दैनिक कार्यों में व्यवस्था, शान्ति और संवादिता लाने का एकमात्र उपाय प्रार्थना है। इस प्राणभूत वस्तु को सँभाल लिया जाय तो और सब बातें अपने-आप सँभल जायेंगी। किसी वर्ग का एक कोण सम कर दिया जाय तो दूसरे कोण अपने-आप सम हो जाते हैं।'

'जो मनुष्य प्रार्थनापूर्ण हृदय के बिना सांसारिक कर्म करेगा, वह स्वयं भी दुःखी होगा और संसार को भी दुःखी करेगा।'

भजन से स्वभाव और संस्कारों का रूपान्तर

सेवा और भगवद्भजन में ज़रा भी विरोध नहीं। भजन से सेवा में किसी प्रकार का विक्षेप होता हो, यह बात भी नहीं। इसके विपरीत वह सेवा में सहायक है, परमेश्वर की याद को वह ताज़ा बनाता है तथा सेवा में रही-सही कमी को दूर करके उसे सच्ची पूजा का रूप देता है। ब्लेअर (Blair) ने ठीक ही कहा है—

'It is for the sake of man, not of God, that worship and prayers are required; that man may be made better, and acquire those pious and virtuous dispositions in which his highest improvement consists.'

भगवान् को भजन आदि की ज़रा भी ज़रूरत नहीं। उसे उसके कर्त्तव्य को हम क्या याद दिलायेंगे ? हम स्वयं कमज़ोर हैं। हम अपने पुराने संस्कारों, आदतों, बुराइयों, राग-द्वेष की अशुद्ध भावनाओं तथा वृत्तियों आदि को बदलने में बार-बार असफल होते हैं। इन वृत्तियों और दृढ़ संस्कारों को बुद्धि, ज्ञान या विवेक आदि परिवर्तित करने में बहुत सीमित ही सिद्ध होते हैं। उसके लिए दया, करुणा, अनुराग आदि भावनाओं को पुनः-पुनः प्रबल रूप से जगाना पड़ता है। भजन-प्रार्थना आदि से

ये भावनाएँ ठीक-ठीक उद्‌बुद्ध होती हैं, फलतः मनुष्य के स्वभाव और संस्कारों का रूपान्तर होने लगता है। वह अपने कर्म अधिक शुद्ध और प्रामाणिक ढंग से करने योग्य हो जाता है। इसलिए कार्लायल (Carlyle) के शब्दों में कहना होगा कि—'भगवद्‌भजन आदि के प्रति अरुचि हो जाने से बड़ी विपत्ति किसी राष्ट्र पर शायद ही कभी आ सकती है।'

भजन नम्रता की पुकार है

अपने हृदय की छानबीन के सिवा प्रार्थना क्या है ? इन घड़ियों में मनुष्य अपनी पिछली बातों पर विचार करता है, अपनी दुर्बलताओं एवं दोषों को स्वीकार करता है, अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगता है, आँसू बहाता है और अधिक अच्छा बनने के लिए बल माँगता है। अपनी कमज़ोरियों और विवशताओं को भली-भाँति अनुभव करते हुए वह अधिक नम्र होता है। अपने आसपास के व्यक्तियों के प्रति वह सहानुभूति और सद्‌भाव धारण करने लगता है। इस प्रकार प्रार्थना नम्रता की पुकार है।

मनुष्य के ज्ञान और शक्ति का कोई अन्त नहीं। इनकी सहायता से वह दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त करता है और परोपकार के बड़े-बड़े कार्य भी करता है। उसके हृदय में सद्‌भाव और उत्साह कुछ कम नहीं है। इससे वह सेवा करने में समर्थ होता है। परन्तु उसके दिल का अहंकार, उसकी बड़ी-से-बड़ी सेवा को भी धूल में मिला देता है। भक्ति तक उसे पहुँचने ही नहीं देता। इसीलिए तो कहा है कि 'जिसमें ज़रा भी अहंकार है वह ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता।' अहंकार सबसे बड़ा अन्तराय (अवरोध) है।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥ (महात्मा कबीर)

प्रार्थना, आत्मनिरीक्षण के आह्वान द्वारा अहंकार के सिर पर बार-बार ज़बर्दस्त चोट करती है। अहंकार जब कुचल दिया गया, तब तो—

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न तूं।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ॥

फिर तो हालत यह हो जाती है——

लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥ (महात्मा कबीर)

सन्त सेवा करते थकते क्यों नहीं ?

अहङ्कार चला गया, फिर अनुराग का उद्रेक होता है। सब ओर महामहिमाशाली की छटा दिखाई देने लगती है। उसकी लीलाओं को निहारते हुए चित्त गद्‌गद होता है। उसके अन्तस् में आनन्द की, अनुराग की ऊँची हिलोरें उठने लगती हैं। फलतः स्वार्थ और संकीर्णता की दीवारें गिर जाती हैं। आत्मीयता और बन्धुता की

भावना विस्तृत होती है । श्रेयार्थी, आशा और उत्साह से भर जाता है । सन्मार्ग अब सरल हो जाता है ।

'जब कोई मनुष्य इस प्रकार अपने-आपको ईश्वर में खो देता है, तब वह तुरन्त स्वयं को सब प्राणियों की सेवा में संलग्न पाता है । वह उसके लिए आनन्द और मनोरंजन बन जाती है । वह एक नया आदमी हो जाता है, जिसे ईश्वर की सृष्टि की सेवा में खप जाने में कभी थकावट मालूम नहीं होती ।'

अहङ्कार-रूपी अन्तराय के हट जाने से 'जब भूतमात्र में भगवान् दिखाई देने लगेगा, तब सन्त सेवा के लिए क्यों तरसते हैं, इसका रहस्य समझ में आ जायगा ।'

(विनोबा जी)

भजन से भगवान् जगते हैं

भजन आत्मनिरीक्षण का आह्वान ही नहीं, परमेश्वर के जगाने का अचूक साधन भी है । हम सब के भीतर परमेश्वर अवश्य है, परन्तु वह प्रायः सोया हुआ है । इसलिए दिन-भर पशुत्व की उछल-कूद रहती है । व्यर्थ की चिन्तायें, इसकी या उसकी बुराई, दुनिया-भर की माथा-कूट, छल-कपट, कलह-विवाद, शोर-गुल और लूट-खसोट, यही जीवन-क्रम रहता है । श्रेयार्थी इस जीवन-पद्धति को बदलने के लिए अपने भीतर के भगवान् को जगाता है । दूसरे शब्दों में परमेश्वर का गुण-कीर्तन करते हुए वह अपने भीतर सत्य में श्रद्धा, धर्म की विजय पर विश्वास, आत्मीयता, दया, प्रीति, मैत्री और परोपकार की भावनाएँ उद्‌बुद्ध करता है । बुराई की जगह वह भलाई को हृदय-सिंहासन पर बिठलाता है । इस प्रकार प्रार्थना-भजन आदि से मनुष्य का शैतान से नाता टूटता है और ईश्वर से पवित्र गठबन्धन हो जाता है । इस गठबन्धन से उसकी श्रद्धा और विश्वास की सीमा नहीं रहती । पर्वत को इधर-से-उधर और समुद्र को लाँघ जाने की शक्ति प्राप्त होती है । नस-नस में मस्ती छा जाती है । प्रसन्नता का कोई पार नहीं, भीति का नाम नहीं । भक्त के सम्पर्क में जो कोई आता है, प्रफुल्लित और प्रसन्नचित्त हो उठता है । इस स्थिति में भक्त के लिए असम्भव क्या है !

सम्पूर्ण विवेचन का सार यह है कि प्रार्थना या भगवद्‌भजन आत्मा का भोजन है । शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जैसे भोजन और व्यायाम आवश्यक हैं, उसी प्रकार आत्मिक स्वास्थ्य के लिए भगवद्‌भजन, स्तवन व कीर्तन आवश्यक हैं । इससे आत्मा में दृढ़ता तथा पाप और प्रलोभनों से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। अहङ्कार का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण-ग्रहण में पुरुषार्थ और अनुराग का उद्रेक आदि प्रार्थना व भजन-कीर्तन के फल हैं । प्रभु-संगति में जो अवर्णनीय आनन्द की उपलब्धि होती है, वह तो अनुभव का ही विषय है । 'स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ।'

महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में स्तुति-प्रार्थना आदि की उपयोगिता संक्षिप्त तथा सुनिश्चित शब्दों में अभिव्यक्त की है—

"**प्रश्न**—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़, स्तुति-प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा ?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो फिर स्तुति-प्रार्थना क्यों करना ?

उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है।

स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानिता, उत्साह और सहाय मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार।"

शुद्ध भाव की उच्च भूमिका पर पहुँचने के लिए भगवद्भजन सीढ़ी-रूप है। सेवा को पूजा में रूपान्तरित करने का यही प्रधान साधन है।

आचार्य विनोबा जी की माँ के वचन से हम इस विषय का उपसंहार करना चाहते हैं—

'जहाँ देश-सेवा की तो उसमें भगवान् की भक्ति आ ही जाती है। फिर भी थोड़ा भजन चाहिए।'

विनोबा जी ने सूत्र-रूप में कारण कह दिया है—

"निर्दोष यज्ञ (सेवा) की यदि अशक्यता न होती, तो भक्ति की आवश्यकता न होती।"

गीता में 'ध्यान योग' आदि विषयों की विस्तार से चर्चा करना भगवान् ने इसीलिए आवश्यक ही समझा है—

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥ (गीता ६-१२)

'आत्म-शुद्धि के लिए और सेवा को यथासम्भव निर्दोष बनाने के लिए, मनुष्य एकान्त में बैठकर परमेश्वर के गुणों का प्रीतिपूर्वक ध्यान और स्मरण अवश्य करे। स्मरण की सहायता से सेवा शनैः-शनैः उपासना की प्रतिष्ठा अवश्य पा सकेगी।'

सच्चा भक्त अथवा सन्ध्याशील कौन ?

सच्चे भक्त के क्या लक्षण हैं, एक भक्त अथवा सन्ध्याशील आर्य में किन गुणों का विकास हो जाना चाहिए, इसका 'भगवद्गीता' के १२वें अध्याय में जैसा सुन्दर और विचारोद्बोधक वर्णन हुआ है, वैसा संसार के साहित्य में अन्यत्र शायद दुर्लभ ही है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥ १३॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ १४॥

जो प्राणिमात्र के प्रति द्वेष-रहित, सबका मित्र, दयावान्, ममता-रहित, अहङ्कार-शून्य, सुख-दुःख में समान, क्षमाशील, सदा सन्तोषी, योगयुक्त, इन्द्रिय-निग्रही और दृढ़-निश्चयी है, जिसने अपनी बुद्धि और मन मुझमें अर्पण कर दिये हैं, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।। १५ ।।

जिससे लोग उद्वेग नहीं पाते, लोगों के दोषों से जो उद्वेग नहीं पाता, जो हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, भय, उद्वेग आदि से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। १६ ।।

जो किसी पर आश्रित नहीं है, भीतर-बाहर से जो स्वच्छ है, अपने कार्य में जो दक्ष है, ऐहिक तथा पारलौकिक भोगों के प्रति जो तृष्णा-रहित है, जो अपनी सब व्यथाओं को तुच्छ समझता है, कर्त्तव्य का अभिमान जिसने त्याग दिया है, वह भक्तिपरायण मुझे प्रिय है ।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।। १८ ।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।। १९ ।।

शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, इन सब में जो समतावान् है, जो आसक्तिरहित है, जो निन्दा और स्तुति में समानभाव से वर्तता है, मौन धारण करता है, चाहे जो मिले उससे सन्तुष्ट रहता है, किसी स्थान या प्रतिष्ठा से जो आबद्ध नहीं है, अपने विचार और भक्ति में जो स्थिर है, ऐसा भक्त परमेश्वर को अतिशय प्रिय होता है ।

भक्त ने जहाँ पहुँचना है, उसका स्पष्ट निर्देश ऊपर के श्लोकों में हुआ है । नर ने नारायण जैसा बनना है । आदर्श तो हमेशा उच्च रहेगा ही । संकल्प और साधना के लिए असम्भव कुछ नहीं है । मानव-जीवन 'साधना' के लिए ही है ।

'वेद प्रकाश' का घोषणा-पत्र

१. प्रकाशन	:	दिल्ली ।
२. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३. मुद्रक का नाम	:	विजयकुमार
४. प्रकाशक का नाम	:	विजयकुमार
५. सम्पादक का नाम	:	विजयकुमार
नागरिकता	:	भारतीय
पता	:	४४०८, नई सड़क, दिल्ली ।
६. स्वामित्व	:	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली ।

मैं विजयकुमार एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं ।

प्रकाशक—विजयकुमार

स्वर्गीय नित्यानन्द पटेल कृत

'पूर्व और पश्चिम'

के विषय में

दो आदरणीय मनस्वियों की सम्मतियाँ

हमारा राष्ट्र आज जब संक्रमणकाल में से गुज़र रहा है, तब-हमारा देश क्या था, हमारी संस्कृति क्या थी और आज हम कहाँ हैं, इन सब बातों का विश्लेषण करके हमें अपना मार्ग निश्चित करना है। इस दृष्टि से पूर्व-पश्चिम की संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक कार्य है।

'पूर्व और पश्चिम' में लेखक ने ऐसा विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है और प्रामाणिकता से अपना अभिप्राय व्यक्त किया है। प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से पाठकों को विशेष विचार करने के लिए बहुत-सी सामग्री मिल सकेगी। इसी में लेखक के उद्देश्य की पूर्ति होती है, ऐसा मैं मानता हूँ।

श्री मोरारजी देसाई
(प्रधान मंत्री, भारत सरकार)

"प्राचीन ऋषियों के पुनीत आदर्शों तथा पश्चिमी लोगों के उत्तम आचरण में ठीक-ठीक मेल बैठाकर नवीन भारत की रचना करना—यही देश के समक्ष मुख्य प्रश्न है, जिसे 'पूर्व और पश्चिम' में सुन्दर और संयुक्तिक ढंग से सुलझाया गया है।

निबन्ध धारावाहिनी, प्रांजल भाषा में सुगुम्फित है और ध्यान से पढ़ने योग्य है। विषय की व्यापकता और शैली की प्राणवत्ता के कारण उपर्युक्त कृति से हिन्दी साहित्य सचमुच समृद्ध हुआ है।"

—आचार्य विश्वबन्धु
(सदस्य, केन्द्रीय संस्कृत परिषद्)

सजिल्द पुस्तक मूल्य ७.५०

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

'सन्ध्या-विनय'

और

'जीवन की राहें'

किस कारण सबके लिए पढ़ना आवश्यक है ?

मैं आपकी "जीवन की राहें" और "सन्ध्या विनय" दोनों पुस्तकें पढ़ गया हूँ। दोनों ही अच्छी हैं "जीवन की राहें" कई आवश्यक बातों की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। यों उसमें कुछ ऐसी बातें हैं जो विवाद का विषय हो सकती हैं, परन्तु जो लिखा है वह विचारोत्पादक है।

माननीय स्वर्गीय डॉ० श्री सम्पूर्णानन्द

संसार में उलझे रहकर भी जीवन-मुक्त होने का एक ही उपाय है—भावना और कर्म की पवित्रता। "जीवन की राहें" के निबन्ध इसी दृष्टि को सम्मुख रखकर लिखे गए हैं। मुझे विश्वास है कि इन सुविचारित निबन्धों के चिन्तन-मनन से पाठकों की विचार-गरिमा में वृद्धि एवं जीवन सुसंस्कृत बनाने में बड़ी सहायता मिल सकेगी। इस उपयोगी ग्रन्थ के लिए लेखक का साधुवाद करता हूँ।

डॉ० नगेन्द्र

(अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, दिल्ली यूनिवर्सिटी)

मैं हर सिद्धान्त या हर कृति को इसी कसौटी पर कसता हूँ कि वह मनुष्य के ऐहिक जीवन के लिए कितनी उपयोगी है। मुझे प्रसन्नता है कि श्री नित्यानन्द पटेल की "जीवन की राहें" मेरी कसौटी पर खरी उतरी है।

मैं इस कृति का हार्दिक स्वागत करता हूँ और चाहता हूँ कि अन्य भी इसका सोत्साह स्वागत करें।

"सन्ध्या विनय" पुस्तक पढ़ी, मन को बड़ा समाधान हुआ। जो आर्यजन इस पुस्तक के अनुसार दीर्घ काल तक रोज़ सन्ध्या करेंगे, उनका हृदय आत्मिक बल से सामर्थ्यवान् बनेगा और वे निस्सन्देह दीर्घजीवी बनेंगे।

आर्यों को महर्षि दयानन्द जी ने यह सन्ध्या दी और आर्यों पर बडे उपकार किये। श्री नित्यानन्द पटेल ने इस सन्ध्या के मंत्रों का रहस्य बताकर, नित्य सन्ध्या करने की आर्यों को उत्तेजना दी है।

स्व० श्री पूज्यपाद पं० सातवलेकर

श्री नित्यानन्द जी वेदालंकार एम० ए० की मीठी लेखनी का चमत्कार उनकी कृति "सन्ध्या विनय" में देखा। सन्ध्या के हर मन्त्र के पदार्थों के पश्चात् कितनी सुन्दर प्रार्थनायें लिखी गई हैं, जो हृदय में उतरनेवाली हैं! अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है। सन्ध्या करनेवाले नर-नारी सन्ध्या के साथ यदि इन प्रार्थनाओं को पूरी मस्ती के साथ पढ़ें तो उनके चित्त पर प्रभु-भक्ति का सुन्दर रंग चढ़ेगा।

—स्व० आनन्द स्वामी सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति ।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है ।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	२.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश १५.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कारविधि ,, ४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,, १०.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, २.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहारभानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** २.००
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे(छोटा) ,, ४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,, ६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०
बाल शिक्षा ०.६०
उपनिषद् प्रकाश १२.००
वैशेषिक दर्शन ८.००
न्याय दर्शन ६.००
सांख्य दर्शन ५.००

बालोपयोगी

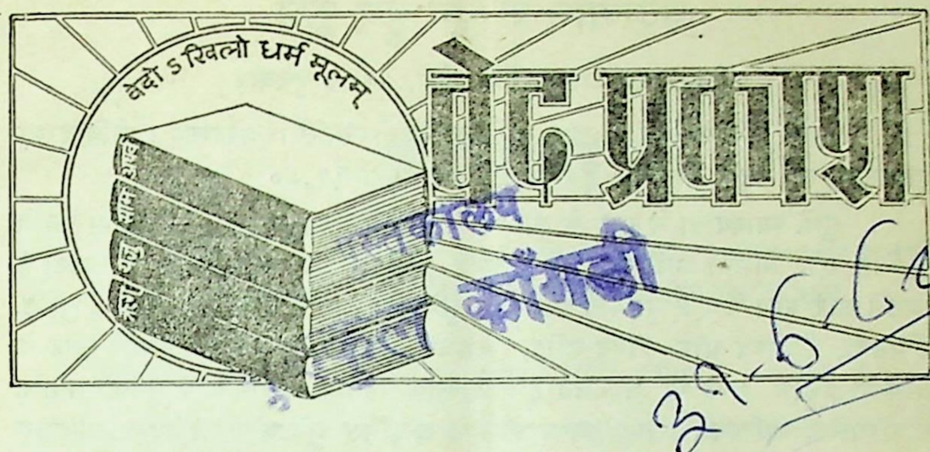
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००
नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.००
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा नवम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह भी नहीं रहे !

आर्यसमाज खालापार सहारनपुर का उत्सव मनाया जा रहा था। स्वामीजी का व्याख्यान ५ मार्च १९७८ को रात्रि के दस बजे समाप्त हुआ। अपना व्याख्यान समाप्त कर स्वामीजी उठे और स्टेज पर पीछे जाकर बैठ गये। उसी समय स्टेज पर ही स्वामी जी का निधन हो गया।

स्वामीजी का जन्म पन्द्रह नवम्बर १८९९ में अलीगढ़ जिले के टप्पल गाँव में हुआ था। पुलिस आफिस आबूरोड में कर्मठ और ईमानदार हैडक्लर्क के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित की। सेवाकाल में ही उनका झुकाव योग तथा वेद की ओर हुआ। सन् १९४९ में उन्होंने संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। वेद का प्रचार करने के लिए अजमेर में वेद संस्थान की नींव डाली। १९५८ में राजौरी गार्डन नई दिल्ली में वेद संस्थान की स्थापना करके यहीं से वेद प्रचार करने में संलग्न रहे। लगभग पिछले २५ वर्षों से 'सविता' नामक मासिक-पत्र भी उनकी देख-रेख में प्रकाशित हो रहा था।

स्वर्गीय स्वामी विद्यानन्द जी विदेह ने न केवल भारत के कोने-कोने में वेद की दुन्दुभि बजाई बल्कि अफ्रीका, मॉरीशस, इंगलैंड आदि का भ्रमण कर वेद का प्रचार किया। स्वामीजी की वेद भाष्य की शैली बड़ी सरल और सुबोध थी। वेद, गीता, योग आदि पर उनकी ८० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

सर्वश्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी, स्वामी ब्रह्ममुनि जी महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती, पं० प्रकाशवीर शास्त्री, कविरत्न प्रकाश की मृत्यु को अभी आर्यजगत् भूल भी नहीं पाया था। श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह जी के निधन से आर्यसमाज का एक और स्तम्भ गिर गया।

वेदप्रकाश परिवार उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १९७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ६]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया   [अप्रैल, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका : एक सरल अध्ययन

लेखक

वेदोपाध्याय पं० श्री विश्वनाथ विद्यालंकार

ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना समर्पण विषय

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि से ईश्वर यद्यपि अपना नियम छोड़ कर, स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने वाले का पाप स्वयं नहीं छुड़ा देता, तो भी स्तुति आदि से यह लाभ होता है कि कि स्तुति से ईश्वर में प्रीति उत्पन्न होती है और स्तुति करनेवाला ईश्वर के आदर्श गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव को सुधार सकता है।

प्रार्थना से निरभिमानता होती है, और परमात्मा की सहायता मिलती है।

उपासना द्वारा परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है।

समर्पण द्वारा ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण करना होता है। अर्थात् अपनी आयु, प्राण, कर्मफल आदि को ईश्वर की सेवा और उसकी आज्ञा के पालन में समर्पित करना। अर्थात् ईश्वर की प्रसन्नता के निमित्त अपने सब सांसारिक तथा आध्यात्मिक कर्मों तथा कर्मफलों को परमेश्वर के समर्पण कर देना। जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पण कर देता है उसके लिये परमकारुणिक पमेश्वर सब सुख देता है।

स्तुति के दो प्रकार और तदनुसार यत्न

स्तुति दो प्रकार की होती है। एक सगुण-स्तुति और दूसरी निर्गुण-स्तुति। आप शुद्ध हैं, सर्वज्ञ हैं, सनातन हैं—इस प्रकार की स्तुति सगुण-स्तुति कहलाती है। क्योंकि इस प्रकार की स्तुति में ईश्वर के उन-उन गुणों का वर्णन किया जाता है जो गुण कि ईश्वर में विद्यमान हैं। आप शरीररहित हैं, मृत्युरहित हैं, पाप से विद्ध नहीं हैं, आकाररहित हैं—इस प्रकार की स्तुति निर्गुण-स्तुति कहलाती है। क्योंकि इस प्रकार की स्तुति में शरीर, मृत्यु, पाप आकार आदि गुणों से ईश्वर को पृथक् मानकर उसकी स्तुति की जाती है। स्तुति करनेवाले को चाहिये कि वह अपने गुण-कर्म-स्वभाव को भी ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश बनाने का यत्न करता रहे।

प्रार्थना के दो प्रकार और तदनुसार यत्न

प्रार्थना भी सगुण और निर्गुण रूप से दो प्रकार की होती है। भक्त ईश्वर को जिस सद्‌गुण से युक्त जानता है उस सद्‌गुण से अपने आप को भी युक्त करने की प्रार्थना को सगुण-प्रार्थना कहते हैं। तथा भक्त ईश्वर को जिस दोष या दुर्गुण से पृथक् जानता है उस दोष या दुर्गुण से अपने-आपको भी पृथक् रखने की प्रार्थना को निर्गुण-प्रार्थना कहते हैं। जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसे वैसा व्यवहार भी करना चाहिये। जैसे कोई सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है तो उसे चाहिये कि वह जितना अपने से प्रयत्न हो सके अपनी बुद्धि को सर्वोत्तम बनाता भी रहे अर्थात् अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ के उपरान्त ईश्वर से सर्वोत्तम बुद्धि की प्रार्थना करना उचित है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष की सहायता दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष की सहायता ईश्वर भी करता है।

परन्तु ईश्वर से ऐसी प्रार्थना न करनी चाहिये कि हे ईश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश करो, मुझको सबसे बड़ा करो, मेरी ही प्रतिष्ठा हो, और मेरे अधीन सब हो जाँय—इत्यादि। ऐसी प्रार्थना ईश्वर स्वीकार नहीं करता। क्योंकि ईश्वर उपकार करने की प्रार्थना में तो सहायक होता है, हानिकारक कर्मों में नहीं।

उपासना के दो प्रकार

उपासना भी दो प्रकार की होती है। सगुण-उपासना और निर्गुण-उपासना। सर्वज्ञत्व आदि गुणों के साथ ईश्वर की उपासना करनी सगुण उपासना है। द्वेष, रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श आदि गुणों से ईश्वर को पृथक् मानकर उसमें दृढ़ स्थिति हो जाना निर्गुण-उपासना

है। उपासना का अर्थ है "समीप स्थिति होना"। उप (समीप), आसना (स्थित होना)।

उपासना की रीति

जब उपासना करना चाहे तब शुद्ध एकान्त देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोककर मन को नाभि प्रदेश में या हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा में, अथवा पीठ की हड्डी के मध्य स्थान में स्थिति कर, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को वार-वार करके, अपनी आत्मा को भली-भाँति ईश्वर में लगाकर उसमें मग्न हो जाय। इस प्रकार उपासक का आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से परिपूर्ण हो जाते हैं, और उपासक नित्यप्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो उपासक आठ प्रहर[१] में एक घड़ी[२] भर इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त होता है।

उपासना में अपने मन और बुद्धिवृत्तियों को ईश्वर में स्थित करना होता है। उपासक अपने मन और बुद्धिवृत्तियों को, उपासना द्वारा, जब पहिले ईश्वर में युक्त करता है और ऐसा यत्न लगातार करता रहता है, तब ईश्वर अपनी कृपा से उसके मन और बुद्धिवृत्तियों को अपने में युक्त कर लेता है। तदनन्तर उपासक ज्योति-स्वरूप ईश्वर की ज्योति का साक्षात् कर लेता है। उपासना-योग द्वारा मन शुद्ध होकर, प्रभु के प्रकाश को प्राप्त हो, आनन्द लाभ करता है। इसमें अन्तर्यामी ईश्वर अपनी असीम कृपा से योगाभ्यासी को योगयुक्त करके उसकी आत्मा में महाप्रकाश प्रकट कर देता है। इसके लिये आवश्यक है कि अभ्यासी सच्चे प्रेम और भक्ति से ईश्वर की उपासना किया करे। साथ ही मंगलमय परमात्मा से प्रार्थना भी करते रहना चाहिये कि आपकी कृपा से हमें उपासना-योग प्राप्त हो, तथा आपकी कृपा से हमारी १० इन्द्रियाँ, १० प्राण, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल—ये २८ हमारी शक्तियाँ कल्याणमार्ग में प्रवृत्ति रहें। हे प्रभो ! आप कृपादृष्टि से हमें सदा देखिये। हम लोग आपको सदा नमस्कार करते हैं।

उपासना का फल यह भी है कि जैसे शीत से आतुर मनुष्य का शीत अग्नि के पास जाने से निवृत्त हो जाता है, वैसे ईश्वर के समीप स्थित होने से जीव के सब दोष-दुःख छूट जाते हैं, और जीव ईश्वर

---

२. ३ घण्टों का एक प्रहर होता है। २. २४ मिनट की एक घड़ी होती है।

के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश पवित्र गुण-कर्म-स्वभाव वाला हो जाता है। साथ ही आत्मा का बल इतना बढ़ जाता है कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी मनुष्य घबराता नहीं। उपासना मुक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

समर्पण

समर्पण के स्वरूप का वर्णन आरम्भ में कर दिया गया है।

स्तुति, प्रार्थना, उपासना के न करने में दोष

जो ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख है। क्योंकि जिस ईश्वर ने जगत् के सब पदार्थ हमारे सुखों के लिये दे रखे हैं उनका गुण और उपकार भूल जाना ईश्वर ही को न मानने के समान है। यही कृतघ्नता और मूर्खता है।

स्तुति, प्रार्थना आदि के कतिपय स्वरूप

[१]

ओ३म् सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ (तै० आ०, ६प्रपा०, १अनु०)

हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! आपकी कृपा, रक्षा और सहायता से हम परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करें! हे पालना करनेवाले! आपके अनुग्रह से हम सब परम प्रीति से मिलकर सर्वोत्तम-ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्त्तिराज्य आदि द्वारा आनन्द को सदा भोगें। हे कृपानिधे! आप की कृपा से हम एक-दूसरे के सामर्थ्य को सदा बढ़ाते रहें। हे प्रकाशमय तथा सब विद्याओं के देनेवाले परमेश्वर! आपके सामर्थ्य से हमारा पढ़ा-पढ़ाया संसार में प्रकाश को प्राप्त हो, और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे। हे प्रीति के उत्पादक प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें, किन्तु एक-दूसरे के मित्र होकर सदा वर्तें। हे भगवन्! आप अपनी करुणा से हम लोगों के तीनों तापों को शान्त कीजिये अर्थात् आध्यात्मिक ताप जो ज्वर आदि से होनेवाले शारीरिक ताप हैं, आधिभौतिक ताप जो कि दूसरे प्राणियों द्वारा कष्ट और क्लेश प्राप्त होते हैं, तथा आधिदैविक ताप जो कि मन और इन्द्रियों के विकारों से उत्पन्न होते हैं—इन तीनों तापों को आप शान्त कीजिये।

[२]

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ (यजुर्वेद अ० ३०। मं० ३)

हे देव ! आप सूर्यादि सकल जगत् और वेद विद्या का प्रकाश करनेवाले हो, तथा सब आनन्दों के देनेवाले हो। हे सर्वशक्तिसम्पन्न ! आप सकल जगत् के उत्पादक हो। हमारे सब दुःखों और सब दुर्गुणों को आप-अपनी कृपा से दूर कर दीजिये। तथा सब दुःखों से रहित जो निःश्रेयस का सुख अर्थात् मोक्ष है, और जो सत्यविद्या की प्राप्ति द्वारा अभ्युदय-सुख का होना है, अर्थात् चक्रवर्तिराज्य, इष्टमित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त सुख का होना है—इन दोनों प्रकार के सुखों को आप हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कराइये।

[३]

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(यजु० अ० २५, मं० १३)

हे जगदीश्वर ! आप अपनी कृपा से वेदविद्या के दाता तथा अपने स्वरूप का विज्ञान देनेवाले हो। आप शरीर, इन्द्रिय प्राण, आत्मा और मन में पुष्टि, उत्साह, पराक्रम और दृढ़ता के दाता हो। सब विद्वान् लोग आपकी ही उपासना करते आए हैं, और आपका उत्तम अनुशासन जो कि वेदोक्त शिक्षा है उसे सदा स्वीकार करते आये हैं। आपका आश्रय मोक्षसुख का साधन है, और आपका अनाश्रय अर्थात् परित्याग जन्म-मरण रूप दुःखों का कारण है। आप सुखस्वरूप हैं। सब प्रजाओं के पति हैं। आप सच्चे देव हैं। आपकी प्राप्ति के लिये प्रेम-और-भक्तिरूपी सामग्री द्वारा हम आपका नित्य भजन करें, नित्य आपकी उपासना करें। हे प्रभो ! यह वरदान हमें दो।

[४]

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष७ँशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व७ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

(यजु० अ० ३६, मं० १७)

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ (यजु० अ० ३६, मं० २२)

हे सर्वशक्तिमान् ! आपकी भक्ति और कृपा से सूर्यादि लोकों का प्रकाश तथा विद्याविज्ञान सब दिन हमको शान्ति प्रदान करें, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल ओषधियाँ और वनस्पतियाँ हमें शान्तिदायक हों। संसार के सब विद्वान् और दिव्यशक्तियाँ हमें शान्ति देवें। वेदशास्त्र तथा संसार के सब पदार्थ हमें शान्ति प्रदान करें। हे भगवन् ! हमारे जीवन में शान्ति-ही-शान्ति हो। हे प्रभो ! ऐसी सुखमयी शान्ति हमें सदा प्राप्त रहे।

हे अभयदान के दाता परमेश्वर ? देश देशान्तरों तथा दिग्-दिगन्तरों में आपको ही शक्ति और आपका ही सामर्थ्य कार्य कर रहा है। हे प्रभो ! इन देश-देशान्तरों तथा दिग्-दिगन्तरों से हमें अभय प्रदान कीजिये। हे शान्ति के स्रोत ! आपकी कृपा से समग्र प्रजाजनों से हमारे लिये शान्ति की लहरें उठें। हे रक्षक ! पशुओं तथा प्राणियों से हमारी रक्षा कीजिये।

[५]

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ (यजु० अ० १९, मं० ९)

हे परमेश्वर ! आप अनन्त विद्या आदि गुणों से प्रकाशमय हैं हमारे हृदयों में भी आप विज्ञान का प्रकाश कीजिये। आप अनन्तपराक्रम से युक्त हैं, हमें भी पूर्ण पराक्रम से युक्त कीजिये। हे महाबलेश्वर ! आप अनन्त बलवाले हैं, आप-अपने अनुग्रह से हमारे शरीरों और आत्माओं में भी पूर्ण बल दीजिये। हे सर्वशक्तिमन् ! आप सत्य और विद्या के बल के भण्डार हैं, हममें भी अपनी करुणा से सत्य और विद्या का बल स्थापित कीजिये। हे परमेश्वर ! आप दुष्टों पर क्रोध करने-वाले हैं, हमें भी दुष्टों पर क्रोध करने का स्वभाव प्रदान कीजिये। हे सहनशील ईश्वर ! आप हमें सुख-दुःख, हानि-लाभ, सरदी-गरमी, भूख-प्यास आदि को सहन करने की शक्ति प्रदान कीजिये।

[६]

ओ३म् इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावा पृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मा मेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय॥ (यजु० अ० ३८, मं० १४)

हे भगवन् ! आप की दया से हमारी शुभ कर्म करने की ही इच्छा हो और आप हमारे शरीरों को उत्तम अन्न द्वारा सदा परिपुष्ट कीजिये। आप अपनी कृपा से हमें उत्तम पराक्रम से युक्त तथा प्रयत्न-शील कीजिये। हे आदिगुरु ! वेदविद्या के पढ़ने-पढ़ाने और उस से यथागत् उपकार लेने में हमें पूर्ण सामर्थ्य प्रदान कीजिये, ताकि हम उत्तम ब्राह्मण बन सकें। हे परमेश्वर ! आपके अनुग्रह से हम लोग चक्रवर्त्तिराज्य को प्राप्त करें और शूरवीर सेना से युक्त होकर क्षत्रिय-वर्ण के अधिकारी बनें। हे भगवन् ! जैसे पृथिवी, सूर्य, अग्नि, जल और वायु आदि पदार्थों से सब जगत् का उपकार होता है वैसे कला-कौशल, विमान आदि साधनों द्वारा हम सृष्टि का उपकार करनेवाले हों। हे न्यायकारी ईश्वर ! हमें न्यायबुद्धि प्रदान कीजिये। हे भगवन्

आप जैसे निर्वैर होकर सबसे वर्ताव करते हैं वैसे ही हम भी वैररहित होकर सबसे वर्ताव करें। हे परमकारुणिक ! हमें उत्तम राज्य, उत्तम धन, और शुभगुण प्रदान कीजिए। हे परमेश्वर ! हमारे राष्ट्र में वेद-विद्या से सम्पन्नउत्तम ब्राह्मण हों, हमारे राज्य और क्षत्रियवर्ण का आप धारण-पोषण कीजिये, वैश्यवर्ण और हमारी प्रजा का धारण-पोषण कीजिये। अर्थात् सर्वोत्तम गुणों को आप हम में स्थापित कीजिये।

[७]

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु ॥ (यजु० अ० ३४, मं० ५)

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

(यजु० अ० ३४, मं० १)

हे भगवन् दयानिधे ! जिस मन में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद स्थित होते हैं, तथा जिस मन में अथर्ववेद अर्थात् मोक्षविद्या, ब्रह्मविद्या और सत्यासत्य का प्रकाश स्थित होता है, जिस मन में प्रजाजनों की स्मृति-वृत्तियाँ गठी रहती हैं, जैसे कि सूत्र में माला की मणियाँ, तथा पहिये की नाभि में अरे गठे रहते हैं—हे प्रभो ! वह हमारा मन आपकी कृपा से शुद्ध पवित्र हो तथा मोक्ष और सत्यधर्म के अनुष्ठान और असत्य के परित्याग करने के शुभ संकल्पों से सदा युक्त हो।

हे सर्व व्यापक ईश्वर ! जो हमारा मन जाग्रत अवस्था में दूर-दूर के विषयों में जाता है, जो ज्ञान आदि दिव्यगुणों से युक्त और प्रकाशमान है, जो निद्रावस्था में दूर-दूर के पदार्थों के स्वप्न लेता, और सुषुप्ति में दिव्य आनन्द को भोगता है, जो दूर से दूर वस्तुओं का चिन्तन करता, जो ज्योतिर्मय इन्द्रियों को भी ज्योति प्रदान करता, तथा सूर्य आदि ज्योतिर्मय पदार्थों के ज्ञान का साधन है, वह हमारा मन,—जोकि एक शरीर में एक है,—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से कल्याणमार्गी हो, और शुद्ध-पवित्र हो।

उपासना तथा नमस्कार

ओ३म् अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥
उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥

(अथर्व० १३।४।५०-५३)

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः
प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥
(अथर्व० १३।४७-४६)

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
(अथर्व० का० १०, सू० ८)

हे भगवन् ! आप सब में व्यापक, शान्तस्वरूप तथा जल की भाँति प्राणों के भी प्राण हैं, आप ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञानप्रदाता हैं, सबके पूज्य, सबसे बड़े तथा सहनशील हैं—इस प्रकार आपको जानकर हम सदा आपकी उपासना करते हैं ॥

आप प्रकाशस्वरूप, प्रेमास्पद, आनन्दस्वरूप, सर्वैश्वर्यों के स्वामी, तथा सहनशक्ति के प्रदाता हैं। इसलिए हम लोग आपकी निरन्तर उपासना करते हैं ॥

आप महाविस्तारी, आदि-अन्त-रहित, सर्वत्र परिपूर्ण, अन्तरिक्ष की भाँति अवकाशप्रदान द्वारा सबके निवास के स्थान हैं। इसलिए हम लोग आपकी उपासना करके आपके ही आश्रय में रहते हैं ॥

आप सब जगत् के प्रसारक, सर्वश्रेष्ठ, विविध जगत् के ज्ञाता, दर्शनीय तथा सर्वद्रष्टा हैं। इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ॥

हे प्रभो ! आप काम-क्रोध आदि शत्रुओं के निवारक हैं, वेदवाणी और शक्ति के आप पति हैं, व्यापक हैं, सामर्थ्यवान् हैं। इसलिए हम लोग आपकी उपासना करते हैं ॥

हे सर्वद्रष्टा जगदीश्वर ! आपको बार-बार नमस्कार हो, आप कृपादृष्टि से हमको देखिये। हम प्रेमभाव से अपनी आत्माओं में आपका साक्षात्कार करें। हे कृपालो ! अन्न आदि ऐश्वर्य, उत्तम कीर्ति तथा सम्पूर्ण विद्या के प्रदान द्वारा आप हमपर सदा कृपादृष्टि रखिये ॥

हे भगवन् ! आप भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् की सब घटनाओं और व्यवहारों के ज्ञाता हैं, आप समग्र जगत् के रचयिता, पालनकर्त्ता, तथा प्रलयकर्त्ता हैं, आप सब जगत् के अधिष्ठाता हैं, आप केवल सुखस्वरूप हैं, आपमें दुःख का लेशमात्र भी नहीं, आप मोक्षसुख के दाता, तथा व्यावहारिक सुखों के प्रदाता हैं, आप ज्येष्ठशक्ति हैं, महासामर्थ्यवान् हैं। हे परब्रह्म ! आपको अत्यन्त प्रेम और अगाध श्रद्धाभक्ति से हम सदा नमस्कार करते हैं।

वेदोत्पत्ति विषय

चार ऋषियों द्वारा वेदों का प्रकाश

वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन वेदों को मन्त्रसंहिताएँ भी कहते हैं। मनुष्य-सृष्टि जब हुई तब परमेश्वर ने अग्नि नामक ऋषि के मन में ऋग्वेद का ज्ञान दिया, वायु नामक ऋषि के मन में यजुर्वेद का ज्ञान, आदित्य नामक ऋषि के मन में सामवेद का ज्ञान तथा अङ्गिरा नामक ऋषि के मन में अथर्ववेद का ज्ञान दिया। अथर्ववेद को आङ्गिरसवेद भी कहते हैं। अथर्ववेद को "छन्दांसि" भी कहते हैं।

वेदों का प्रकाश और लय

जैसे सहज स्वभाव से श्वास और प्रश्वास मनुष्य के शरीर से बाहिर आकर फिर उसी के भीतर चला जाता है, इसी प्रकार सृष्टि के आदि में वेद ईश्वर से उत्पन्न होकर संसार में ज्ञान का प्रकाश करते हैं, और प्रलय में फिर उसी ईश्वर में विलीन हो जाते हैं, अर्थात् उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं।

परमेश्वर से शब्दमय वेदों की उत्पत्ति

परमेश्वर निराकार है, उसके मुख आदि अवयव नहीं है, तब भी परमेश्वर से शब्दमय वेदों की उत्पत्ति हुई है। निराकार तथा हाथ-पैर आदि से रहित परमेश्वर ने जैसे सम्पूर्ण जगत् की रचना की है, वैसे ही मुख आदि अवयवों के विना उसने वेदों की भी रचना की है।

तथा यह भी जानना चाहिये कि मनुष्य के मन में मुख आदि अवयव नहीं हैं, तथापि मन के भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का मानसिक उच्चारण होता है, वैसे परमेश्वर के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

वेद मनुष्यरचित नहीं

वेदों के रचने में मनुष्यों का सामर्थ्य नहीं है। ईश्वर द्वारा रचे वेदों के पढ़ने-पढ़ाने के पश्चात् ही विद्वान् बनकर मनुष्य में ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य हो सकता है, अन्यथा नहीं। वर्तमान समय में भी किसी शास्त्र को पढ़कर या किसी का उपदेश सुनकर तथा मनुष्यों के परस्पर व्यवहारों को देखकर ही ज्ञानलाभ कर, मनुष्य ग्रन्थ रचते हैं। यदि किसी मनुष्य के बालक को जन्म से ही एकान्त में रखा जाय, और उसे अन्न जल आदि किसी प्रकार दिया जाता रहे, परन्तु उससे भाषण आदि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे जबतक कि उसकी

मृत्यु न हो जाय, तो उस बालक को मनुष्यपन का भी ज्ञान न हो सकेगा। ज्ञानी-विज्ञानी बनकर ग्रन्थ रचना कर सकने का सामर्थ्य तो उसे कैसे हो सकता है।

साथ ही यह भी जानना चाहिये कि बड़े-बड़े वनों में रहनेवाले जंगली जाति के मनुष्यों को, उपदेश के विना, यथार्थ-ज्ञान होते नहीं देखा जाता, और न ही उन्हें सभ्य लोक व्यवहारों का ही ज्ञान होता है, किन्तु उनमें केवल पशुओं की-सी प्रवृत्तियाँ ही देखने में आती हैं। ऐसे ही वेदों के उपदेश के बिना सब मनुष्यों में जङ्गली प्रवृत्तियाँ देखने में आतीं, ग्रन्थ रच सकने के सामर्थ्य की तो कथा ही क्या कहनी।

स्वाभाविक ज्ञानग्रहण-शक्ति तथा विद्वानों द्वारा शिक्षाग्रहण

यद्यपि मनुष्यों में ज्ञानग्रहण करने की शक्ति स्वाभाविक है, परन्तु ज्ञानदाता के विना "स्वाभाविक ज्ञानग्रहण-शक्ति" ज्ञान ग्रहण कराने में असमर्थ है। उपरिलिखित दो दृष्टान्तों द्वारा, अर्थात् एकान्त में रखे बालक और वनवासियों के दृष्टान्तों द्वारा, यह बात प्रमाणित होता है। जैसे मन के संयोग के विना आँख से कुछ भी दीख नहीं पड़ता, तथा आत्मा के संयोग के बिना मन से भी कोई कार्य नहीं होता, वैसे ही वेदों और विद्वानों से शिक्षा ग्रहण किये विना मनुष्यस्थित स्वाभाविक ज्ञान धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की विद्याओं के ग्रहण कराने में असमर्थ है। किसी द्वारा उच्चज्ञान के ग्रहण किये विना स्वाभाविकज्ञान मनुष्यों में केवल पाशविक प्रवृत्तियों को ही जागरित कर सकता है। स्वाभाविक ज्ञानमात्र उच्चज्ञान की प्राप्ति का साधन कभी नहीं हो सकता।

विद्या के दो प्रयोजन

परमेश्वर ने मनुष्यों के उपकार के लिए वेदों का प्रकाश किया है। यह परमेश्वर की परम कृपा है। परमेश्वर में अनन्त विद्या है। विद्या के दो प्रयोजन होते हैं, स्वार्थ और परार्थ। परमेश्वर अपनी अनन्त विद्या के सामर्थ्य से सब जगत् को रचता तथा उसे जानता है। यह उसकी विद्या का स्वार्थ-प्रयोजन है। विद्या का प्रयोजन परार्थ भी होता है। परमेश्वर ने अपनी अनन्त विद्या से मनुष्यों को वेदविद्या प्रदानकर अपनी अनन्त विद्या का दूसरा प्रयोजन जो कि "परार्थ" है उसे भी सफल बनाया है। यह परमेश्वर का महान् उपकार है जोकि उसने हमें वेदविद्या प्रदान की है।

जैसे परम कृपालु परमेश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं, वैसे उसने सब सुखों का प्रकाश करनेवाली सत्यविद्याओं में युक्त वेदविद्या का भी उपदेश प्रजा के सुख के लिए किया है.

परमेश्वर माता-पिता के समान है

परमेश्वर हम लोगों के लिए माता-पिता के समान है। जैसे माता-पिता सदैव करुणापूर्वक अपनी सन्तानों के लिए सुख चाहते हैं, जैसे परमेश्वर भी मनुष्य आदि सब सृष्टि पर सदैव कृपादृष्टि रखता है। इसीलिए परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में वेदों का उपदेश किया है। परमेश्वर यदि अपनी वेदविद्या का उपदेश न करता तो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को प्राप्त न होती, और उसके विना किसी को परमानन्द को प्राप्ति न होती।

वेद पुस्तक रूप नहीं

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि वेदों का प्रदान पुस्तक के रूप में न हुआ था, अपितु अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक ऋषियों के ज्ञान में वेदविद्या का उपदेश किया गया था। जैसे कि गुरुपरम्परा द्वारा, विना पुस्तकों के भी, शिष्यपरम्परा को ज्ञान प्रदान होता चला आया है। जैसे हाथ-पैर अवयवों के विना, तथा जैसे काष्ठ, लोह आदि साधन-सामग्री के विना परमेश्वर ने समस्त जगत् की रचना की है, वैसे सुख, जिह्वा आदि अवयवों के विना परमेश्वर ने ऋषियों को वेदोपदेश किया है, चूँकि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है।

वेद विद्या के प्रदान में परमेश्वर पक्षपाती नहीं

वेदविद्या का प्रकाश चार ऋषियों द्वारा हुआ। परमेश्वर ने सब मनुष्यों को वेदज्ञान का प्रकाश नहीं दिया। इससे परमेश्वर पर पक्षपात का दोष नहीं आता। इससे तो परमेश्वर की न्यायकारिता प्रकट होती है क्योंकि न्याय का अभिप्राय है कि जो जैसा कर्म करे उसे वैसा ही फल दिया जाय। इन्हीं चार ऋषियों के ऐसे पूर्वसंचित पुण्य कर्म थे कि उनके हृदयों में वेदों का प्रकाश किया गया, उनसे भिन्न मनुष्यों के ऐसे पुण्यकर्म न थे कि उनके हृदयों में भी वेदविद्या का प्रकाश किया जाता।

वेद तथा श्रुति

ऋग्वेद आदि चारों द्वारा सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि का ज्ञान होता है, और इनमें नाना विषयों का वर्णन है, इसलिए इन्हें वेद कहते हैं (विद् ज्ञाने)। वेदों का श्रुति भी है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज पर्यन्त वेदों द्वारा, उपदेश परम्परा से, हम सत्यविद्याओं का श्रवण करते आये हैं, इसलिए वेदों को श्रुति भी कहते हैं (श्रु श्रवणे) वेदों के ऋषि वेदों के कर्ता नहीं हैं, वे भी इसी उपदेशपरम्परा से अनादि वेदों को सुनते ही चले आ रहे हैं। अग्नि, वायु, आदित्य,

अङ्गिरा को, वेद के प्रकाश के लिए, परमेश्वर ने केवल निमित्तमात्र बनाया था, अतः ये भी वेदों के कर्ता नहीं हैं। अपितु वेदरूपी परमात्मा-सन्देशों के प्रसार में केवल माध्यम रूप हैं।

वेदों का नित्यत्व-विचार

वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वेद स्वतः नित्य-स्वरूप है, क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य है। वेद शब्द हैं तो भी लौकिक शब्दों की भाँति शब्दमय वेद अनित्य नहीं हैं। क्योंकि शब्द दो प्रकार के होते हैं एक नित्य और दूसरे अनित्य। जो शब्द परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं। परन्तु हमारे बोलचाल तथा साहित्य के शब्द अनित्य होते हैं। परमेश्वर का ज्ञान और स्वभाव नित्य हैं, इसलिए वेद भी, जो कि परमेश्वर के ज्ञान स्वरूप हैं, नित्य हैं। वेद ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहते हैं, प्रलयकाल में भी उनका विनाश या अभाव नहीं होता। प्रलयकाल में केवल वेदों की अप्रसिद्धि होती है, अभाव नहीं। वेदों में जिस प्रकार शब्द और अर्थ हैं तथा पद और अक्षर जिस-जिस क्रम में है वे सदा इसी प्रकार से बने रहते हैं। पूर्व-कालों में भी ऐसे थे और भविष्य में भी ऐसे ही रहेंगे। चूंकि वेद ईश्वर की विद्या है अतः वे नित्य एक रस ही बने रहते हैं।

भारत के प्राचीन ऋषि मुनि वेदों को नित्य ही मानते चले आये हैं। योग-दर्शन में लिखा है कि गुरुशिष्यपरम्परा में आदि गुरु ईश्वर ही है, जिसने कि सृष्टि के आदि में अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा वेदविद्या को प्रकट किया है। इस प्रकार योगदर्शन की दृष्टि में भी वेद नित्य हैं, क्योंकि वे आदिगुरु ईश्वर द्वारा उपदिष्ट किये गए हैं।

वेदान्तदर्शन में "शास्त्रयोनित्वात्" सूत्र पर श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं कि ऋग्वेद आदि चारों वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं, ये सूर्य के समान सब सत्य अर्थों का प्रकाश करनेवाले हैं अतः उनका रचनेवाला सर्वज्ञत्व आदि गुणों से युक्त परब्रह्म है। क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञगुणों से युक्त इन वेदों को बना सके, ऐसा सम्भव नहीं है। ये वेद स्वतः प्रमाण हैं। इनमें जिस-जिस विद्या का वर्णन है उस-उस विद्या की सत्यता के लिए किसी अन्य प्रमाण की साक्षी की आवश्यकता नहीं है। वेद से भिन्न सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं, अर्थात् वेदों के अनुकूल होने पर ही वे प्रमाण समझे जा सकते हैं। परमेश्वर जब-जब सृष्टि रचता है तब-तब प्रजा के हित के लिए सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है, और जब-जब सृष्टि की प्रलय होती है तब-तब वेद परमेश्वर के ज्ञान में सदा बने रहते हैं। इससे वेद नित्य हैं, अनित्य नहीं।

वेद स्वतः-प्रमाण विषय

स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण

प्राचीन आर्य विद्वानों ने परमेश्वर द्वारा प्रोक्त ४ वेद ही स्वतः प्रमाण माने हैं। अर्थात् चारों वेद अपने आप ही प्रमाण हैं। वेदों से भिन्न ग्रन्थ, जो कि जीवों के रचे हुए हैं, वेदों के अनुकूल होने पर ही प्रमाण माने जाते हैं। इसलिए जीवरचित ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं चूंकि वेद परमेश्वर के रचे हुए हैं और परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्तिमान् है, इस कारण उसका कथन भी निर्भ्रम और प्रमाण के योग्य है। जीवों के बनाए ग्रन्थ स्वतः प्रमाण के योन्य नहीं होते, क्योंकि जीव सर्वविद्यायुक्त और सर्वशक्तिमान् नहीं होते। इसलिए उनका कहना स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता।

स्वतः प्रमाण में दृष्टान्त

वेद, सूर्य के समान, प्रमाणभूत है। अर्थात् जैसे सूर्य अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होकर सबको प्रकाशित करता है वैसे ही वेद भी अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होकर अन्य ग्रन्थों को भी प्रकाशित करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो-जो ग्रन्थ वेदों के विरुद्ध हैं वे कभी प्रमाण वा स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं, और वेदों का यदि अन्य ग्रन्थों के साथ विरोध भी हो तब भी वेद अप्रमाण के योग्य नहीं ठहर सकते, क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाणयुक्त हैं। इसलिए वेदों से भिन्न जो-जो ग्रन्थ हैं वे वेदों के अनुकूल होने से ही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं।

वेदविषय-विचार

वेदों में मुख्य विषय चार हैं। (१) विज्ञान काण्ड, (२) कर्म काण्ड, (३) उपासना काण्ड, (४) ज्ञान काण्ड। इन्हीं चार विषयों के अङ्गरूप में और भी नाना विषयों का वर्णन वेदों में हुआ है।

विज्ञानकाण्ड और ज्ञानकाण्ड

विज्ञान काण्ड में परमेश्वर से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों का जो साक्षात्कार (योग्य विधि से साक्षात् अनुभव) रूपी बोध है उसका वर्णन होता है। विज्ञान का प्रधान प्रयोजन है परमेश्वर का साक्षात्कार परमेश्वर की प्राप्ति के उद्देश्य से निष्काम-कर्मों अर्थात् आसक्तिरहित कर्मों का करना तथा परमेश्वर की उपासना—ये भी "विज्ञान" के ही

अङ्ग हैं। जिन कर्मों के करने में सांसारिक लाभ मुख्य ध्येय होता है उन्हें सकाम कर्म कहते हैं। सकामकर्म विज्ञान के अङ्ग नहीं होते। सांसारिक पदार्थों के गुणधर्मों को जानना और उनसे यथावत् उपयोग लेना "ज्ञान" कहलाता है। ज्ञान काण्ड में इसी ज्ञान का वर्णन होता है, अर्थात् लौकिक ज्ञान का। ज्ञान काण्ड सम्बन्धी कर्मों को सकामकर्म कहते हैं।

परा-विद्या और अपरा-विद्या

वेदों के विषयों को अन्य प्रकार से भी विभक्त किया जाता है। परा-विद्या और अपरा-विद्या। विज्ञान का दूसरा नाम परा-विद्या है, और ज्ञान का दूसरा नाम अपरा-विद्या है। परा-विद्या अपरा-विद्या से अत्यन्त श्रेष्ठ है, क्योंकि अपरा-विद्या का भी अन्तिम प्रयोजन परा-विद्या ही है। परा-विद्या में ब्रह्म का जाप और उसकी उपासना "ओ३म्" द्वारा की जाती है। क्योंकि "ओ३म्" ब्रह्म का निज नाम है।

वेदों में अवान्तर रूप से नाना विषयों का वर्णन हुआ है। परन्तु चारों वेदों का मुख्य तात्पर्य ईश्वर का ज्ञान और ईश्वर की प्राप्ति कराने में ही है। सब वेदमन्त्रों में ब्रह्म का ही विशेष करके प्रतिपादन है, कहीं साक्षात् रूप से और कहीं परम्परा से। इसी कारण परब्रह्म वेदों का परम-अर्थ है, अर्थात् मुख्य-अर्थ है। परब्रह्म से पृथक् जो यह जगत् और जगत् के पदार्थ हैं वे वेदों के गौण-अर्थ हैं।

कर्म काण्ड

वेदों में कर्मकाण्ड का भी वर्णन है। कर्मकाण्ड क्रियाप्रधान होता है। इसके बिना विद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते। धर्म का ज्ञान और उसका यथावत् अनुष्ठान तथा धर्मपूर्वक अर्थ और काम की सिद्धि करना कर्मकाण्ड का प्रधान विषय है। कर्मकाण्ड के दो भेद मुख्य हैं। एक परमार्थ और दूसरा लोकव्यवहार। परमार्थ में परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है। स्तुति में परमेश्वर के सर्वज्ञत्व आदि गुणों का कीर्तन, उपदेश और श्रवण होता है। प्रार्थना में परमेश्वर की सहायता माँगनी होती है। उपासना में परमेश्वर के स्वरूप में मग्न होकर उसकी आज्ञा का यथावत् पालन करना होता है। परमार्थ में निष्कामकर्म किये जाते हैं। निष्काम में परमेश्वर की ही प्राप्ति के उद्देश्य से धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान करना होता है। इसमें संसार के भोगों की कामना नहीं की जाती।

कर्मकाण्ड का दूसरा भेद लोकव्यवहार है। लोकव्यवहार में सकाम-कर्म किये जाते हैं। जब संसार के भोगों की इच्छा से धर्मयुक्त कर्म

किये जाते हैं तो इन्हें सकामकर्म कहते हैं। सकाम-कर्मों का फल नाशवान् होता है। अग्निहोत्र आदि कर्म भी जब परमात्मप्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं तब वे निष्काम-कर्म कहलाते हैं। और जब वायु और वृष्टिजल की शुद्धि आदि के उद्देश्य से किये जाते हैं तब इन्हें सकाम-कर्म कहते हैं। होम से वायु, जल और ओषधि आदि शुद्ध हो जाते हैं, शरीर का स्वास्थ्य और नीरोगता बढ़ती है तथा सब जगत् को सुख मिलता है।

वायु, जल आदि की शुद्धि के दो साधन हैं। एक ईश्वरीय और दूसरा मनुष्यकृत। ईश्वर ने अग्नि रूप सूर्य और सुगन्धरूप पुष्पादि पदार्थों को उत्पन्न किया है। इन द्वारा जगत् की शुद्धि होती रहती है। सुगन्धरूप पुष्पादि द्वारा जल वायु शुद्धि यथावत् नहीं हो सकती। क्योंकि इस द्वारा तो वायु और जल में सुगन्धांश तथा दुर्गन्धांश दोनों परस्पर मिले-जुले रहते हैं। परिणाम यह होता है कि वृष्टिजल, वायु, ओषधियाँ, वीर्य, शरीर, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि भी मध्यम गुणवाले ही रहते हैं।

सुगन्ध और दुर्गन्ध का मेल ईश्वरीय सृष्टि के कारण नहीं होता। अपितु यह दोष मनुष्यकृत है। जहाँ जितने मनुष्यादि समुदाय अधिक होते हैं वहाँ उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। यह दुर्गन्ध मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है। गौ, भैंस आदि प्राणियों के समुदायों को मनुष्य ही अपने सुख के लिए इकट्ठा करते हैं। इसलिए इन पशुओं के कारण भी जो दुर्गन्ध उत्पन्न होता है उसके कारण भी मनुष्य ही हैं। जल, वायु और वृष्टिजल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है तब उसका निवारण करना भी मनुष्यों का ही कर्त्तव्य है। इसलिए सबके उपकार के लिए यज्ञों के करने की आज्ञा मनुष्यों को वेदों द्वारा दी है।

कई लोग कहते हैं कि घृत तथा मिष्ठान्न आदि पदार्थों को अग्नि में डालने से उन पदार्थों का विनाश क्यों किया जाए। ये उत्तमोत्तम पदार्थ मनुष्यों को यदि भोजनादि के लिए दें तो अधिक उपकार हो सकता है। इसलिए होम आदि यज्ञों का करना व्यर्थ है।

इसका समाधान यह है कि घृत आदि पदार्थ अग्नि में डालने से उनका विनाश नहीं होता, अपितु अग्नि के कारण उन पदार्थों के सूक्ष्म अवयव अलग होकर, वायु में फैलकर, वायु में रहते और दुर्गन्ध तथा रोग के कीटाणुओं का निवारण करते हैं। इसमें वायु और वृष्टिजल शुद्ध होते और जगत् का महान् उपकार होता तथा जगत् को सुख मिलता है। अतर और पुष्प आदि द्वारा इनका सुगन्ध तो वायु के दुर्गन्ध के साथ मिला-जुला ही रहता है। यह सुगन्ध-दुर्गन्ध का छेदन-

भेदन नहीं कर सकता और न घर की गन्दी वायु को बाहर निकाल सकता है, और न ऊपर आकाश में अधिक दूरी तक जा सकता है, क्योंकि इसमें हलकापन नहीं होता। अतर आदि द्वारा घर की दुर्गन्धित वायु न घर से बाहर निकलती है, न बाहर की शुद्ध वायु का घर में प्रवेश होता है। इसप्रकार सुगन्धयुक्त तथा दुर्गन्धयुक्त वायु के घर में बने रहने से रोग-नाश आदि फल भी नहीं होते। अग्नि तो वायु को हलका करके दुर्गन्धयुक्त वायु को घर से बाहर निकाल देती है, और रिक्त हुए स्थान में बाहर की शुद्ध वायु का प्रवेश हो जाता है। यह फल यज्ञों द्वारा ही हो सकता है। यज्ञ के द्रव्यों से उत्पन्न शुद्ध वायु पूर्वस्थित दुर्गन्धित वायु को घर से निकाल देती, घर में शुद्ध वायु को भर देती और इसप्रकार रोगों का विनाश कर देती है। अग्नि द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों के सूक्ष्म अवयव होकर आकाश में जाकर वृष्टिजल और वायु को शुद्धकर वृष्टि भी अधिक करते हैं। शुद्ध जल और शुद्ध वायु के द्वारा अन्नादि ओषधियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं। इसप्रकार जगत् में नित्य-प्रति अधिकाधिक सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के बिना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है।

होम करने से द्रव्य का विनाश नहीं होता। कारण यह कि किसी पुरुष ने दूर देश में यदि सुगन्ध वस्तुओं का अग्नि में होम किया हो तो उस सुगन्ध से युक्त जो वायु है वह होम के स्थान से दूर देश में स्थित हुए मनुष्य की नाक इन्द्रिय के साथ संयुक्त होने से उसको यह ज्ञान होता है कि यहाँ सुगन्धित वायु है। इससे यह जाना जाता है कि द्रव्यों के अलग-अलग हो जाने में भी स्थूल-द्रव्यों के गुण उनके सूक्ष्म-अवयवों के साथ बने ही रहते हैं। वे सूक्ष्म होकर वायु में फैलकर महान् उपकार करते हैं।

होम करते समय वेदमन्त्रों का उच्चारण इसलिये करते हैं कि इससे वेदों की रक्षा होती है, और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना होती, तथा वेदमन्त्रों में होम के जिन-जिन लाभों का वर्णन हुआ है उनका भी साथ-साथ ज्ञान होता रहता है। तथा वेदमन्त्र कण्ठस्थ हो जाते और आस्तिक भावना दृढ़ होती रहती है।

कर्मकाण्ड के देवता

कर्मकाण्ड में जो यज्ञकर्म हैं उनका मुख्य देवता ईश्वर ही है जिसकी प्राप्ति और प्रसादन के लिये यज्ञकर्मों में आहुतियाँ दी जाती हैं, और उच्चारण किये जानेवाले मन्त्रों द्वारा जिसके गुणों का स्मरण किया जाता है। परन्तु कर्मकाण्ड में यज्ञ शब्द का जब व्यापी अर्थ लिया जाता है तब यज्ञकर्म में अन्य नाना देवताओं का भी परिगणन किया जाता है।

इस व्यापी अर्थ में यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं। (१) एक तो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ। (२) दूसरा प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त जगत् की रचना और शिल्पविद्या। (३) तीसरा सत्संग अर्थात् परमात्मा और सज्जनों का संग। इन व्यापी अर्थों में अग्नि, वायु, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, पृथिवी आदि की रचना के नाना तत्त्व; माता, पिता, आचार्य, विद्वान् तथा अतिथि आदि—भिन्न-भिन्न कर्मों के नाना रूप देवता हैं। परन्तु अग्निहोत्र आदि यज्ञों में मुख्य देवता परमेश्वर ही है।

देव या देवता का अर्थ

देव और देवता पर्यायवाची शब्द हैं। इन दोनों शब्दों का अर्थ और भाव एक ही हैं। 'देव' शब्द के तीन अर्थ होते हैं। (१) दान देने-वाला, (२) प्रकाश करनेवाला, सत्योपदेश करनेवाला। दान का दाता (३) तो मुख्य एक ईश्वर ही है, जिसने कि जगत् के सब पदार्थ दे रखे हैं। विद्वान् मनुष्य भी विद्या आदि पदार्थों को देने से देव कहलाते हैं। प्रकाश करने से सूर्य आदि लोकों का नाम भी देव है। तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्यासत्य, इत्यादि अर्थों का प्रकाश करने से पाँच इन्द्रियों और मन को भी देव कहते है। सत्योपदेश करने से माता, पिता, आचार्य, अतिथि—देव कहाते हैं। परन्तु उपासना में तो इष्टदेव परमेश्वर ही है, जो कि महादानी, सूर्य आदि लोकों का भी प्रकाशक, तथा वेदों द्वारा सत्योपदेश करता है। इसलिए परमेश्वर ही मुख्य देव है।

उपर्युक्त का सार

उपर्युक्त सूर्य आदि; ५ इन्द्रियाँ तथा तथा मन; तथा माता, पिता, आचार्य आदि; सांसारिक व्यवहारों की सिद्धि में, अर्थात् सांसारिक कर्मकाण्ड में देव कहाते हैं। परन्तु यज्ञकर्मों, उपासना और विज्ञान-काण्ड में एकमात्र परमेश्वर ही सबका इष्टदेव है, क्योंकि वही स्तुति, प्रार्थना, पूजा और उपासना के योग्य है। परन्तु सांसारिक व्यवहारों अर्थात् सांसारिक कर्मकाण्ड में भी इष्ट भोगों की प्राप्ति के लिये ईश्वर ही सहायक और सामर्थ्यदाता है। इसलिये सकामकर्मों में भी ईश्वर का परित्याग नहीं होता। क्योंकि संसार के कार्यों का कारण एक ईश्वर ही है। अतः कारणरूप से सब कार्यों, कर्मों, और व्यवहारों में उसका सम्बन्ध सर्वत्र विद्यमान है। परमेश्वर के ही प्रकाशन, धारण, और उत्पादन सामर्थ्य से व्यवहार के देव प्रकाशित हो रहे हैं। इन व्यावहारिक देवों का जन्म तथा कर्म ईश्वर के सामर्थ्य से ही होता है।

परमेश्वर ने जिस-जिस पदार्थ में जितना-जितना दिव्यगुण रखा है उतना-उतना ही उस-उस पदार्थ में देवपन है, अधिक नहीं। अतः उन सबका उत्पादन, धारण, तथा प्रकाशन करने से केवल परमेश्वर ही एक मुख्य देव है।

३३ देव

वेदों तथा सत्यशास्त्रों में व्यवहार सिद्धि के हेतुभूत ३३ देव माने हैं। वे हैं ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। ८ वसु हैं अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा और नक्षत्र। ये आठों पदार्थ सबके वास (रहने) के हेतु हैं इसलिये इन्हें 'वसु' कहते हैं।

११ रुद्र हैं शरीर में १० प्राण और ११वां जीवात्मा। शरीर से १० प्राण और जीवात्मा जब निकल जाते हैं और प्राणी की मृत्यु हो जाती है तब ये सम्बन्धियों को रुलाते हैं। अतः रोदन कराने से इन ११ शक्तियों को 'रुद्र' कहते हैं।

१२ आदित्य हैं १२ महीने। ये १२ महीने सबकी आयु का 'आदान' करते रहते हैं, अर्थात् क्षय करते रहते हैं, इसलिये इनका नाम 'आदित्य' है (आदित्य=आदान करनेवाले, हरनेवाले, क्षय करनेवाले)। इसी-प्रकार इन्द्र अर्थात् बिजुली, और प्रजापति अर्थात् यज्ञ के ये दो और देवता हैं। बिजुली ऐश्वर्यदाता है इसलिये इन्द्र है (इदि परमैश्वर्य)। 'यज्ञ' वायुशुद्धि तथा वृष्टि प्रदान का हेतु होने से प्रजाओं का पालक है, इसलिये प्रजापति है। इस प्रकार ८+११+१२+१+१=३३ व्यवहार सिद्धि के हेतु देवता हैं, इन्हीं के आश्रय संसार का व्यवहार चल रहा है।

परन्तु स्तुति, प्रार्थना और उपासना के योग्य तो एकमात्र ब्रह्म ही है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि "जो मनुष्य ईश्वर से भिन्न दूसरे किसी तत्त्व की उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता, वह विद्वानों के बीच में पशु अर्थात् गधों के समान हैं यथा—"योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद। यथा पशुः एवं स देवानाम्"

वेदों में व्यवहारसिद्धि के हेतुभूत अग्नि आदि, प्राकृतिक देवों का जब वर्णन होता है तब इन वर्णनों में भी सर्वत्र परमात्मसत्ता अन्वित हुई समझी जानी चाहिये। क्योंकि अग्नि आदि प्राकृतिक देव परमेश्वर की ही व्यापकता और रचनाशक्ति द्वारा दिव्य गुणोंवाले हुए हैं। अग्नि आदि पदार्थों में जितना-जितना प्रकाश है, तथा इनमें जितने-जितने दिव्य गुण हैं उतना-उतना उनमें देवपन भी है—इस बात के मानने में कोई हानि नहीं। परन्तु वेदों में जहाँ-जहाँ उपासना का वर्णन हुआ है वहाँ-वहाँ एक अद्वितीय परमेश्वर का ही ग्रहण करना उचित है।

मूर्त्तिमान् तथा मूर्त्तिरहित देवता

देवता दो प्रकार के हैं—एक मूर्त्तिमान् और दूसरे अमूर्त्तिमान् अर्थात् मूर्त्तिरहित। माता, पिता, आचार्य, अतिथि ये चार मूर्त्तिमान् देवता हैं और ब्रह्म अमूर्त्तिमान् देवता है। पूर्वोक्त आठ वसुओं में अग्नि, पृथिवी, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र,—ये मूर्त्तिमान् देवता हैं। यथा ११ रुद्र, १२ आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौः, मन्त्र—ये मूर्त्तिरहित देवता हैं। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, बिजुली, और यज्ञ—ये देवता मूर्त्तिमान् और मूर्त्तिरहित अर्थात् दोनों प्रकार के देवता हैं।

उपासनाकाण्ड

कई विचारक यह कहते हैं कि वेदों में पृथिवी आदि जड़ पदार्थों की पूजा कही गई है। वे कहते हैं कि पहिले आर्य लोग पृथिवी आदि पंचभूतों की ही पूजा करते थे। कालान्तर में आर्यों ने परमेश्वर को भी पूज्य जाना था। परन्तु यह कथन असत्य है। आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से ही आज पर्यन्त इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि नामों द्वारा एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं। इस सम्बन्ध में वेदों तथा शास्त्रों में नाना प्रमाण मिलते हैं यथा—

[१]

ओ३म् इन्द्रं मित्रंवरुणमग्निमाहुः अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ० १।१६४।४६)

अर्थात् जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म है, विद्वान् लोग उसी के नाम इन्द्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातविश्वा आदि कहते हैं।

[२]

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

(मनु० १२, १२३)

अर्थात् प्रकाश स्वरूप होने से वह परमेश्वर अग्नि है, विज्ञानस्वरूप होने से मनु, सबका पालन करने से प्रजापति, परमैश्वर्यवान् होने से इन्द्र, सबका जीवनमूल होने से प्राण, और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम ब्रह्म है।

□□

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	२.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश १५.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कारविधि ,, ४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,, १०.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, २.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहारभानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** २.००
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे(छोटा) ,, ४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,, ६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०
बाल शिक्षा ०.६०
उपनिषद् प्रकाश १२.००
वैशेषिक दर्शन ८.००
न्याय दर्शन ६.००
सांख्य दर्शन ५.००

बालोपयोगी

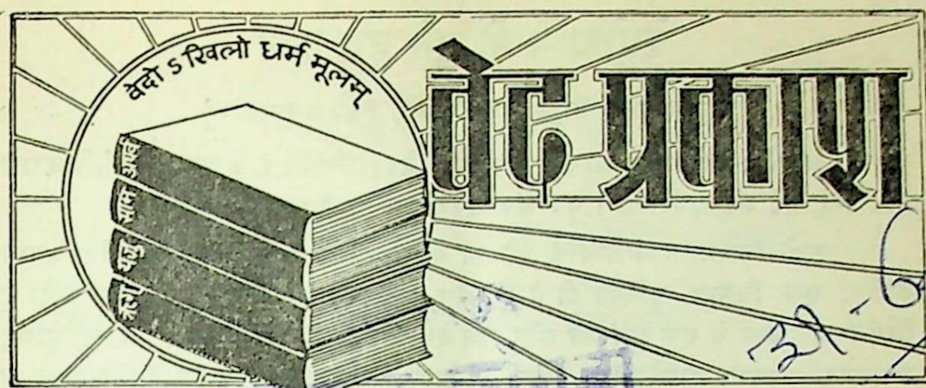
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००
नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.००
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा नवम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



पूज्या माता श्रीमती यशोदादेवी जी का देहावसान



स्वर्गीय गोविन्दराम हासानन्द जी की पत्नी श्रीमती यशोदादेवी जी का बृहस्पतिवार १३ अप्रैल (वैशाखी) १६७८ को ७८ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। अपने पीछे तीन पुत्रियों तथा एक पुत्र का भरा-पूरा परिवार छोड़ गई हैं।

माताजी ने स्वतन्त्रता-आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। जेल-यात्राएँ भी की थीं। १६५७ में पंजाब के हिन्दी-आन्दोलन में दिल्ली की आर्य महिलाओं के साथ भाग लिया था।

वे अन्तिम दिनों तक स्वस्थ थीं। लगभग एक महीना पहले शरीर में अशक्ति आने लगी। दवाओं का कुछ प्रभाव नहीं हुआ। वैशाखी के दिन रात्रि ६ बजे उन्होंने प्राण त्याग दिये।

उनके देहान्त पर कई समवेदना-पत्र प्राप्त हुए। उन सब स्नेही-जनों का उनके सान्त्वनाभरे पत्रों के लिए मैं आभारी हूँ। —**विजयकुमार**

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १९७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक १०] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [मई, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका : एक सरल अध्ययन

लेखक

वेदोपाध्याय पं० श्री विश्वनाथ विद्यालंकार

ब्रह्मविद्या-विचार

ब्रह्म का अर्थ है "सब से बड़ा"। परमेश्वर सबसे बड़ा है, अतः वह ब्रह्म है। ब्रह्म जगत् का रचयिता, पालक, आकाशादि पञ्चभूतों[1] तथा सूर्यादि लोकों में व्यापक, सच्चिदानन्द-स्वरूप, सबसे महान् विज्ञानादि गुणों में सबसे बड़ा, आकाश आदि का भी आधार, सदा निर्विकार, तथा ३३ देवताओं का आश्रय है। जैसे वृक्ष का तना सब डालियों का आधार होता है वैसे ही सब ब्रह्माण्ड का आधार वही एक ब्रह्म है। ब्रह्म एक ही है, अनेक ब्रह्म नहीं हैं। ब्रह्म दो, तीन, चार, दस, बीस आदि नहीं हैं। अद्वैतवादी जो यह दावा करते हैं कि 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, उनका यह दावा मिथ्या है। एक ही ब्रह्म सब जगत् का नियन्ता तथा अधीश्वर है। इसी ब्रह्म के सामर्थ्य में पृथिवी आदि सब लोक ठहरे हुए हैं। और प्रलय में भी उसीके सामर्थ्य में लीन होकर उसी में बने रहते हैं।

मुक्ति-विषय

मुक्ति का अर्थ है "छूट जाना"। अर्थात् शरीर, इन्द्रियों और मन के बन्धन से छूट जाना। परमेश्वर की उपासना करके, तथा अविद्या अहंकार, राग, द्वेष और मृत्युभय इन पाँचों का निवारण करके, जीव मुक्ति को प्राप्त होता है। अहंकार, राग, द्वेष और मृत्युभय—इनका मूल अविद्या है। अहंकार आदि चार अविद्या के प्रमाण हैं। इन पाँचों की शास्त्रीय संज्ञा 'क्लेश' है। इन्हें पंच क्लेश कहते हैं। क्योंकि इन

१. पंचभूत=पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश।

पाँचों के कारण मनुष्य क्लेश अनुभव करता है। 'अविद्या' मोहग्रस्त जीवों को अन्धकार में फँसाकर जन्म-मरण आदि दुःखसागर में डुबाती है। सत्यविद्या के द्वारा, अविद्या छिन्न-भिन्न होकर, जब नष्ट हो जाती है, तब जीव मुक्ति को प्राप्त होता है।

अविद्या के चार रूप

अविद्या के चार रूप हैं। (१) शरीर आदि स्थूल पदार्थों तथा लोक-लोकान्तरों को नित्य समझना, तथा ईश्वर, जीव और जगत् के कारण 'प्रकृति'—इन तीनों को अनित्य समझना। (२) मलमूत्र आदि से परिपूर्ण दुर्गन्धरूप शरीर को पवित्र समझना, तथा सत्यभाषण, सत्सङ्ग, परमेश्वर की उपासना, सबसे प्रेमभाव में वर्तना आदि शुद्ध व्यवहारों को अपवित्र समझना। (३) दुःख में सुखबुद्धि करना अर्थात् विषय-तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुःखरूप व्यवहारों में सुख-प्राप्ति की आशा करना, तथा जितेन्द्रियता, शम, सन्तोष, विवेक, प्रेम, मित्रता आदि सुखरूप व्यवहारों में दुःखबुद्धि का करना। (४) इसी प्रकार अनात्मा को आत्मा समझना, अर्थात् जड़ को चेतन समझना तथा चेतन को जड़ समझना।

यह चार प्रकार की अविद्या, संसार-बन्धन का हेतु होकर, संसार में अज्ञानी जीवों को सदा नचाती रहती है।

विद्या के चार रूप

परन्तु पूर्वोक्त अनित्य, अशुद्धि, दुःख और अनात्मा में अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मबुद्धि करना, तथा नित्य, शुचि, सुख और आत्मा में नित्य, पवित्र, सुख, आत्मबुद्धि करना—यह चार प्रकार की विद्या है। जब विद्या से अविद्या की निवृत्ति हो जाती है तब बन्धनों से छूटकर जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

अहङ्कार का स्वरूप

जीव और चित्त को अभिन्न समझना, अर्थात् ये दो पदार्थ भिन्न-भिन्न नहीं हैं, अपितु ये दोनों एक हैं ऐसा समझना—अहंकार कहाता है। योग-शास्त्र में इसे 'अस्मिता' कहते हैं। अस्मिता का अर्थ है "मैं हूँ" ऐसी भावना।

राग और द्वेष

सांसारिक सुखों के लिए जो तृष्णा अर्थात् लोभ है उसे राग कहते हैं। जब मनुष्य को ऐसा ज्ञान हो जाता है कि सभी सांसारिक संयोगों का अन्ततः वियोग होना होता है, तथा सभी सांसारिक वृद्धियों का अन्त में क्षय होना होता है तब राग की निवृत्ति हो जाती है।

जब राग निवृत्त हो जाता है तब द्वेष की निवृत्ति स्वयं हो जाती है।

मृत्युभय

मृत्युभय का शास्त्रीय नाम 'अभिनिवेश' है। छोटे-छोटे कृमियों को भी मृत्यु का भय बराबर बना रहता है। मूर्खों और विद्वानों में भी मृत्युभय बराबर दीखता है।

अविद्या का नाश और मोक्ष

जब अविद्या नष्ट हो जाती है तब जीव के सब दोष नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर अधर्म, अन्याय, विषयासक्ति आदि की सब भावनाएँ दूर हो जाती हैं। फिर जन्म का बन्धन टूट जाता है, और सब दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाता है। दुःखों का अभाव हो जाने पर सब दिनों के लिए परमात्मा के साथ आनन्द-ही-आनन्द भोगना होता है, इसे ही 'मोक्ष' कहते हैं।

मुक्त जीवों की परिस्थिति

मुक्त जीव परमेश्वर को पाकर, उसी की उपासना करते हुए, उसीके आश्रय में रहते हैं। मुक्त जीवों का जाना-आना लोकलोकान्तरों में होता है। उनके लिए कहीं रुकावट नहीं रहती, और उनकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

मोक्ष को प्राप्त हुए मनुष्य को पूर्णमुक्त लोग अपने समीप आनन्द में रख लेते हैं, और फिर वे परस्पर अपने ज्ञान से एक-दूसरे को प्रीतिपूर्वक देखते और मिलते रहते हैं।

मुक्त जीव मोक्ष को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहते हैं और 'तृतीय धाम' में अर्थात् सत्त्वगुणप्रधान मनवाले होकर सर्वोत्तम सुख में सदा स्वच्छन्दता से रमण करते हैं।

पुनर्जन्म विषय

वेदों में पुनर्जन्म के लिए तथा पुनर्जन्म में श्रेष्ठशक्तियों की प्राप्ति के लिए अनेक प्रार्थनाएँ मिलती हैं। इनसे पुनर्जन्म का सिद्धान्त परिपुष्ट होता है। यथा—हे परमेश्वर! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हममें उत्तम नेत्र आदि सब इन्द्रियाँ स्थापित कीजिये। हे जगदीश्वर! इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम-उत्तम भोगों को प्राप्त हों। हे सबको मान देने हारे! सब जन्मों में हम लोगों को आप सुखी रखिये। (ऋ० प्र० ८, अ० १, व० २३, मं० १)

हे सर्वज्ञ ईश्वर ! जब-जब हम जन्म लेवें तब-तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रेय प्राप्त हों। विश्वनियन्ता परमेश्वर सब जन्मों में हमारे शरीरों का पालन करे, तथा बुरे कर्मों और सब दुःखों से हमें अलग रखे। (यजु० ४। १५)

हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से पुनर्जन्म में हमें मन आदि ११ इन्द्रियाँ प्राप्त हों। वेद में और आप में हमारी निष्ठा बनी रहे, और उपकार के अर्थ हम अग्निहोत्र आदि यज्ञ करते रहें। पुनः मनुष्य-देह को धारण करके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को सदा सिद्ध करके आपकी भक्ति प्रेम से किया करें। (अथर्व० ७। ६७। १)

जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है उस धर्माचरण के फल-रूप में वह अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता है, और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीरों को प्राप्त करता है।

पूर्वजन्म में किये पाप-पुण्य के फलों को भोगनेवाला जीवात्मा पूर्व शरीर को छोड़कर वायु के साथ रहता है। फिर जल, ओषधि आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है। तदनन्तर मातृयोनि में स्थिर होकर पुनर्जन्म लेता है। जो जीव नित्यवेदवाणी को यथावत् जानकर बोलता है, और धर्म में ही यथावत् स्थिर रहता है वह मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है, और जो अधर्माचरण करता है वह अनेक नीच शरीरों अर्थात् कीट, पतंग, पशु आदि के शरीर को धारण कर अनेक दुःखों को भोगता है।

(अथर्व० ५। १। २)

जन्म के दो प्रकार

जन्म दो प्रकार के होते हैं। (१) मनुष्य शरीर का धारण करना, (२) नीचगति से पशु-पक्षी, कीट-पतंग वृक्ष आदि के रूप में उत्पन्न होना। इनमें से मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं। एक "पितृ" अर्थात् साधारण ज्ञानी होना, दूसरा "देव" अर्थात् सब विद्याओं को पढ़कर विद्वान् होना, तीसरा "मर्त्य" अर्थात् साधारण मनुष्य शरीर का धारण करना।

इनमें मनुष्य-शरीर पुण्यात्माओं और तुल्य पाप-पुण्यवालों को मिलता है और कीट आदि का शरीर उन्हें मिलता है जो जीव अधिक पाप करते हैं। इन्हीं भेदों से जगत् के सब जीव अपने-अपने पुण्यों और पापों के फल भोग रहे हैं।

निरुक्त और पुनर्जन्म

निरुक्त में यास्काचार्य ने लिखा है कि "जब मनुष्य को ज्ञान हो जाता है तब वह ठीक-ठीक जानता है कि मैंने अनेक वार जन्म-मरण

को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारों गर्भाशयों का सेवन किया, अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दूध पिया, अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा, मैंने गर्भ में नीचे मुख और ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होकर अनेक जन्म धारण किये हैं।" (निरु० १४। ६)

योगदर्शन और पुनर्जन्म

योगदर्शन में भी पुनर्जन्म का विधान है। इसमें लिखा है कि "प्रत्येक प्राणी की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि मैं सदैव सुखी बना रहूँ, मरूँ नहीं। यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि मैं बना न रहूँ। यह मृत्युभय तथा सुखप्राप्ति की चेष्टा कृमिपर्यन्त सब प्राणियों में बद्धमूल है। इसके द्वारा पूर्वजन्मों की सिद्धि होती है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी ने पूर्वजन्म में यदि सुख-दुःख का अनुभव न लिया होता तो वर्तमान जीवन में वह सुख की इच्छा क्यों करता, तथा दुःख से बचने की चेष्टा क्यों करता ? (योग० पा० २, सू० ६)

पूर्वजन्म के सम्बन्ध में अन्य चर्चा

पूर्वजन्मों के होते हुए भी हमको उनका ज्ञान इस जन्म में नहीं होता। जब इसी जन्म में जो-जो सुख हमने शैशवावस्था में भोगे हैं उनका ज्ञान नहीं रहता, तथा हम जो नित्य पठन-पाठन और व्यवहार करते हैं उनमें से भी कितनी ही बातें भूल जाते हैं, तथा निद्रा में भी उन्हें हम भूले रहते हैं। इस प्रकार जब इसी जन्म के व्यवहारों को इसी शरीर में हम भूल जाते हैं तब पूर्वजन्म के शरीरों के व्यवहारों का ज्ञान हमें कैसे रह सकता है ?

कई लोग कहते हैं कि जब हमको पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों का ज्ञान नहीं होता, और ईश्वर उनका फल सुख वा दुःख देता है,—तो इससे ईश्वर का न्याय, वा जीवों का सुधार कभी नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को विना कारण सुख वा दुःख कभी नहीं देता। जब हमको पाप-पुण्य का कार्य सुख और दुःख प्रत्यक्ष है तब हमको ठीक निश्चय होता है कि पूर्वजन्म में पाप-पुण्यों के बिना उत्तम, मध्यम तथा नीच शरीर, तथा इसी प्रकार की बुद्धि आदि साधन कभी नहीं मिल सकते। इससे हम निश्चयपूर्वक जानते हैं कि ईश्वर का न्याय और हमारा सुधार ये दोनों काम यथावत् हो रहे हैं।

वेदोक्त धर्म विषय

१. संग, संवाद, ज्ञानप्राप्ति

परमेश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो ! तुम सब परस्पर के विरोध को छोड़कर एक-दूसरे की संगति में रहा करो । विरुद्धवाद को छोड़कर परस्पर प्रीति के साथ पढ़ना-पढ़ाना तथा परस्पर प्रश्नोत्तर सहित संवाद किया करो । अपने यथार्थ ज्ञान को नित्य बढ़ाते रहो, जिससे तुम्हारा मन प्रकाशयुक्त हो । जैसे पक्षपात-रहित धर्मात्मा विद्वान् वेदरीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं उसी प्रकार तुम भी किया करो । (ऋ० अ० ८, अ० ८, व० ४६, मं० २)

एकता

तुम्हारा विचार एक हो, किसी प्रकार का विरोध न हो । उत्तम मनुष्यों की सभा द्वारा राज्यप्रबन्ध यथावत् किया करो, वह सभा तुम सबकी एक हो । तुम्हारे मन आपस में विरोध-रहित होकर सबके दुःखों के विनाश और सुखों की वृद्धि के लिए पुरुषार्थवाले हों । पूर्वापर कर्मों का यथावत् विचार करनेवाले तुम्हारे चित्त भी एक से हों । तुम्हारे मन और चित्त सब मनुष्यों के सुख के लिए प्रयत्नशील हों । मैं परमेश्वर तुम सबको समान विचार रखने का आशीर्वाद देता हूँ ।

(ऋ० अ० ८, अ० ८, व० ४६, मं० ३)

सहयोग

तुम्हारे निश्चय, उत्साह और पुरुषार्थ सब जीवों के सुख के लिए सदा हों, तुम्हारे हृदय परस्पर प्रेमसहित और विरोधरहित हों । अपने मनों को सबके सुखों और हित के लिए प्रयुक्त किया करो । पारस्परिक सहायता और सहयोग की भावनाओं को सदा बढ़ाया करो । सबको सुखी करके अपनी आत्मा को सुखी जानो ।

(ऋ० अ० ८, अ० ८, व० ४६, मं० ४)

२. सत्य और असत्य, श्रद्धा और अश्रद्धा

जगत् के पति परमेश्वर ने सत्य अर्थात् धर्म और असत्य अर्थात् अधर्म को यथावत् जानकर उनके स्वरूपों का भेद वेदों द्वारा दर्शाया है । इसलिए सबको सत्य में भाषण और असत्याचरण में अश्रद्धा को स्थापित किया है, और सत्यभाषण और सत्याचार में श्रद्धा को स्थापित किया है । यह श्रद्धा और अश्रद्धा मनुष्यों में परमेश्वर ने स्वभावतः दे रखी है । (यजु० १९ । ७७)

३. सर्वभूतमैत्री

परमेश्वर राग-द्वेष की गाँठों को काटनेवाला है। उससे दृढ़ता की प्रार्थना करनी चाहिये कि हम सब आपस में वैरभाव को छोड़कर एक-दूसरे के साथ प्रेमभाव से वर्तें। सब प्राणी प्रत्येक व्यक्ति को अपना मित्र जानकर उसके साथ बन्धु समान वर्ता करें। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति सब प्राणियों को अपना मित्र जाने, और हानि-लाभ तथा सुख-दुःख में, अपनी आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जाने। इस प्रकार सब लोग आपस में मिलकर सदा मित्रभाव से रहा करें। (यजु० ३६।१८)

४. सत्य का व्रत

परमेश्वर व्रतों का पति है। उससे शक्ति की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे व्रतपति! मैं भी व्रताचरण करना चाहता हूँ, मुझे आप कृपापूर्वक शक्ति प्रदान कीजिये, ताकि मैं अपने व्रत का पालन कर सकूँ, मेरे इस व्रतानुष्ठान को आप कृपापूर्वक सिद्ध कीजिये। मैं यह व्रत धारण करता हूँ कि मैं असत्य कर्मों को छोड़कर सत्य के आचरण में सदा दृढ़ रहूँ। (यजु० १। ५)

मनुष्य के लिए उचित है कि उसमें जितना सामर्थ्य है उतना पुरुषार्थ पहिले अवश्य कर ले। उसके उपरान्त ईश्वर की सहायता की याचना करे। जो मनुष्य सत्यभावना और पुरुषार्थ से सत्याचरण करना चाहता है उसी पर ईश्वर भी दया करता है, अन्य पर नहीं। जैसे-जैसे मनुष्य सत्यव्रत का अनुष्ठान करने लगता है वैसे-वैसे उसमें सत्यव्रत के अनुष्ठान में अधिकाधिक शक्ति प्राप्त होने लगती है, और उसका व्रतानुष्ठान में अधिकार बढ़ने लगता है। तदनन्तर उसे व्रतानुष्ठान का फल भी प्रत्यक्ष होने लगता है। इस प्रकार व्रतानुष्ठान में उसकी श्रद्धा बढ़ती चली जाती है। व्रतानुष्ठान में जितनी-जितनी अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती है उसे सत्य की प्राप्ति भी उसी मात्रा में अधिकाधिक होती जाती है। (यजु० १९। ३०)

५. अन्य सद्गुणों का अनुष्ठान

मनुष्यों को परिश्रम, प्रयत्न, पुरुषार्थ तथा धर्मकर्मों का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। तप अर्थात् कष्ट सहन करके भी धर्म का अनुष्ठान करना, वेदविद्या द्वारा अपने को बढ़ाना, धर्मपूर्वक वित्तोपार्जन करना, सत्यज्ञान में निष्ठा, ब्रह्मोपासना, सत्य की परीक्षा करके सत्य का आचरण करना, यश अर्थात् उत्तम कीर्ति—इन सबकी प्राप्ति सब मनुष्यों को करनी चाहिये। (अथर्व० कां० १२। अनु० ५। मं० १, २)

सब मनुष्य अपने में शुभ गुणों का धारण करें। श्रद्धा से भरपूर हों। विद्वानों से सत्यशिक्षा पाकर रक्षा को प्राप्त हों। परमेश्वरोपासना होम

द्वारा संसार का उपकार तथा शिल्पविद्या की सिद्धि—इन तीन प्रकार के यज्ञों में सब यथावत् प्रवृत्ति करें, तथा मृत्युपर्यन्त लोकसेवा में तत्पर रहें। (अथर्व० कां० १२ । अनु० ५ । मं० ३)

सहनशक्ति, बल की प्राप्ति, सत्य-और-मधुर भाषण, इन्द्रियों की पापकर्म से रक्षा आदि धर्मों का सदा उपार्जन करना चाहिये।

(अथर्व० कां० १२ । अनु० ५ । मं० ७)

ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति का उपार्जन, राष्ट्रसेवा, शरीर की कान्ति, नियमपूर्वक जीवन व्यतीत कर आयु को बढ़ाना, शारीरिक स्वच्छता, प्राणायाम, नानाविध रसों का यथावत् सेवन, इष्ट पदार्थों का संग्रह, संतानों का पालन, पढ़ना-पढ़ाना प्रतिदिन अग्निहोत्र, अतिथि सेवा, मनुष्यसेवा, आचार्य विद्वानों तथा माता-पिता इनको देव जानकर इनकी पूजा तथा सेवा करना, दान देना—ये दैनिक कर्त्तव्य हैं, इनका सदा पालन करते रहना चाहिए।

(अथर्व० कां० १२, अनु० ५, सू० ५, खं० २, मं० ८-१०)

वर्णव्यवस्था विषय

चार वर्णों के गुण-कर्म

सब मनुष्यों की एक जाति है, अर्थात् मनुष्य-जाति। मनुष्य-जाति चार वर्णों में विभक्त होती है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन का नाम "वर्ण" इसलिए है कि जैसे जिसके गुणकर्म हों वैसा ही उसको अधिकार देना चाहिए। गुण-कर्मों के अनुसार ही वर्ण 'वरा' जाता है। वेदाध्ययन और परमेश्वर की उपासना के साथ वर्तमान तथा विद्या आदि उत्तम गुणों से युक्त पुरुष को ब्राह्मण कहते हैं। ऐश्वर्य, बल, वीर्य, शौर्य आदि गुणों से सम्पन्न पुरुष को क्षत्रिय कहते हैं। लेन-देन, व्यापार, पशुपालन तथा कृषि आदि के कर्मों में कुशल मनुष्य को वैश्य, और शिल्पविद्या के जाननेवाले तथा सेवा में कुशल अज्ञानी मनुष्य को शूद्र कहते हैं।

मनुष्य-जाति के दो भेद

मनुष्य-जाति के दो भेद अन्य प्रकार से भी किये जाते हैं, आर्य और दस्यु। श्रेष्ठ मनुष्यों को आर्य कहते हैं, और दुष्ट स्वभाव से युक्त डाकू आदि को दस्यु कहते हैं। इन्हें ही देव और असुर भी कहते हैं। अर्थात् आर्यों को देव तथा दस्युओं को असुर कहते हैं।

वर्ण-परिवर्तन

मनुस्मृति[1] (अ० १०, श्लो० ६५) में लिखा है कि 'शूद्र' ब्राह्मण हो जाता है, और 'ब्राह्मण' शूद्र हो जाता है। अर्थात् गुण-कर्मों के अनुसार ब्राह्मण हो तो वह ब्राह्मण रहता और ब्राह्मण यदि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुणों वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है। वैसे शूद्र भी मूर्ख हो तो वह शूद्र रहता, और जो उत्तम गुणों से युक्त हो तो यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जान लेना चाहिये। जो शूद्र को वेदादि पढ़ने का अधिकार न होता तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अधिकार को कैसे प्राप्त हो सकता? वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने में सब मनुष्यों का अधिकार है। जो-जो पदार्थ ईश्वर ने रचे हैं वे सब के उपकारार्थ हैं। मूर्ख का नाम शूद्र, और अतिमूर्ख का नाम अतिशूद्र है। इनमें विद्याग्रहण की बुद्धि ही नहीं होती। स्त्रियों को भी वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-सुनने का समान अधिकार है। यजुर्वेद[2] में लिखा है कि "वेदों को पढ़ने का अधिकार सब मनुष्यों का है" और विद्वानों को उनके पढ़ाने का भी अधिकार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्य लोगो! जिस प्रकार मैं (परमेश्वर) तुम को चारों वेदों का उपदेश देता हूँ उसी प्रकार तुम भी उनको पढ़कर सब मनुष्यों को पढ़ाया और सुनाया करो। क्योंकि यह वेद रूपी वाणी सबका कल्याण करनेवाली है। वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण के लिए है वैसा ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुत्र, भृत्य और अतिशूद्र के लिए भी बराबर है।

वर्णपरिवर्तन के सम्बन्ध में यह निश्चितरूप से जान लेना चाहिये कि २५वें वर्ष में वर्णों का अधिकार ठीक-ठीक होता है। क्योंकि २५ वर्षों तक बुद्धि बढ़ती है। इसलिए उसी समय गुणकर्मों की ठीक-ठीक परीक्षा करके वर्णाधिकार होना उचित है। 'आपस्तम्बधर्मसूत्र'[3] में लिखा है कि धर्माचरण से नीचे के वर्ण पूर्व-पूर्व वर्ण के अधिकार को प्राप्त होते हैं, और अधर्माचरण करके पूर्व-पूर्व वर्ण नीचे-नीचे के वर्णों के अधिकारों को प्राप्त होते हैं।

---

१. शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

२. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥ (यजु० २६।२)

३. धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।
(प्रश्न २, पटल ५, खं० ११, सू० १०, ११)

आश्रम-व्यवस्था विषय

चार आश्रमों पर सामान्य विचार

आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ५ या ८ वर्ष की आयु से लेकर ४८ वर्षों की आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम का समय है। ब्रह्मचर्याश्रम सुशिक्षा और सत्यविद्या के ग्रहण के लिए होता है।

दूसरा गृहस्थाश्रम है। यह उत्तम गुणों के प्रचार और श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति, श्रेष्ठ सन्तानों की उत्पत्ति और उन्हें सुशिक्षित करने के लिए धारण किया जाता है।

तीसरा वानप्रस्थाश्रम है। यह ब्रह्म-विद्या के साक्षात् करने के लिए तथा एकान्त में परमेश्वर का सेवन करने के लिए लिया जाता है।

चौथा आश्रम संन्यास है जो कि मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए तथा सत्योपदेश द्वारा सब संसार के उपकार के लिए धारण किया जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए इन चार आश्रमों का सेवन करना सब मनुष्यों को उचित है।

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम जोकि सब आश्रमों का मूल है उसके ठीक-ठीक सुधरने से सब आश्रम सुधरते, और उसके बिगड़ने से सब आश्रम बिगड़ते हैं। माता के गर्भ में बसकर मनुष्य का जो जन्म होता है वह प्रथम-जन्म कहलाता है, और दूसरा जन्म वह है जिसमें कि 'आचार्य' पिता और 'विद्या' माता होती है। इस दूसरे जन्म के न होने से मनुष्य को मनुष्यपन प्राप्त नहीं होता। इसी दूसरे जन्म के कारण मनुष्य को द्विजन्मा या द्विज कहा जाता है। पाँच या आठ वर्षों की आयु में जब बालक और बालिकाएँ पढ़ानेवाले के समीप रहते हैं तभी से उनका नाम ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी हो जाता है, क्योंकि तबसे वे ब्रह्म अर्थात् वेद और परमेश्वर के विचार में तत्पर होते हैं। ब्रह्मचारी को तप-पूर्वक जीवन व्यतीत करना होता है। ब्रह्मचारी को पृथिवी, सूर्य और अन्तरिक्ष इन तीनों लोकों की विद्याओं को प्राप्त करने की इच्छा होनी चाहिये। ब्रह्मचारी विद्याग्रहण करके पूर्वसमुद्र अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के अनुष्ठान द्वारा उससे पार उतरकर उत्तरसमुद्र अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होते हैं। कन्या जब ब्रह्मचर्याश्रम से पूर्ण विद्या पढ़ चुके तब युवावस्था में पूर्ण जवान पुरुष को अपने पति के रूप में वरण करे। इसी प्रकार पुरुष भी सुशील, धर्मात्मा स्त्री के साथ प्रसन्नता से विवाह कर, दोनों परस्पर सुख-दुःख में सहायकारी हों।

गृहस्थाश्रम

गृहस्थी स्त्री-पुरुषों को धर्म की उन्नति, तथा ग्रामवासियों के हित के लिए सदा यत्न करते रहना चाहिये। वनवासियों का हित करना, संसार को सुख देने के लिए सभाओं में सत्यासत्य का विचार करना, तथा जितेन्द्रियता से ज्ञान की वृद्धि करना आदि श्रेष्ठकर्म करते रहना चाहिये। पाप करने की बुद्धि को मन, वचन और कर्म से छोड़कर सर्वथा सबके हितकारी बनें। सामाजिक नियमों की व्यवस्था के अनुसार ठीक-ठीक चलना गृहस्थ की परम उन्नति का कारण है। जो वस्तु किसी से लेवें अथवा देवें वह भी सत्यव्यवहार के साथ किया करें। मिथ्या व्यवहार किसी से न किया करें, क्योंकि जो लोग विचार-पूर्वक सबके हितकारी काम करते हैं उनकी सदा उन्नति होती है। गृहस्थाश्रम की इच्छा करनेवाले मनुष्य स्वयंवर अर्थात् अपनी इच्छा के अनुकूल विवाह करके गृहस्थाश्रम का सेवन करें। गृहस्थाश्रम में पशुओं का तथा खाने-पीने के योग्य रसयुक्त पदार्थों का संग्रह करना चाहिये। इस प्रकार पारमार्थिक सुख तथा सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिए गृहस्थों से सदा यत्न करते रहना चाहिये।

वानप्रस्थ तथा संन्यास

सब आश्रमों में धर्म के तीन अंग हैं। प्रथम विद्या का अध्ययन, द्वितीय यज्ञ अर्थात् उत्तम कर्मों का करना और तीसरा दान अर्थात् विद्यादि उत्तम गुणों का देना। ब्रह्मचर्याश्रम में तपश्चर्यापूर्वक सुशिक्षा तथा धर्मानुष्ठान के निमित्त आचार्य के आश्रम में निवास द्वारा विद्याध्ययन तथा धर्म और ईश्वर के स्वरूपों को निश्चयपूर्वक जानना होता है। गृहस्थाश्रम में उनका अनुष्ठान तथा ज्ञान की वृद्धि करनी होती है। वानप्रस्थाश्रम में अपनी आत्मा को दृढ़ नियमों के नियन्त्रण में रखकर, एकान्त में रहकर, हृदय में परमात्मा का ठीक-ठीक विचारकर, सत्य और असत्य का निश्चय करना होता है। वानप्रस्थाश्रम समाप्त करके संन्यास ग्रहण करना चाहिये। इस क्रम से संन्यास ग्रहण करना—यह पहला पक्ष है, अर्थात् प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम, तत्पश्चात् गृहस्थाश्रम, तदनन्तर वानप्रस्थाश्रम और फिर संन्यासाश्रम।

दूसरा पक्ष यह है कि वानप्रस्थाश्रम के विना, गृहस्थाश्रम के बाद संन्यास ग्रहण करना।

तीसरा पक्ष है कि ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्णरूप से समाप्त करके गृहस्थाश्रम व वानप्रस्थाश्रम में विना प्रवेश किये संन्यास ग्रहण करना।

संन्यास-ग्रहण का उद्देश्य है मोक्षप्राप्ति अर्थात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति। जो उत्तम तथा पूर्ण विद्वान् हैं वे गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम के

विना, ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यासी हो जाते हैं। उनके सदुपदेशों से उनके जो धर्मपुत्र हो जाते हैं उन्हें ही वे अपने पुत्र मानकर, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से रहित हो जाते हैं। धन के लोभ तथा लोकप्रतिष्ठा से भी वे परे रहते हैं और भिक्षाचरण से जीवन-निर्वाह करते हैं। ये संन्यासी सबके गुरु होकर सबके अतिथि के रूप में विचरते हुए संसार को अज्ञानरूपी अंधकार से छुड़ाकर, सत्यविद्या के उपदेश रूपी प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। प्रजापति परमात्मा का भजन कर, शिखा-सूत्र आदि का होमकर, विरक्त होकर संन्यास ग्रहण करना चाहिये। ऐसा संन्यासी शुद्ध मन से जिस-जिस लोक की कामना करता है वह-वह कामना उसकी सिद्ध हो जाती है।

सारांश

सब मनुष्यों को अपनी आयु का प्रथम भाग विद्या पढ़ने में व्यतीत करना चाहिये। इस प्रकार पूर्ण विद्या को पढ़कर उससे संसार की उन्नति करने के लिए गृहस्थाश्रम भी अवश्य करें। तथा विद्या और संसार के उपकार के लिए एकान्त में बैठकर, सब जगत् का अधिष्ठाता जो ईश्वर है उसका ज्ञान अच्छी प्रकार करें और मनुष्यों को सब व्यवहारों का उपदेश करें। फिर उनके सब संदेहों का छेदन और सत्य बातों का निश्चय कराने के लिए, संन्यास आश्रम भी अवश्य ग्रहण करें, क्योंकि संन्यासाश्रम के विना सम्पूर्ण पक्षपात छूटना बहुत कठिन है।

पञ्च-महायज्ञ विषय

१. ब्रह्मयज्ञ

पञ्चमहायज्ञ मनुष्यों को नित्यप्रति करने चाहिये। पहला महायज्ञ है ब्रह्मयज्ञ। इसमें वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना तथा सन्ध्योपासन अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये।

२. देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र

वायु, ओषधि और वर्षाजल की शुद्धि द्वारा सबके उपकार के लिए, घृतादि शुद्ध वस्तुओं और आम्र या ढाक आदि की समिधाओं से, अग्नि को नित्य प्रकाशित करना चाहिये। होम में पुष्टिकारक, मधुर, सुगन्धित तथा रोगनाशक गुणों से युक्त वस्तुओं को अच्छे प्रकार से शुद्ध करके वर्तना चाहिये। अग्निहोत्र करनेवाला ऐसी इच्छा करे कि मैं प्राणियों का उपकार करनेवाले पदार्थों को पवन और मेघमण्डल में पहुँचाने के लिए अग्नि स्थापन करता हूँ। अग्निहोत्र से आरोग्य,

शारीरिक पुष्टि और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। प्रातःकाल और सायंकाल अथवा केवल प्रातःकाल ही नित्य होम करना चाहिये। अग्निहोत्र का नाम देवयज्ञ भी है। क्योंकि वायु, जल, ओषधि आदि देवों अर्थात् दिव्य पदार्थों की शुद्धि और परिपुष्टि के निमित्त अग्निहोत्र किया जाता है। अग्निहोत्र के करने से परमात्मा की प्रसन्नता का लाभ भी होता है।

३. पितृयज्ञ

पञ्चमहायज्ञों में तीसरा महायज्ञ 'पितृयज्ञ' है। इसके दो भेद हैं। एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध। जिस कर्म द्वारा विद्वानों, ऋषियों और पितरों (माता-पिता आदि) को सुखयुक्त करते हैं, उनकी तृप्ति करते हैं, उस कर्म को तर्पण कहते हैं। तथा इन सज्जनों की 'श्रद्धापूर्वक' जो सेवा करनी है उसे श्राद्ध कहते हैं। यह तर्पण और श्राद्ध जीवितों का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं। सब विद्याओं को पढ़कर जो औरों को पढ़ाते हैं उन्हें ऋषि कहते हैं। पिता, पितामह, माता, मातामही आदि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग—जो कि अवस्था और ज्ञान में बड़े और मान के योग्य हैं—उन्हें पितर कहते हैं। उत्तम-उत्तम जलों, रोगनाशक उत्तम अन्नों तथा उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों द्वारा इन पितरों की नित्य सेवा करनी चाहिये। इन पितरों की इच्छा के अनुकूल पदार्थों द्वारा ही इनकी सेवा करनी चाहिये। ये विद्वान् तथा अनुभवी लोग मनुष्यों को ज्ञानचक्षु देकर उनके अविद्यारूपी अंधकार को नष्ट करते हैं। पितर लोग जब-जब दर्शन दें तब-तब अभ्युत्थान-पूर्वक नमस्कार और प्रिय वचनों द्वारा उनका सत्कार करना चाहिये। इन्हें उचित स्थान पर बिठलाना तथा खान-पान द्वारा सत्कार करना चाहिये। तदनन्तर उनसे उपदेश के लिए प्रार्थना करनी चाहिये। पितरों की इच्छा के अनुकूल उन्हें भोजन तथा वस्त्रादि देने चाहियें। पितर लोग पक्षपात से रहित होकर, सत्यव्यवस्था में स्वयं चलकर, अपने दृष्टान्त से औरों को भी सत्यव्यवस्था में चलाते हैं। पितर अर्थात् विद्वान् लोग यमराज्य अर्थात् सर्वनियन्ता अन्तर्यामी परमेश्वर के इस राज्य में न्यायाधीश होकर न्याय करें और सबके हित करने में समान बुद्धिवाले हों। इनका लोक अर्थात् वह देश जिसमें कि ये रहते हैं सत्य न्याय को प्राप्त होकर सुखी रहता है। हमें इन पितरों की सेवा करनी चाहिये, क्योंकि ये पितर प्रीतिपूर्वक विद्या आदि के दान से हमको प्रसन्न करते हैं। पितरों से कहना चाहिये कि हे पितरो! आप हमें अपने कल्याणकारी उपदेश दें ताकि हम पाप-कर्म न करें। हम पितरों को निमन्त्रण दिया करें, ताकि वे हमारे समीप आकर उत्तम

आसनों पर बैठकर हमें बहुमूल्य और सुनने में प्रिय उपदेश दिया करें। इनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि आप हमारे घरों में आकर निवास कीजिये और हमें अपने सदुपदेशों से कृतार्थ कीजिये। इन विद्वान् पितरों को परमात्मा का यह उपदेश है कि वे लोग देश-देश और घर-घर जाकर सब मनुष्यों को सत्यविद्या का उपदेश किया करें। परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये कि आप अपनी कृपा से इन विद्वान् पितरों के शरीरों को सदा सुखी, तेजस्वी और रोगरहित रखिये, जिससे हमको उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहे।

ब्रह्मचारी और पितर

२४ वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम में जिन्होंने वास कर विद्याध्ययन किया है उन 'वसु' नाम वाले स्नातकों को भी 'पितामह' कहते हैं। जिन्होंने ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम में वासपूर्वक विद्याध्ययन किया है उन 'रुद्र' नाम वाले स्नातकों को भी 'पितामह' कहते हैं। इसी प्रकार ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम में वासपूर्वक जिन्होंने विद्याध्ययन किया है उन 'आदित्य' नाम वाले स्नातकों को भी 'पितामह' कहते हैं। अभ्युत्थान, नमस्कार और उपहार आदि विधियों द्वारा इन सबका भी सत्कार करना चाहिए।

अमावास्या और पितृयज्ञ

जहाँ कहीं अमावास्या में पितृयज्ञ करना लिखा है वह इस अभिप्राय से है कि जो कदाचित् पितरों की नित्य सेवा न बन सके तो महीने-महीने अर्थात् अमावास्या में जो मासेष्टि की जाती है उसमें पितरों को श्रद्धापूर्वक बुलाकर उनका सत्कार अवश्य करें।

४. बलिवैश्वदेव-यज्ञ

प्रतिदिन भोजन के निमित्त सिद्ध किए हुए अन्न में से भौतिक अग्नि में होम करके अतिथियों को भोजन कराना, तथा अन्य प्राणियों के लिए भी भोजनांश का वितरण करना "बलिवैश्वदेव" यज्ञ कहलाता है। इससे सब हमारे मित्र और हम सबके मित्र बने रहकर परस्पर उपकार करते रहें।

कुत्तों, पतितों, कंगालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिए अन्न से ६ भाग अलग-अलग बाँटकर देना चाहिये। इस प्रकार सब प्राणियों को मनुष्यों से सुख प्राप्त होना चाहिये।

५. अतिथि-यज्ञ

पाँचवाँ महायज्ञ अतिथि-यज्ञ है। इसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है। जो मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सत्यवादी और छलकपट से रहित हैं, तथा जो नित्य भ्रमण करके विद्या और धर्म का प्रचार और अविद्या तथा अधर्म की निवृत्ति सदा करते रहते हैं, उनको 'अतिथि' कहते हैं। जिनके घर में इस प्रकार का व्रत-निष्ठ विद्वान् अतिथि आए तो उसकी यथावत् सेवा करनी चाहिये। जिसके आने-जाने की कोई तिथि या दिन निश्चित न हो उसे अतिथि (अ + तिथि) कहते हैं। गृहस्थी लोग ऐसे पुरुष को आते देखकर बड़े प्रेम से उठकर नमस्कार करके उसे उत्तम आसन पर बैठावें। पूछें कि आपको जल अथवा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो तो कहिये। जब वह स्वस्थचित्त हो जाय तब पूछें कि हे व्रतनिष्ठ! आपने कल के दिन कहाँ वास किया था, अर्थात् आप कहाँ से पधारे हैं, हे अतिथि देव! यह जल लीजिये, हमें अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिये, जिससे कि हमारे इष्टमित्र लोग प्रसन्न होकर आपको भी सेवा से सन्तुष्ट रखें। हे विद्वन्! जिस प्रकार आपकी प्रसन्नता हो हम लोग वैसे ही करें, तथा जो पदार्थ आपको प्रिय हो उसकी आज्ञा कीजिये, ताकि जिस प्रकार आपकी कामना पूर्ण हो वैसी सेवा की जाय।

राजप्रजा-धर्म विषय

१. परमेश्वर ही एक राजा है

सब संसार का राजा एक परमेश्वर ही है, और सब संसार उसकी प्रजा है। सबको निश्चय करके जानना चाहिये कि हम सब परमेश्वर की ही प्रजा हैं, और वही एक हमारा राजा है।

२. राज्य में तीन सभाएँ

तीन प्रकार की सभाओं को ही राजा मानना चाहिये, एक मनुष्य को कभी राजा न मानना चाहिये। राज्यप्रबन्ध के लिए प्रथम 'आर्य-राजसभा' जिससे विशेष करके सब राजकार्य अर्थात् प्रबन्ध के कार्य ही सिद्ध किये जायँ। दूसरी 'आर्यविद्यासभा' जिससे कि सब विद्याओं का प्रचार किया जाय; तीसरी 'आर्यधर्मसभा' जिससे कि धर्म का प्रचार और अधर्म की हानि की जाय। इन तीन सभाओं के परामर्श द्वारा युद्ध में शत्रुओं को जीतकर विश्व को सुखों से परिपूर्ण करना चाहिये। सामान्य कार्यों में तीनों सभाएं मिलकर ही सब उत्तम-उत्तम व्यवहारों को प्रजाओं में प्रचारित करें। जहाँ एक मनुष्य राजा होता है वहाँ प्रजाएँ पीड़ित रहती हैं।

सभासदों की योग्यता

इन सभाओं में धर्मात्मा, विद्वान्, सारासार का विचार करनेवाले, श्रेष्ठ व्यक्ति ही सभासद् होने चाहियें। इन सभाओं में ऐसे व्यक्ति सभासद् रखने चाहियें जो सदाचारी हों, सत्य और न्याय को जानते हों, राज्य के धारण-पोषण-पालन के व्यवहारों में कुशल हों, सबका हित चाहनेवाले हों। राज्य के लिए एक को राजा कभी नहीं मानना चाहिये। जहाँ एक को राजा मानते हैं वहाँ सब प्रजा दुःखी हो जाती है और उस राज्य में उत्तम-पदार्थों का अभाव हो जाता है। आर्यों की यह एक बात बड़ी उत्तम थी कि न्यायाधीश के होते अन्याय हो जाने पर वे इसमें प्रजा का दोष नहीं मानते थे, किन्तु यह दोष सभाध्यक्ष, सभासद् और न्यायाधीश का ही माना जाता था। इसलिए आर्य लोग सत्य और न्याय के करने में अत्यन्त पुरुषार्थ करते थे।

३. सभाध्यक्ष का राज्याभिषेक

जो कोई व्यक्ति राजा अर्थात् सभाध्यक्ष होने के योग्य हो, प्रजाजन तथा सब सभासद् और राज्याधिकारी, सब सभाओं के राजा परमेश्वर को साक्षी जानकर, सब सभाओं में सभाध्यक्ष का अभिषेक करें और सभाध्यक्ष से कहें कि हे सभाध्यक्ष! परमेश्वर की सृष्टि में हम लोग सत्य और न्याय के प्रकाश के लिए, विद्या की वृद्धि के लिए, उत्तम सेना, सर्वोत्तम लक्ष्मी और सर्वोत्तम कीर्ति की प्राप्ति के लिए, आपको सभाध्यक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। सभाध्यक्ष, सभासदों और प्रजाजनों को ऐसा निश्चय करना चाहिये कि राज्य की श्रीसम्पत् उनके जीवन में उनके शिरस्थानी है, और राज्य की उत्तम कीर्ति ही उनका उज्ज्वल मुखड़ा है। सेनापति और सभाध्यक्ष सभासदों के साथ विचारपूर्वक प्रजाजनों का पालन तथा युद्ध किया करें। परमेश्वर को तीनों सभाओं का स्वामी जानकर उससे प्रार्थना किया करें कि हम सभाओं के सभासद् हैं। आपकी कृपा से सभ्यतायुक्त होकर सदा सत्य और न्याय की रक्षा किया करें।

४. राज्य में राज्याङ्गों की उन्नति

सभाध्यक्ष, सभासद् और प्रजाजन परस्पर मिल-जुलकर राज्य में बल, पराक्रम, शौर्य, धैर्य, उत्तम प्रबन्ध, सेना, कोश, प्रजासुख, पुरुषार्थ, व्यापारोन्नति, गणितविद्यादि की उन्नति, प्रजा और राज्यसभाओं में परस्पर मेल—इन सबकी यथावत् उन्नति करें।

५. राज्य के विद्वानों के कर्त्तव्य, तथा अश्वमेध यज्ञ

हे विद्वान् लोगो ! तुम राजधर्म को यथावत् जानकर अपने राज्य का ऐसा प्रबन्ध करो जिससे तुम्हारे देश पर कोई शत्रु न आ जाय। सब प्रजा को विद्वान् करके ऐसा प्रबन्ध करो जिससे सब मनुष्यों का उत्तम सुख बढ़ता जाय। राज्याधिकारी राजाओं के भी राजा महाराजाधिराज परमेश्वर को साक्षी जानकर उसे ही अपने राज्य का राजा समझें, और उसके पुत्र तथा भृत्य के समान अपने आपको जानकर उसके राज्य को सत्य और न्याय से सुशोभित करें। न्याय से राज्य का पालन करना ही क्षत्रियों के लिए अश्वमेध है। घोड़े को मारकर उसके अङ्गों का होम करना अश्वमेध नहीं है।

प्राकृतिक विद्या विषय

१. सृष्टि-विद्या

जब यह सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब एक परमेश्वर, और दूसरा जगत् का उपादान कारण अर्थात् मूल प्रकृति तथा प्रसुप्तावस्था में जीव विद्यमान थे। देखने में आनेवाला आकाश, परमाणु, मूल प्रकृति के विषम परिणाम, वर्तमान समग्र जगत्, तथा जन्म-मरण का चलता चक्र भी उस समय नहीं था। परमेश्वर के रचने से यह विविध सृष्टि उत्पन्न हुई है, वही परमेश्वर इस विविध सृष्टि का धारणकर्त्ता, विनाशकर्त्ता और स्वामी है। यह समग्र जगत् परमेश्वर के एक अंश में विद्यमान है। परमेश्वर तो अनन्त और अथाह है। परमेश्वर अनन्त है और उसका रचा यह जगत् परमेश्वर की अपेक्षा कुछ भी नहीं। व्यापक परमेश्वर में ही सब जगत् निवास कर रहा है। जब प्रलय होती है तब भी सब जगत् कारणरूप होकर परमेश्वर के सामर्थ्य में ही रहता है (ऋ० अ० ८, अ० ७, व० १७)। सुवर्ण की भाँति चमकने वाले सूर्य, नक्षत्र और तारागण प्रलय में परमेश्वररूपी माता के गर्भ में लीन रहते हैं। इसीलिए परमेश्वर को "हिरण्यगर्भ" कहते हैं। परमेश्वर इस ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण हो रहा है इसलिए उसे 'पुरुष' भी कहते हैं। वह जीवात्माओं में भी व्यापक होकर उनका अन्तर्यामी है, नियन्ता है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान् जगत् का वही एक रचयिता है। वह मोक्ष का दाता है, जन्म-मरण के बन्धन से रहित है।

(ऋ० अ० ८, अ० ७, व० ३, मं० १) (यजु० अ० ३१, मं० १-२)

जगत् दो प्रकार का है। एक चेतन, दूसरा जड़। चेतन जगत् वह है जो कि भोजन आदि के लिए चेष्टा करता है, जिसे कि साशन (स +

ग्रशन) कहते हैं ग्रौर जड़ जगत् वह है जोकि भोजन के लिए बना है, जिसे कि ग्रनशन कहते हैं। भोजन-सामग्री, जल, वस्त्र ग्रादि उसीके सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं। ग्राम ग्रौर वन के पशुग्रों को भी उसीने उत्पन्न किया है। वही पक्षियों, कीट-पतङ्गों को भी पैदा करता है। (यजु० ग्र० ३१, मं० ४, ६)

परमेश्वर के ज्ञान-स्वरूप (शीतल) सामर्थ्य से चन्द्रमा, तेजस्वरूप सामर्थ्य से सूर्य ग्रौर ज्योतिरूप सामर्थ्य से ग्रग्नि उत्पन्न हुई है। (यजु० ग्र० ३१, मं० १२)

ब्रह्माण्ड में जितने लोक हैं उनमें से प्रत्येक लोक के चारों ग्रोर सात-सात परिधियाँ[1] (ग्रर्थात् घेरे) ऊपर-ऊपर रची गई हैं। संसार के सब पदार्थ परमेश्वर के रचे हैं इसलिए परमेश्वर को विश्वकर्मा कहते हैं। जगत् का स्वामी परमेश्वर जड़ ग्रौर चेतन जगत् के भीतर ग्रौर बाहर ग्रन्तर्यामीरूप से सर्वत्र व्याप्त है। वह जगत् को उत्पन्न करता परन्तु स्वयं ग्रजन्मा है। वह विद्वानों की ग्रात्माग्रों में प्रकाश उत्पन्न करता है। उसने त्रिविध जगत् रचा है। एक सर्वोत्कृष्ट ग्रर्थात् प्रकृति में कार्योत्पादन की शक्ति, महत्तत्त्व (बुद्धि), ग्रहंकार ग्रर्थात् मन ग्रादि इन्द्रियाँ; दूसरा मनुष्यदेह ग्रौर ग्राकाश ग्रादि पंचभूत; ग्रौर तीसरा तृण, मृत्तिका ग्रादि तथा कृमि, कीट, पतङ्ग ग्रादि। परमेश्वर जगत् को रचता परन्तु स्वयं रचना में नहीं ग्राता। (यजु० ग्र० ३१, मं० १५; १७, १९, ग्रथर्व० कां० १०, सू० ७, मं० ८)

२. पृथिवी ग्रादि लोकों का भ्रमण

पृथिवी, चन्द्रमा ग्रादि लोक ग्रपनी-ग्रपनी परिधि में, ग्रन्तरिक्ष में, सदा घूमते रहते हैं। 'जल' पृथिवी की माता के समान है, क्योंकि पृथिवी ग्राकाशीय जलों के बीच में गर्भ के समान सदा रहती है। 'सूर्य' पृथिवी के पिता के समान है, क्योंकि पृथिवी सूर्य से उत्पन्न हुई है। पृथिवी पूर्व की ग्रोर बढ़ती हुई सूर्य के चारों ग्रोर घूमती है। इसी प्रकार सूर्य ग्रौर चन्द्रमा तथा सब लोक ग्रपनी-ग्रपनी कक्षा में सदा घूमते हैं। सूत्रात्मा वायु के ग्राधार पर ग्रौर परस्पर ग्राकर्षण से सब लोकों का धारण ग्रौर भ्रमण होता है। तथा परमेश्वर ग्रपने सामर्थ्य से पृथिवी ग्रादि सब लोकों का धारण, भ्रमण ग्रौर पालन कर रहा है। (यजु० ग्र० ३, मं० ६)

---

१. सात परिधियाँ=(१) समुद्र, (२) उसके ऊपर त्रसरेणु सहित वायु, (३) मेघमण्डल ग्रौर वहाँ का वायु, (४) वृष्टिकारक सूक्ष्म जल, (५) उसके ग्रौर ऊपर सूक्ष्म वायु, (६) ग्रौर भी ऊपर ग्रधिक सूक्ष्म वायु, जिसे कि धनञ्जय कहते हैं, (७) तथा सर्वत्र व्याप्त सूत्रात्मा वायु।

परमेश्वर ने जिस-जिस लोक के घूमने के लिए जो-जो मार्ग निश्चित किया है उस-उस मार्ग में सब लोक नियम से घूम रहे हैं।

इसी प्रकार चन्द्रलोक पृथिवी के चारों ओर घूमता है। यह सूर्य और पृथिवी के बीच के अन्तराल में घूमता है। द्यौः अर्थात् प्रकाश करनेवाले सूर्य आदि लोक और प्रकाश-रहित पृथिवी आदि लोक—ये सब अपनी-अपनी कक्षा में सदा घूमते हैं।

३. आकर्षण और अनुकर्षण

सब लोकों के साथ सूर्य का आकर्षण है और सूर्य आदि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण है। परमात्मा के अनन्त बल से सब संसार का धारण, आकर्षण और पालन होता है। इसीलिए सब लोक अपनी-अपनी कक्षा और स्थान से इधर-उधर चलायमान नहीं होते। वायु और सूर्य में ईश्वर के रचे आकर्षण, प्रकाश और बल आदि बड़े-बड़े गुण हैं। उन द्वारा सब लोकों का दिन-दिन और क्षण-क्षण में धारण, आकर्षण और प्रकाश हो रहा है। (ऋ० १।१।६।३)

परमेश्वर ने सूर्य आदि लोकों को रचा है और वे उसीके प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं। परमेश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से उन सबको धारण कर रहा है। परमेश्वर के नियन्त्रण में सूर्य आदि लोकों का, सब लोकों के साथ परस्पर आकर्षण से अर्थात् आकर्षण और अनुकर्षण से धारण हो रहा है। (ऋ० ६।१।६।५)

जैसे त्वचा में लोमों का आकर्षण हो रहा है वैसे ही सूर्य आदि लोकों के आकर्षण के साथ सब लोकों का आकर्षण हो रहा है और परमेश्वर भी इन सूर्य आदि लोकों का आकर्षण कर रहा है। (ऋ० ४।५।१०।३)

वायु और सूर्यलोक, अन्य सब लोकों के साथ, परस्पर आकर्षण और अनुकर्षण गुणों के साथ वर्तमान हैं। सूर्यलोक रसादि पदार्थों को मर्त्यलोक में प्रवेश करता और सब लोकों को व्यवस्था से अपने-अपने स्थान में रखता है। अभिप्राय यह है कि दिन-रात अर्थात् सब समय में सब लोकों के साथ सूर्यलोक का और सूर्य आदि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण हो रहा है। इन सब लोकों में ईश्वर ही की रचना से अपना-अपना आकर्षण हो रहा है। परमेश्वर की तो आकर्षणरूप शक्ति अनन्त है। (यजु० ३३।४३)

४. प्रकाश्य और प्रकाशक लोक

लोक दो प्रकार के हैं एक प्रकाश्य जो कि प्रकाशित किये जाते हैं, दूसरे प्रकाशक जो कि प्रकाश करते हैं। सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा

प्रकाशित होता है। चन्द्रमा में जो प्रकाश है वह सूर्यलोक से प्राप्त है। सूर्य से ही चन्द्रमा और पृथिवी आदि लोक प्रकाशित हो रहे हैं। आदित्य की किरण चन्द्रमा के साथ युक्त होकर, उससे उलटकर, भूमि को प्राप्त होती है, तभी चन्द्रमा शीतल भी होता है। जैसे स्वच्छ जल में या स्वच्छ दर्पण में सूर्य का प्रतिबिम्ब चमकता है वैसे ही चन्द्रमा में सूर्य का प्रतिबिम्ब चमकता है।

(अथर्व० कां० १४, मं० १-२; यजु० अ० २३, मं० ९, १०)

सूर्य अकेला विचरता और अपनी ही कील पर घूमता है।

(यजु० २३।९, १०)

५. नौका, विमान आदि यान

जो कोई लड़का लोहा आदि पदार्थों से, अनेक प्रकार की कलायुक्त नौकाओं को रचकर, उनमें अग्नि, वायु और जल आदि का यथावत् उपयोग कर और उनमें व्यवहार योग्य पदार्थों को भरकर व्यापार के लिए समुद्र और नद आदि में जावे-आवे तो उसके धन-सम्पत् की उन्नति होती है। समुद्र में सुख से जाने-आने के लिए अत्यन्त उत्तम नौकाएँ चाहियें। व्यवहारी और राजपुरुष लोग इन यानों से समुद्र में जावें-आवें। आकाश में आने-जाने की क्रिया को भी इनसे सिद्ध करें, इन्हें विमान कहते हैं। ये ऐसे चिकने होने चाहियें कि ये जल से न गलने पायें। ये यान तीन प्रकार के होने चाहियें, भूमि पर चलनेवाले, आकाश में उड़नेवाले तथा समुद्र में चलनेवाले। जिन पुरुषों को विमान आदि यानों की सिद्धि की इच्छा हो वे वायु, अग्नि और जल से उनको सिद्ध करें। तीन दिन-रात में सागर, आकाश और भूमि के पार, नौका, विमान और रथों द्वारा सुखपूर्वक जाने में समर्थ हों। उनके अग्नि के ६ घर बनाने चाहियें तथा शीघ्र गमन के लिए उनमें ६ यन्त्र होने चाहियें। (ऋ० १।८।८।३, ४)

नौका आदि यानों में सैकड़ों अरित्र अर्थात् लोह आदि के बने कलायन्त्र और लङ्गर आदि होने चाहियें, जिनसे कि जल की थाह ली जा सके, उचित स्थानों पर उन्हें थामा जा सके और वायु आदि विघ्नों से उनकी रक्षा की जा सके। ये तीन सुदृढ़ चक्रोंवाले हों। उनमें तीन खम्भे बनाने चाहियें जिनके आधार पर सब कलायन्त्र लगे रहें। ये खम्भे भी दूसरे काष्ठ वा लोहे के साथ लगे रहें। नाभि के समान मध्यकाष्ठ में सब कलायन्त्र जुड़े रहने चाहियें।

(ऋ० १।८।८, ९।५, १; ऋ० १।३।४।२)

ये विमान आदि ऐसे हों कि पृथिवी, जल, और आकाश में इन द्वारा प्रतिदिन जाना-आना हो सके। इनका निर्माण तीन धातुओं से

होना चाहिये। लोहा, तांबा और चाँदी से। नगर तथा ग्राम की गलियों में ये यान झटपट जा-आ सकें, तथा दूर-दूर के देशों में भी उनसे शीघ्र जाना-आना हो सके। मन के वेग के समान शीघ्रगमन करनेवाले यानों से प्रतिदिन सब भूगोल के बीच जावें-आवें। वाष्प से चलाने के लिए इनमें एक-एक जलाशय बनावें। (ऋ० १।३।५।१)

कुशल कारीगरों द्वारा ये विमान बनवाने चाहियें। अग्नि आदि शक्तियाँ, जल से प्राप्त वाष्प को लेकर, इन सुदृढ़ विमानों को आकाश में उड़ा ले जाती हैं। इनमें एक चक्र चाहिये जिसके घुमाने से सब कलाएँ घूमें। इनमें तीन चक्र और रचने चाहियें जिनमें से एक के चलाने से सब कलाएँ रुक जायँ, दूसरे के चलाने से विमान आगे चलें और तीसरे के चलाने से विमान पीछे की ओर चलें। विमान के अंग-प्रत्यङ्ग को परस्पर सुदृढ़ जुड़े रहने के लिए इनमें सैकड़ों पेच लगाने चाहियें। इनमें ६० कलायन्त्र रचने चाहियें, कई एक चलते रहें और कुछ बन्द रहें, अर्थात् जब विमान को ऊपर चढ़ाना हो तो भाप-घर के ऊपर के मुख बन्द रखने चाहियें, जब ऊपर से नीचे उतारना हो तब ऊपर के मुख अनुमान से खोल देने चाहियें, जब पूर्व को चलाना हो तब पूर्व के बन्द करके पश्चिम के खोलने चाहियें और जब पश्चिम को चलाना हो तब पश्चिम के बन्द करके पूर्व के खोलने चाहियें।
(ऋ० १।३।३४।२; ऋ० २।३।२३।१-२)

वैद्यक विद्या

परमेश्वर ने प्राण, जल आदि पदार्थ तथा सोमलता आदि ओषधियाँ हमारे सुख के लिए रची हैं। जो मनुष्य धर्मात्मा और पथ्य के करनेवाले हैं उनको परमेश्वर के रचे सब पदार्थ सुख देनेवाले होते हैं, और जो कुपथ्य करनेवाले तथा पापी हैं उनके लिए परमेश्वर के रचे पदार्थ सदा दुःख देनेवाले होते हैं।

प्रश्नोत्तर विषय

वेदों के चार विभाग क्यों ?

भिन्न-भिन्न विद्या जानने के लिए वेदों के चार विभाग किये गये हैं। ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया गया है ताकि उन पदार्थों से उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त हो सके। ज्ञान के पश्चात् ही कर्म में प्रवृत्ति होती है, पूर्व नहीं। इसलिए ऋग्वेद की गणना प्रथम की गई है।

यजुर्वेद में कर्मकाण्ड का विधान है। ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति कर्म के लिए होती है। जैसे ऋग्वेद में पदार्थों के गुणों का वर्णन किया है वैसा ही यजुर्वेद में संसार के व्यवहारी पदार्थों से उपयोग सिद्ध करना होता है जिससे लोगों को नाना प्रकार का सुख प्राप्त हो सके। क्योंकि जब तक कोई कर्म ज्ञानपूर्वक न किया जाय तब तक उसका अच्छी प्रकार भेद नहीं खुल सकता। इसलिए जैसा जानना वैसा ही करना भी चाहिए तभी ज्ञान से फल होता है।

सामवेद में ज्ञान और कर्म का अन्तिम फल जो कि उपासनाविधिपूर्वक आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति है उसका वर्णन हुआ है।

तथा तीन वेदों में जो-जो विद्याएँ हैं उन सबके शेष भाग की पूर्त्ति, सब विद्याओं की रक्षा और संशयों की निवृत्ति अथर्ववेद में की गई है। अर्थात् ज्ञानकाण्ड के लिए ऋग्वेद, कर्मकाण्ड के लिए यजुर्वेद, इनकी उन्नति और उपासनाकाण्ड के लिए सामवेद और शेष विद्याओं की पूर्त्ति तथा संशयों के छेद के लिए अथर्ववेद की प्रथम, दूसरी, तीसरी और चौथी करके संख्या बाँधी है।

मन्त्रों के पुनः पुनः पाठ क्यों ?

कितने ही मन्त्रों का चारों वेदों में पाठ किया गया है। वहाँ प्रकरणभेद के कारण उन मन्त्रों में कुछ-कुछ अर्थभेद हो जाता है, इसलिए कितने ही मन्त्रों का पाठ चारों वेदों में किया गया है।

प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषिनाम क्यों ?

परमेश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका, तभी से प्राचीन ऋषि, वेदमन्त्रों के अर्थों का विचार करने लगे। फिर उनमें से जिस-जिस मन्त्र का अर्थ जिस-जिस ऋषि ने प्रकाशित किया उस-उस ऋषि का नाम उसी-उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिए लिखा गया है। इसी कारण से उस-उस व्यक्ति का 'ऋषि' नाम भी हुआ है। ऋषियों ने परमेश्वर के ध्यान और अनुग्रह से बड़े-बड़े प्रयत्न के साथ वेदमन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानकर सब मनुष्यों के लिए पूर्ण उपकार किया है। इसलिए विद्वान् लोग उनका नाम स्मरण करते हैं।

कतिपय पारिभाषिक शब्द

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के "ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय" तथा "भाष्यकरणशङ्का-समाधानादि विषय"—इन प्रकरणों में वेदार्थोपयोगी कतिपय पारिभाषिक शब्दों के सत्यार्थ पर प्रकाश डाला है। उनमें से कतिपय उपयोगी पारिभाषिक शब्दों के सत्यार्थ यहाँ लिखे जाते हैं।

(१) **अश्वमेध**—राष्ट्रमश्वमेध: अर्थात् राष्ट्र को अश्वमेध कहते हैं। क्योंकि अश्व समान बलवान् राजा ही राष्ट्र-यज्ञ को रचा सकता है, मेध का अर्थ है यज्ञ। राष्ट्ररक्षा और राज्यपालन को यज्ञकर्म समझकर राष्ट्र का उत्तम शासन करना चाहिए।

(२) **अहल्या**—यह नाम रात्रि का है। अहनि लीयते इति। दिन में रात्रि लीन हो जाती है, छिप जाती है। इसलिए रात्रि को अहल्या कहते हैं।

(३) **इन्द्र**—यह नाम सूर्य का है। इन्द्र का यौगिक अर्थ है "परमैश्वर्य वाला"। पृथिवीस्थ सब ऐश्वर्य, सूर्य की शक्ति के कारण से हैं। अतः सूर्य परमैश्वर्य वाला होने से इन्द्र है।

(४) **ऋषि**—इस शब्द के अर्थ निम्नलिखित हैं :—मन्त्रार्थों के द्रष्टा मनुष्य, मन्त्र, प्राण, तर्क।

(५) **कश्यप**—सकल जगत् को अपने ज्ञान से देखने के कारण परमेश्वर को कश्यप कहते हैं। पश्यतीति पश्यकः, पश्यक एव कश्यपः। पश्यक शब्द के आदि और अन्त के वर्णों का विपर्यास हुआ है।

(६) **कूर्म**—यह भी नाम परमेश्वर का है। करोति इदं सकलं जगत् इति कूर्मः। परमेश्वर इस सब जगत् का कर्त्ता है, रचयिता है इसलिए वह कूर्म है।

(७) **गणपति**—गण अर्थात् गणनीय पदार्थों का पति अर्थात् पालक परमेश्वर।

(८) **गयाश्राद्ध**—गय का अर्थ है "प्राण" प्राणों में या प्राणायाम द्वारा श्रद्धापूर्वक परमेश्वर की उपासना करना गया श्राद्ध कहलाता है। इससे जीव की मुक्ति हो जाती है। परमेश्वर प्राणों का प्राण है। अतः प्राणों में परमेश्वर का श्रद्धापूर्वक ध्यान कर उस में मग्न हो जाना "गयाश्राद्ध" करना है। गय का अर्थ 'सन्तान' भी है। सन्तानों का पालन तथा उनकी सुशिक्षा भी श्रद्धापूर्वक होनी चाहिए। इस प्रकार सन्तान-पालन और उनकी सुशिक्षा भी "गयाश्राद्ध" है। इसी प्रकार गृहस्थ में रहकर माता, पिता, आचार्य, अतिथियों और मान्यों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना भी गयाश्राद्ध है। इन गयाश्राद्धों के करने से विष्णुपद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्राणा वै गयाः (श० ब्रा० १४। ८। ५। ६-७) गय इति अपत्यनामसु। (पठितम् निघं० २। २)

(९) **गंगा, यमुना, सरस्वती**—ऋग्वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती ये नाम आए हैं। परन्तु ऋग्वेद में ये नाम भारत की नदियों के नहीं हैं। अपितु ये नाम इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाम वाली

नाड़ियों के हैं, जो नाड़ियाँ कि शरीर में हैं। इन नाड़ियों में योगाभ्यासपूर्वक परमेश्वर की उपासनारूपी स्नान से मनुष्य सब दुःखों से तर जाते हैं, इसलिए इन नाड़ियों को तीर्थ भी कहते हैं। नासिका के दाहिनी ओर इडा का स्थान है और बाईं ओर पिंगला का। इडा का वर्ण श्वेत है और पिंगला का पीला है। ये दोनों नाड़ियाँ जहाँ परस्पर मिलती हैं उसे सुषुम्णा कहते हैं, उस स्थान में योगाभ्यास द्वारा ईश्वर की उपासना-रूपी स्नान करके जीव शुद्ध हो जाते हैं। फिर शुद्धरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहते हैं।

(१०) **गोतम**—यह नाम चन्द्रमा का है। गच्छतीति गौः अतिशयेन गौरिति गोतमः, चन्द्रः। अर्थात् गौ का अर्थ है "गति वाला" अतिशय गति वाला होने से चन्द्रमा को गोतम कहते हैं।

(११) **जमदग्नि**—चक्षु का नाम 'जमदग्नि' है। चक्षुर्वै जमः दग्निर्ऋषिः, यदनेन जगत् पश्यति अथो मनु-ते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः। (श० ब्रा० ८। १)

(१२) **तीर्थ**—उनका नाम तीर्थ है जिनसे कि जीव दुःखरूप सागर को तरकर सुख को प्राप्त हो। वे तीर्थ निम्नलिखित हैं। यथा—

(क) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त किसी यज्ञ की समाप्ति करके जो स्नान किया जाता है उसे तीर्थ कहते हैं।

(ख) वेदादि सत्य शास्त्रों का नाम तीर्थ है, जिनके पढ़ने-पढ़ाने से और उनमें कहे हुए मार्गों में चलने से मनुष्य लोग दुःख-समुद्र को तरकर सुखों को प्राप्त होते हैं।

(ग) वेदादि शास्त्रों को पढ़ाने वाले आचार्य का, वेदादि शास्त्रों का, तथा माता-पिता और अतिथि का नाम तीर्थ है। क्योंकि इनकी सेवा तथा सदुपदेशों से जीवात्मा शुद्ध होकर दुःखों से पार हो जाता है।

(घ) विद्यास्नातक, व्रतस्नातक, तथा विद्याव्रतस्नातक ये तीन स्नातक भी तीर्थ कहलाते हैं। विना ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त किये परन्तु पूर्ण विद्या को समाप्त कर केवल विद्यातीर्थ में स्नान करनेवाला 'विद्यास्नातक' कहलाता है। ब्रह्मचर्याश्रम को नियमपूर्वक समाप्त करके परन्तु पूर्ण विद्या को विना समाप्त किये केवल व्रततीर्थ में स्नान करने वाला 'व्रतस्नातक' कहलाता है। तथा ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्णरूप से समाप्त कर तथा साथ ही विद्या को भी पूर्णरूप से

समाप्त कर व्रत और विद्या दोनों में स्नान करनेवाला 'विद्याव्रतस्नातक' कहलाता है।

(ङ) दुःख-सागर से तरानेवाले पूर्वोक्त तीर्थों की जो आत्मा है वह परमेश्वर परमतीर्थ है, क्योंकि वह अपने भक्त धर्मात्माओं को शीघ्र ही तरा देता है। जल और किसी विशेष स्थान को तीर्थ नहीं कह सकते क्योंकि जल और किसी विशेष स्थान में तराने की शक्ति नहीं है। जल को तो नौका द्वारा तरा जाता है और विशेष स्थान को पैरों द्वारा।

(१३) **त्वष्टा**—यह नाम भी सूर्य का है। त्वष्टा का अर्थ है सूक्ष्म करनेवाला। सूर्य अपनी गरमी के द्वारा पृथिवीस्थ जलों को सूक्ष्म कर भापरूप कर देता है। वही भाप आकाश में जाकर मेघरूप हो जाती है। इसलिए मेघ को त्वष्टा का पुत्र कहते हैं। मेघोत्पादक होने से सूर्य त्वष्टा है, और मेघ के साथ युद्धकर उसे बरसा देने के कारण सूर्य का नाम इन्द्र भी है।

(१४) **देवतायतन तथा देवताभ्यर्चन**—विद्वान् मनुष्यों का नाम देव या देवता है। जिन स्थानों में विद्वान् लोग पढ़ते-पढ़ाते हैं, और निवास करते हैं उन्हें देवतायतन कहते हैं। वहाँ जाना, बैठना, और उन लोगों का सत्कार करना देवाभ्यर्चन है।

(१५) **देवासुर-संग्राम**—

(क) देवासुर-संग्राम का अभिप्राय है "देवों और असुरों में युद्ध"। देवासुर-संग्राम का वर्णन वैदिक साहित्य में आता है। यह प्राकृतिक दृश्य का ही वर्णन है। देव का अर्थ है दिव्यगुणों वाला सूर्य और असुरों का अर्थ है प्राणदाता मेघ (असु=प्राण; रा-दान)।

(ख) विद्वान्, सत्यवादी, सद्विचारक तथा सत्कर्मा लोगों को देव कहते हैं, क्योंकि ये लोग इन दिव्य गुणों को धारण करनेवाले हैं। इसी प्रकार अविद्वान्, असत्यभाषी, असत्य-विचारी, मिथ्याचारी और अपने प्राणों के पोषण में तत्पर लोगों को असुर कहते हैं, क्योंकि ये लोग अपने प्राणों के पोषण में तत्पर हुए जीवन के ऊँचे विचारों से पराङ्मुख रहते हैं। इन देवों और असुरों का परस्पर विरोध रहना यही देवासुर-संग्राम है।

(ग) मनुष्य का मन और ज्ञानेन्द्रियाँ भी देव हैं। इनमें मन राजा है और ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी सेना है। सब प्राणों का

नाम असुर है। इनमें मुख्य प्राण राजा है और अपान आदि उसकी सेना है। मन में विज्ञान के बढ़ने से प्राणों का पराजय होता है, और प्राणशक्तियों के बढ़ जाने से मन का पराजय होता है। अतः परस्पर विरोध रूप यह युद्ध भी हुआ करता है।

(घ) दिन देव है और रात्रि असुर है। इनमें भी परस्पर विरोध चल रहा है।

(ङ) शुक्लपक्ष का नाम देव और कृष्णपक्ष असुर है।

(च) उत्तरायण का नाम देव और दक्षिणायन का नाम असुर है।

ऊपर दिये सब दृष्टान्त देवासुर-संग्राम के यथार्थ स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं।

(१६) **पस, गभ**—स्वेच्छाचारी राजा का नाम "पस" है, और प्रजा का नाम "गभ" है।

(१७) **प्रजापति**—यह नाम सूर्य का है, क्योंकि सूर्य सब प्रजा की रक्षा करता है। ओषधियों, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य आदि सब प्रजा की रक्षा, सूर्य अपने प्रकाश तथा ताप द्वारा तथा वृष्टिजल के प्रदान द्वारा कर रहा है। इसलिए सूर्य को प्रजापति कहते हैं (प्रजा+पति=रक्षक)।

(१८) **प्रतिमा**—वेदों में प्रतिमा शब्द आता है। परन्तु वेदों में इसका अर्थ पत्थर आदि की बनी मूर्ति नहीं है, अपितु प्रतिमा का अर्थ है परिमाण या नाप-तोल। परमेश्वर की प्रतिमा नहीं, इसका अभिप्राय है कि परमेश्वर का परिमाण या नाप-तोल नहीं है, अर्थात् वह असीम है, सीमारहित है।

(१९) **यव, हरिण**—प्रजा का नाम यव है, और स्वेच्छाचारी राजा का नाम हरिण है। जैसे हरिण पराये खेत में यवों को खाकर आनन्दित होते हैं, वैसे स्वेच्छाचारी राजा प्रजा के उत्तम पदार्थों को हथियाकर सुख भोगते हैं।

(२०) **विष्णुपद**—व्यापक परमेश्वर जो सब जगत् का कर्त्ता है उसका नाम विष्णु है (विष्लृ व्याप्तौ)। प्रकृति और परमाणु इस विष्णु के पाद हैं। इन पादों द्वारा परमेश्वर सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापित करके उनका धारण कर रहा है।

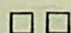
(२१) **वृत्रासुर**—यह नाम मेघ का है। मेघ को "वृत्र" इसलिए कहा कि यह फैलकर आकाश तथा सूर्य पर आवरण डाल देता है (वृ=आवरण+त्र=त्राण, रक्षक), और अन्त में वर्षा द्वारा

हमारा त्राण करता है। मेघ को "असुर" भी कहते हैं। इसका अर्थ है प्राणदाता (असु=प्राण, रा=देना)। मेघ प्राणों को देता है। विना मेघों के जल प्राप्त नहीं होता, और विना जल के प्राणों का बने रहना असम्भव है। कभी मेघ सूर्य को ढाँप देते और कभी सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है। यही सूर्य और वृत्रासुर का परस्पर युद्ध है। सूर्य का नाम इन्द्र भी है, अतः इस युद्ध को इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध भी कहते हैं।

(२२) **वेद**—वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये ज्ञान के भण्डार हैं इसलिए इन्हें वेद कहते हैं (विद् ज्ञाने)। वेदों के अन्य नाम भी हैं, यथा—श्रुति, आगम, निगम, मन्त्र, छन्द। वेद नित्य हैं। इन्हें सदा गुरु-परम्परा से सुनते-सुनाते चले आए हैं, इसलिए इन्हें श्रुति कहते हैं (श्रु=श्रवणे)। ये निश्चित अर्थात् यथार्थ ज्ञान के साधन हैं। इसलिए इन्हें निगम कहते हैं (निगच्छन्ति नितरां जानन्ति प्राप्नुवन्ति वा सर्वा विद्या यस्मिन् सः)। आगम के अर्थ को भी निगम के अर्थ की भाँति समझना चाहिये। इनमें गुप्त अर्थात् रहस्यमय पदार्थों का वर्णन है। इसलिए इन्हें मन्त्र कहते हैं (मत्रि गुप्तपरिभाषणे, मन ज्ञाने)। अविद्या दुःखों के निवारण करने से तथा सुखों द्वारा आच्छादन करने से इन्हें छन्द कहते हैं (छदि अप वारणे)। तथा वेदाध्ययन द्वारा सब विद्याओं की प्राप्ति से मनुष्य आह्लादित होता है इसलिए भी इन्हें छन्द कहते हैं (चदि आह्लादने दीप्तौ च)।

(२३) **शकुन्तिका**—प्रजा का नाम शकुन्तिका है, अर्थात् छोटी चिड़िया। क्योंकि जैसे बाज के सामने छोटी-छोटी चिड़ियों की दुर्दशा होती है वैसे ही जहाँ एक मनुष्य राजा होता है वहाँ राजा के सामने प्रजा की दुर्दशा होती है। इसलिए प्रजा शकुन्तिका है।

(२४) **हिरण्यगर्भः**—हिरण्य का अर्थ है विज्ञान, मोक्ष, जीवात्मा, प्रकाशस्वरूप सूर्यादि लोक, यश, कीर्ति—ये जिसके गर्भ अर्थात् सामर्थ्य में रहकर कार्य करते हैं वह हिरण्यगर्भ परमेश्वर है।



स्वर्गीय नित्यानन्द पटेल कृत

'पूर्व और पश्चिम'

के विषय में

दो आदरणीय मनस्वियों की सम्मतियाँ

हमारा राष्ट्र आज जब संक्रमणकाल में से गुज़र रहा है, तब-हमारा देश क्या था, हमारी संस्कृति क्या थी और आज हम कहाँ हैं, इन सब बातों का विश्लेषण करके हमें अपना मार्ग निश्चित करना है। इस दृष्टि से पूर्व-पश्चिम की संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक कार्य है।

'पूर्व और पश्चिम' में लेखक ने ऐसा विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है और प्रामाणिकता से अपना अभिप्राय व्यक्त किया है। प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से पाठकों को विशेष विचार करने के लिए बहुत-सी सामग्री मिल सकेगी। इसी में लेखक के उद्देश्य की पूर्ति होती है, ऐसा मैं मानता हूँ।

श्री मोरारजी देसाई
(प्रधान मंत्री, भारत सरकार)

"प्राचीन ऋषियों के पुनीत आदर्शों तथा पश्चिमी लोगों के उत्तम आचरण में ठीक-ठीक मेल बैठाकर नवीन भारत की रचना करना—यही देश के समक्ष मुख्य प्रश्न है, जिसे 'पूर्व और पश्चिम' में सुन्दर और संयुक्तिक ढंग से सुलझाया गया है।

निबन्ध धारावाहिनी, प्रांजल भाषा में सुगुम्फित है और ध्यान से पढ़ने योग्य है। विषय की व्यापकता और शैली की प्राणवत्ता के कारण उपर्युक्त कृति से हिन्दी साहित्य सचमुच समृद्ध हुआ है।"

—आचार्य विश्वबन्धु
(सदस्य, केन्द्रीय संस्कृत परिषद्)

सजिल्द पुस्तक मूल्य ७.५०

प्रो० नित्यानन्द विद्यालंकार की अन्य पुस्तकें

जीवन की राहें	४·००
सन्ध्या विनय	२.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति ।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है ।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव शौर मानवता	१०.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	२.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश १५.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कारविधि ,, ४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,, १०.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, २.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहारभानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** २.००
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे(छोटा) ,, ४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,, ६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०
बाल शिक्षा ०.६०
उपनिषद् प्रकाश १२.००
वैशेषिक दर्शन ८.००
न्याय दर्शन ६.००
सांख्य दर्शन ५.००

बालोपयोगी

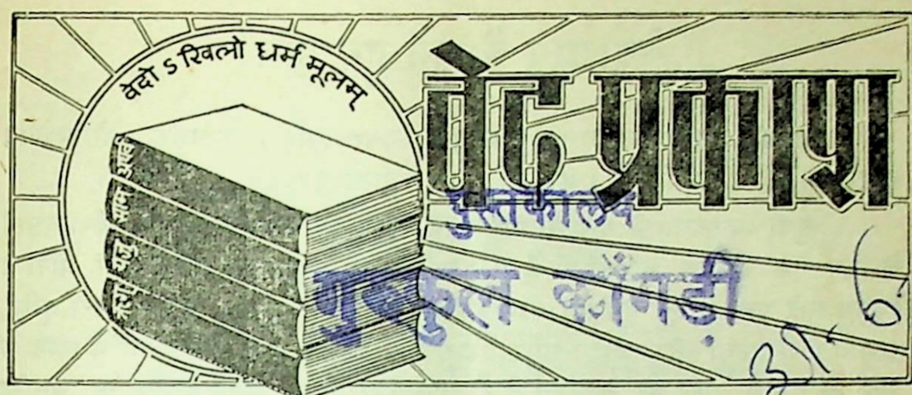
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००
नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.००
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा नवम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



वेद-आज्ञा

युक्त आहार-विहार

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् ।
हव्या जुह्वान आसनि ।। ऋ० १ । ७५ । १ ।।

पदार्थः—हे विद्वन् ! (आसनि) अपने मुख में (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (जुह्वानः) खानेवाले आप जो विद्वानों का (सप्रथस्तमम्) अति विस्तारयुक्त (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा (वचः) वचन है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन करो ।

भावार्थः—जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजन-पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं ।

हमारा भोजन

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्द्रवः ।। ऋ० ३ । ४० । ५ ।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) पूर्ण अवस्था की कामना करनेवाले जो (तव) आपके (द्युक्षास) प्रकाश में रहने (इन्द्रवः) और स्नेह करने-वाले होवें उनके समीप से (वरेण्यम्) भोग करने योग्य (सुतम्) उत्तम प्रकार बनाया (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त अन्न को (जठरे) उत्पन्न हो सुख जिसमें उस पेट में आप (दधिष्व) धरो ।

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिए कि जो बुद्धि, अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ११] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जून, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

परमात्मा क्या है ?

वेदान्त-दर्शन आर्य सभ्यता तथा ऋषिमुनियों की प्रतिभा और तपस्या की परमोत्तम विभूति है। उस परम-तत्त्व का, जिसे परमात्मा, परब्रह्म परमेश्वर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं, जैसा विशुद्ध विवेचन वेदान्त-दर्शन में है, वैसा संसार के किसी भी अन्य दर्शन या ग्रन्थ में नहीं है। वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद्, गीता आदि अनेक ग्रन्थ हैं, इन ग्रन्थों में परमात्मा अथवा परब्रह्म के स्वरूप का जैसा सुन्दर, स्पष्ट, सरल और सरस वर्णन वह अपने ढंग का बिलकुल अनोखा है। परब्रह्म परमातमा का निम्नलिखित विवेचन इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर है, जिसे ब्रह्म के जिज्ञासुओं और आध्यात्मिक ज्ञान के पिपासुओं की सेवा में समर्पित किया जाता है।

ब्रह्म क्या है ?

ब्रह्म वह परम-तत्त्व है, जिसमें सब कुछ है, जो सब ओर है, जिससे जगत् के सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जिसमें सब पदार्थ वर्तमान रहते हैं, जिसमें सब लीन हो जाते हैं और जो सब स्थानों, सब कालों और सब वस्तुओं में विद्यमान है। ब्रह्म वह ज्ञान-स्वरूप तत्त्व है, जिससे ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय का; द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्य का; और कर्ता, हेतु, तथा क्रिया का उदय होता है, ब्रह्म वह सत्, चित् और आनन्द-मय तत्त्व है जिससे पृथ्वी और स्वर्ग में आनन्द की वर्षा होती है। ब्रह्म केवल ज्ञानियों के अनुभव में ही आ सकता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अवर्णनीय अनभि-व्यक्त, अप्रगट और इन्द्रियों से परे है। उसका कोई चिह्न नहीं है और वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा जाना नहीं जा सकता। वह वाद-विवाद से भी जाना नहीं जा सकता।

मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि वह ब्रह्म सत्य, तपस्या, सम्यक्ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य से ही जाना जा सकता है। जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है तो मनुष्य उसे अपने हृदय में प्रकाशमान ज्योति की तरह अनुभव करने लगता है :—

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥"

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी यही कहा है :—

**तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥**

अर्थात् जिस प्रकार तिल में तेल, दही में घृत, नदी में जल और यज्ञकाष्ठ में अग्नि रहती है उसी प्रकार वह ब्रह्म सब प्राणियों की आत्मा में निवास करता है। उसे मनुष्य सत्य और तप से प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म न है और न नहीं है

जैसा कि हम ब्रह्म के सम्बन्ध में यह नहीं कह सकते कि वह नहीं है, वैसे ही हम उसके सम्बन्ध में यह भी नहीं कह सकते कि वह है। यह परमतत्त्व वह है जिसमें कि सत्ता और असत्ता दोनों भावों का समावेश है। न वह सत् है न असत्, न दोनों के बीच की स्थिति। न वह है और न नहीं है। उसको किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते। शून्य और अशून्य सापेक्षक शब्द है। जिसको शून्य नहीं कह सकते उसके सम्बन्ध में शून्यता और अशून्यता का भला क्या विचार? भला वह तत्त्व शून्य कैसे कहा जा सकता है, जिसमें सारा जगत् इस प्रकार मौजूद रहता है जैसे कि जल में तरंग और मिट्टी में घड़ा। भला उस तत्त्व को शून्य कैसे कहें जिसके भीतर तमाम विश्व इस प्रकार वर्तमान है जैसे लकड़ी के टुकड़े के भीतर उससे बनाई जाने वाली वस्तुएँ? लेकिन [हमारे दृष्टिकोण से वह शान्त और अजरतत्त्व, जिसमें कि सारी सृष्टि वर्तमान है, आकाश से भी अधिक शून्य और सूक्ष्म है। इसलिए उसे हम शून्य से भी शून्य कह सकते हैं।

ब्रह्म का शाब्दिक वर्णन

यद्यपि ब्रह्म का किसी प्रकार भी वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता, तब भी हम उसका शाब्दिक वर्णन यदि करना चाहें तो यह कह सकते हैं कि छोटे से छोटे परमाणु के हजारवें भाग के भीतर जो चिन्मात्र सत्ता वर्तमान है वही ब्रह्म है। वह सत्ता न तो दिखाई देती है और न वर्णन की जा सकती है। न वह समीप है और न दूर। शुद्ध आत्मा का चित् रूप केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। वह सब कुछ है। वह सब का आत्मा है और सब से रहित भी है। वह सब भूतों का आत्मा, शून्य और सत् तथा असत् दोनों ही है। वह न वायु है, न आकाश है, न बुद्धि है, न शून्य है।

वह कुछ नहीं है, तो भी सबका आत्मा है। वह कोई ऐसा पदार्थ है जो आकाश से भी सूक्ष्म है। न वह काल है, न वह मन है, न वह आत्मा है, न वह सत्ता है, न असत्ता, न देश, न दिशाएँ, और न वह ज्ञान है और न अन्य पदार्थ। वह संवेद्य रहित संवित् है, चैत्य रहित चिति है, वह संसार की पराकाष्ठा है, वह सब दृष्टियों की सर्वोत्तम दृष्टि है, वह सब महिमाओं की महिमा है, और सब गुरुओं का गुरु है। वह सब प्राणी रूप मोतियों का तागा है, जो उनके हृदय रूपी छेदों में पिरोया हुआ है। वह सब प्राणीरूपी मिर्चों की तीक्ष्णता है। वह पदार्थ का पदार्थत्व है, वह सर्वोत्तम तत्त्व है। वह वर्तमान वस्तुओं की सत्ता है और स्वयं सत्ता और असत्ता दोनों है। वह सब जगह, सब वस्तुओं से युक्त तथा सर्व भावों से मुक्त है। सब ओर उसके हाथ और पैर हैं। सब ओर उसके सिर और मुख हैं। सब ओर उसके कान हैं। संसार की सब वस्तुओं को घेर कर वह स्थित है।

गीता में भी श्रीभगवान् ने कहा है :—

"सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥"

वह इन्द्रियों द्वारा जाने जानेवाले सब गुणों से रहित है और उनसे युक्त भी है। वह सब का भरण करने वाला किन्तु असक्त है। सब गुणों का भोगने वाला, किन्तु निर्गुण है। सब प्राणियों के भीतर और बाहर है। वह धर और अधर दोनों है। अति सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय (जानने योग्य नहीं) है। वह दूर भी है और समीप भी। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, भारी से भी भारी और अच्छे से भी अच्छा है। वह इतना बड़ा है कि उसके आगे सारा जगत् भी परमाणु के समान दिखाई पड़ता है, वरन् दिखाई भी नहीं पड़ता। वह इतना सूक्ष्म है कि उसके सामने सूक्ष्म आकाश-तत्त्व भी अणु की तुलना में महामेरु जैसा स्थूल मालूम पड़ता है। वह आत्मा है, वह विज्ञान है, वह शून्य है, वह परमब्रह्म है, वह श्रेय है, वह शिव है, वह विद्या है, और वही परम-स्थिति है। वह सबका अनुभव-रूप अन्तरात्मा है। शरीर में वह सदा चिन्मात्र रूप से स्थित है। वह जगत् रूपी तिल का तेल है, जगत् रूपी घर का दीपक है, जगत् रूपी वृक्ष का रस है, जगत् रूपी पशु का पालने वाला ग्वाला है। वह जगत् में वर्तमान् होते हुए भी नहीं है, वह शरीर में रहते हुए भी अत्यन्त दूर है, वह ऐसा प्रकाश है जिससे सूर्य का प्रकाश उत्पन्न होता है। उससे विष्णु आदि देवता ऐसे उत्पन्न हैं जैसे कि सूर्य से उसकी किरणें। उससे अनन्त जगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे कि समुद्र से बुलबुले। उसकी ओर तमाम दृश्य पदार्थ इस प्रकार जा रहे हैं जैसे कि महासमुद्र की ओर नदियाँ। वह सब पदार्थों और आत्माओं को दीपक की नाईं प्रकाशित करता है। वह आकाश में, शरीर में, पत्थरों में, लताओं में, घाटियों में, पहाड़ों में, हवाओं में और पाताल में वर्तमान है। उसने आकाश को शून्य बनाया, पहाड़ों को कठिन बनाया और जलों को बहनेवाला बनाया। उपनिषद् में भी कहा है कि पहाड़ और समुद्र, नदियाँ और पेड़-पौधे तथा रस पदार्थ सब उसी आदि ब्रह्म से उत्पन्न हैं—

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मा-
त्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा औषधयो रसाश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठन्ते ह्यन्तरात्मा ॥ मुण्डकोपनिषद्

सूर्य उसके वश में एक दीपक है। जैसे बादल से वर्षा की बूंदें गिरती हैं, वैसे ही उस अक्षय और पूर्ण अमृत से नाना प्रकार के असार संसारों के दृश्य उदय होते हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदियाँ दिखाई पड़ती हैं वैसे ही उसमें भी त्रिभुवन के उदय और अस्त रूपी लहरें उठा करती हैं। वह सब प्राणियों के भीतर रह कर उनका संहार करने वाला काल है। वह सर्व भावों में गुप्त रूप से वर्तमान रहता हुआ भी सब से अतिरिक्त है। वह हर एक के शरीररूपी पिटारी में चिति रूपी मणि के रूप में मौजूद है। उससे नानाप्रकार के जगत् ऐसे उदय होते रहते हैं, जैसे कि चन्द्रमा से उसकी किरणें। वह अनन्त, अजर, आदि, मध्य और अन्त रहित निरामय शिव है। सब समय और सब जगह वह बिना कान के सुनता है, बिना आँख के देखता है, बिना जिह्वा के स्वाद लेता है, बिना त्वचा के स्पर्श करता है, बिना नाक के सूंघता है। उसका कोई कारण नहीं है, जगत् उसका वैसा ही कार्य है जैसे कि तरंगें जल का। जैसे मशाल के घुमाने से उसमें चक्र दिखाई पड़ने लगता है और उसको स्थिर कर देने पर चक्र गायब हो जाता है, वैसे ही ब्रह्म में जब स्पन्दन होता है तब संसार की शोभा उदय हो जाती है और जब शान्ति हो जाती है तो जगत् का दृश्य लोप हो जाता है। उसका यह व्यापक, महान्, अक्षय और शुद्ध स्वभाव है कि जब उसमें स्पन्दन होता है, तो जगत् की सृष्टि हो जाती है और जब स्पन्दन की शान्ति होती है, तो जगत् का प्रलय हो जाता है। जैसे हवा की सत्ता सब जगह या तो शान्त रूप में है या चलते हुए रूप में, उसी प्रकार ब्रह्म अपने शान्त और स्पन्दयुक्त रूप से सर्वत्र वर्तमान् है; उन दोनों सत्ताओं में व्यवहार के कारण ही नाममात्र का भेद है, वास्तविक भेद नहीं है। ज्ञान का, प्रकाश का, दृश्य का और तम का जो अनादि ज्ञान रूप भाव है वही परमात्मा का रूप है। परब्रह्म वह तत्त्व है जो कुछ भी नहीं होता हुआ भी सदा सब कुछ है, जो यह या वह कुछ न होता हुआ भी सब ही है। परमात्मा वह पदार्थ है जो कल्पना से मुक्त, शान्त और प्रकाशमय सब का आत्मा है। जो अमूक होता हुआ भी मूक है, मनन करता हुआ भी पत्थर के तुल्य जड़ है, भोक्ता होने पर भी नित्य तृप्त है और कर्त्ता होने पर भी कुछ न करने वाला है। जो अंग-हीन होते हुए भी सब अंगों वाला और हजारों हाथ वाला है, जो किसी वस्तु में न रहते हुए भी सारे जगत् में व्याप्त है, जिसमें किसी इन्द्रिय की शक्ति नहीं रहते हुए भी सब इन्द्रियों की क्रियाएँ होती रहती हैं। जिसमें मनन न होते हुए भी मन की सब कल्पनाएँ होती रहती हैं। जैसे समुद्र से तरंगें, भँवर और लहरें उदय होती हैं वैसे ही उससे घट-पट आदि के आकार वाले अनेक पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे कटक, अंगद, केयूर और नूपुर आदि अनेक आभूषणों के रूप में सोना प्रकट होता है, वैसे ही वह भी सैंकड़ों पदार्थों के झूठे आकार में प्रकट हो रहा है। उससे ही काल की गति है, दृश्य

की दृश्यता है, मन की क्रिया है और उसी के प्रकाश से यह सब जगत् प्रकाशित हो रहा है। वह परमाणु से भी परे है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। आकाश के भीतरी भाग से भी शुद्ध, सूक्ष्म और शान्त है। उसके प्रकाश का न आदि है और न अन्त और न उसको प्रकाशित करने वाला कोई दूसरा पदार्थ है। उसका रूप आकाश के, शिला के और पवन के भीतर मौजूद है। वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परे होने के कारण अवर्णनीय है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह कोई बहुत उत्तम, सूक्ष्म, सर्वात्मक, शुद्ध, अनुभवमात्र तत्त्व है जो कि सब कुछ है। वह न सत् है, न असत् और न दोनों का मध्य। वह कुछ भी नहीं है, तो भी सब कुछ है। वह मन और वचन में आने वाली कोई वस्तु नहीं है। वह शून्य से शून्य है और सुख से भी अधिक सुखकर है। वह शुद्ध आनन्द-स्वरूप है।

ओ३म् तत् सत्



हृदय-रोग दूर करने के उपाय

अथर्ववेद के काण्ड एक अनुवाक ५ सूक्त २२ में चार मन्त्र हैं। जिनमें हृदय रोग दूर करने के उपाय ब्रह्मा ऋषि ने बताये है।

वे मन्त्र इस प्रकार हैं :—

ओ३म् अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥
ओ३म् परित्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुयत् ॥ २ ॥
ओ३म् या रोहिणी देंवत्याऽगावो या उत रोहिणीः।
रुपं रुपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥
ओ३म् शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रयेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

मन्त्रों के अनुसार हृदय रोग दूर करने के उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) उगते हुए सूर्य की किरणें ग्रहण की जावें। सूर्योदय से ५-६ मिनट पहिले उसकी सिन्दूरी लालिमा को देखते हुए सूर्योदय का इन्तजार करें एवं सूर्य की सर्वप्रथम किरण आप ही पर पड़े और जब सूर्य का सिन्दूरी रंग समाप्त हो जाये तो हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है इसके करीब सूर्योदय के बाद १० मिनट तक किरणों को ग्रहण करना चाहिये।

(२) लाल गाय का दूध पीवें अगर किसी कारणवश लाल गाय का दूध न मिल सके तो सफेद गाय का दूध इस्तेमाल करें और लाल गाय का दूध प्राप्त करने

का प्रयास करते रहें। यह भी ध्यान रहे कि हृदय-रोग में गाय की ही छाछ, गाय का ही दही और गाय का ही घी खाना चाहिये।

(३) हल्दी का प्रयोग :—प्रातः काल असली हल्दी का आधा तोला चूर्ण एक गिलास दूध में घोलकर लेवें। दूध इच्छानुसार एक दो गिलास ज्यादा भी ले सकते हैं जिन सज्जनों को कच्ची हल्दी मिल सके वे उसका शाक खायें एवं अचार भी बना लेवें।

(४) हरड़ का प्रयोग:—रोजाना रात को सोते समय आधा तोला हरड़ का चूर्ण फाँक कर एक गिलास दूध पीवें, दूध एक-दो गिलास ज्यादा भी ले सकते हैं। हरड़ बड़ी लें, एवं अगर हो सके तो पंसारी से रोहिणी किस्म की हरड़ लेवें। (नोट–हरड़ सात प्रकार की होती है:—(१) रोहिणी, (२) विजया, (३) पूतना, (४) अमृता (५) अभया, (६) जीवती, (७) चेतकी। साधारणतया बड़ी हरड़ किसी भी किस्म की हो उपयोग कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रयोग शास्त्रीय है और इसके लिए अथर्ववेद के भाष्यकर्त्ता सायणाचार्य, मैक्समूलर, जयदेव विद्यालंकार, सत्यदेव इत्यादि के भाष्य विचार किये गये हैं। एक-दो विद्वानों का यह भी विचार है कि तोता पालने से उस कमरे में हृदय रोग का दौरा नहीं होता, लेकिन यह विवादग्रस्त हैं।

ऊपर लिखी हुई मात्राएँ, अगर रोग की अधिकता हो तो, अधिक बढ़ाई जा सकती है। उपरोक्त प्रयोग अनुभूत है और आशा है पाठकगण लाभ उठावेंगे अगर किन्हीं को ज्यादा स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो तो वे कृपया पत्र द्वारा सम्पर्क कर सकते हैं।

पताः—
आर० सी० गोयल **रमेशचन्द्र**
सहायक निदेशक,
भूमि व भवन कर विभाग
सीकर (राजस्थान)

लेखक महोदय ने इस प्रयोग का स्वयं अनुभव किया है, जिससे उनका रोग सर्वथा नष्ट हो गया, और उन्होंने लगभग ९८ व्यक्तियों पर इसका प्रयोग किया है, जो सभी आरोग्य-लाभ कर चुके हैं। पाठकों को इससे लाभ उठाना चाहिये।

—सम्पादक



गुरू और शिष्य

वा० विष्णुदयाल

प्राचीन भारत में लोग आत्मा की खोज में निकला करते थे। शरीर को प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। जब कभी किसी कुरूप विद्वान् का निरादर किया जाता था तो निरादर करने वालों की समाज में इज्जत नहीं होती थी। शरीर की कीमत कितनी कम है यह तब मालूम होता है जब आदमी मुर्दा हो जाता है। मृत पशुओं के चमड़े से काम लिया जाता है जब कि मनुष्य की चमड़ी किसी भी काम के लायक नहीं रहती। पेड़ गिर जाय तो उसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है।

आर्यसमाज आत्मा की उपेक्षा करने को तैयार नहीं है। उसने प्राचीन भारत को आधुनिक भारत में स्थापित करने का संकल्प किया है। सौ साल हो गये, जब से उसके निर्माता ने वैदिक युगीन भारत की ओर हमें लौटाने के प्रयत्न करने का आरम्भ किया था।

आदर्श गुरू

उन्हें ठीक जिस समय किसी आदर्श गुरू की आवश्यकता पड़ी वे उन्हें मिल गये।

क्या स्वा० दयानन्द जैसे सुन्दर शरीरधारी ने नेत्रहीन गुरू पाकर उनके चरणों में बैठने से इंकार किया था ?

वे तत्क्षण गुरू के कृपाभाजन हो गये। प्राचीन युग में जब कोई गुरू अपने शिष्य से असंतुष्ट होते थे तो उन से पढ़ाये गये ग्रन्थों का ज्ञान लौटाने को कहते थे मानो शिष्य का शरीर वह गृह समझा जाता था जिसमें ज्ञान का निवास नहीं हो सकता था। दण्डी जी आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द से रुष्ट हुए न थे जब उन्होंने उन्हें पठित पुस्तकों को नदी में बहाने का आदेश दिया था। गुरू ने अथर्ववेद के इस मन्त्रांश के अनुसार आचरण किया था :

"एतत् (यह) मुख्य (वासः) वस्त्र तुझे अब (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, इस वस्त्र को (अप ऊह) छोड़ जो पहले तूने धारण किया है—पहला वस्त्र है अज्ञान, जो प्राप्त हुआ है वह है ज्ञान।"

नये गृह में आर्ष ग्रन्थ में पाये जाने वाला ज्ञान निवास करने लगा।

यदि मथुरा में शिष्य गुरू से न मिल कर उनसे कलकत्ते में मिलते आर्ष ग्रन्थ पढ़ने पर जो बल दिया गया था वह दिया न गया होता।

दण्डी जी को पढ़ाने का अनुभव हो गया था। कलकत्ते में अध्यापन कर चुके थे।

पढ़ना उनका व्यसन-सा हो गया था। वे किशोर थे जब कनखल में उनके गुरू स्वामी पूर्णानन्द ने चार साल लगाकर उन्हें अष्टाध्यायी नामक व्याकरण पढ़ाया। इस व्याकरण के ग्रन्थ का दण्डी जी ने साथ देना अन्तिम घड़ी तक न छोड़ा। जब वे स्वर्ग सिधारने लगे उसी तरह शिष्यगण रोने लगे ठीक जिस तरह महात्मा बुद्ध संसार को जब छोड़ने वाले थे उनके प्यारे शिष्य आनन्द रोने लगे थे। दण्डी जी ने शिष्य-मण्डली से कहा :

"रोने की क्या जरूरत है ? मैं अष्टाध्यायी में समा रहा हूँ। यह रहे तो समझना कि विरजानन्द जीवित है।"

शिष्य ने वही किया जो गुरू ने किया था। भारत में किताबों की कमी न थी। पुस्तकों के जंगल में पाठक खो जाया करते थे। सत्यार्थप्रकाश रचकर ऋषि दयानन्द ने हमें कहा कि यह अर्थात् अमुक-अमुक ग्रन्थ अपनाओ और शेष किताबों को पढ़कर जो अल्प-समय मिलता है उसे व्यर्थ न खोओ। उन्होंने भी कुछ पुस्तकों को त्यागने को कहा।

गुरू के समान वे व्याकरणी थे। शब्द के सच्चे अर्थ की ओर उन्होंने हमारा ध्यान खींचा।

शब्दों के अर्थ करने में विद्वान् गलती करते न थे। स्वामी जी ने जोरदार शब्दों में हमें कहा कि वेदों की ओर लौटो, उस जमाने को पुनर्जीवित करो जब लोग गलती से बचा करते थे।

स्वामी दयानन्द की सीटी

सत्यार्थप्रकाश की शती धूम-धाम से मॉरीशस में मनायी जा रही थी जब श्रोताओं को स्मरण कराया गया था कि चार सदी पहले यह द्वीप निर्जन था। भारतीय नाविक फल और मीठा जल लेने यहाँ आते थे। वे अपने साथ काक ले आया करते थे। रॉलिन्सन ने माना है कि यह पक्षी भारतीय नाविकों का साथ देता था। व्यापारी जहाज के आरोही थे। वे एक बार बेबिलोन गये थे जहाँ पक्षियों का अभाव था। उनके साथ एक कौआ था जिसे देखकर उस देश के निवासी गद्गद् हो गये। दूसरी बार वे एक मोर ले गये थे जो नृत्य करता था। अब उस देश के लोग काक पक्षी की उपेक्षा करने लगे ! यह जानने के लिए कि जहाज ज़मीन के निकट आया है कि नहीं; काक पक्षियों को छोड़ने की आदत थी।[1]

---

1. We hear of Indian merchants who took periodical voyages to the land of Baberu (Babylon) There were very few birds in that country, and on their first visit the merchants brought with them an Indian crow, which excited great admiration. But on

जब यह टापू आबाद हुआ, इसके प्रथम शासकों ने भारतीय कौए यहाँ के वनों में देखे थे। ये उन पक्षियों के वंशज थे जो भारतीय व्यापारी अपने साथ सर्वत्र ले जाया करते थे।

जो पक्षी सावधान रहा करते थे वे जहाज से उड़कर अति दूर जाते न थे। सीटी सुनते ही वे जहाज पर आया करते थे। सावधानी से काम न लेने वाले बहुत दूर पहुँचते थे और सीटी सुन ही नहीं पाते थे।

श्रोताओं को कहा जाता था, हम भी पक्षी हैं। वेदों में आत्मा को पक्षी कहा गया है। पक्षी की कथा विदेशों में सुनायी गई थी, पर मनोरञ्जनार्थ सुनायी गई कथा का एक अंग भूलकर लोग कहने लगे कि परमात्मा पिता हैं, आत्मा मनुष्य है और तीसरा जो पवित्रात्मा है कबूतर है। यह हमारे त्रैतवाद का बिगाड़ा गया रूप है। फिर भी इसमें पक्षी की चर्चा होती है।

जो हम में से सावधान होंगे वे सीटी सुनकर जहाँ लौटना चाहिए वहाँ लौट जायेंगे। स्वामी जी ने कहा, वैदिक काल में लौटना अभीष्ट है। वैदिक युग हम पक्षियों का जहाज है जिसमें रहकर लहरों का सामना कर सकेंगे, सुरक्षित रह पावेंगे।

स्वामी जी जोर-शोर से वेदों का आश्रय लेने का आग्रह अपने प्रवचनों तथा ग्रन्थों में किया करते थे। उस बलपूर्वक किये गये आग्रह की तुलना सीटी से की जा सकती है।

बीसवीं सदी में फिर सीटी बजी है। महात्मा गांधी ने वैदिक युग को महत्त्व देकर उसे इस युग में पुनर्जीवित करने की इच्छा उन शब्दों में व्यक्त न की जो ऋषि के शब्द थे।

वे विलायत में अपनी युवावस्था में रह चुके थे। जो उनमें प्रतिक्रिया हुई वह हमें इस मत के होने की इजाजत देती है कि ऋषि ने रोग का जो निदान किया था उसी का इन्होंने भी किया था।

महात्मा जी का कहना था कि पश्चिम की सभ्यता रोगग्रस्त है, नहीं-नहीं विष है। यह मानती[2] है कि वस्तु सबकुछ है, आत्मा का कोई स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति में भारत की संस्कृति नई मांग के अनुसार होनी चाहिए, यह उनकी धारणा थी। नई माँग है कि वस्तु से जो भिन्न है उसे पहचाना जाय।

---

a subsequent voyage they took a wonderful performing peacock, and the poor crow found himself quite eclipsed!

—Long ago merchants sailed far out of sight of the coast, taking "shore-sighting" birds, which were released from time to time, in order that they might guide the mariners to land.

—H. G. Rawlinson, *India and the Western World*

2. Gandhi realised that, in this age of fast changes and quick means of communication, India was busy with evoling a culture which should be worthy of her and able to meet the new challenges of the world...

ऋषि ने जो कहा, वह उस महापुरुष द्वारा दोहराया गया जो जगत में पूजे जाते थे।

धन को येन केन प्रकारेण जुटाना, यह वर्तमान युग के मानवों का उद्देश्य हो गया है। पश्चिम के अनेक चिन्तक यह देखते आ रहे हैं। वे अब चिन्तित हो उठे हैं।

महात्मा बुद्ध दुःख का निवारण करने में प्रयत्नशील थे। स्वा० दयानन्द तथा महात्मा गांधी ने दुःख से छुटकारा पाने के लिए वैदिक युग तथा रामायण युग से शिक्षा ग्रहण करने को कहा। हम एकदम बहरे होंगे तो सीटी न सुनेंगे। जिसने दोनों कानों में रुई भर दी है वही सत्यार्थ को नहीं अपनायेगा। मॉरीशस तक ने इस ग्रन्थ को छपवाया, इसके फ्रेन्च उल्था को मुद्रित करवाया। जब आदर्श गुरू दण्डी जी को आदर्श शिष्य प्राप्त हुए थे तब गुरू अस्सी वर्ष की अवस्था के हो गये थे। उनका स्वर क्षीण था। शिष्य का स्वर तीव्र था। आवाज में तीव्रता न होती तो हमारी निद्रा भंग न होती।

He agreed with Tagore that what he called the 'thing' stifle the spirit.

Some persons have bluntly put the question. Ban Gandhism set back the hands of the clock of time and revert to the simplicity of a by gone age ?

Many of the great thinkers of the west are beginning to ask themselves whether their life is based on sound and sensible foundations whether the loss of its basic sensililties and their substitution by a mad rush for speed and the crazy pursuit of wealth, real by makes sense. —*Dr. K. Z. Saiyidain*

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति ।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है ।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले	६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश	७.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश	१५.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था	८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	१.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज		५.००
महर्षि दयानन्द की देन		४.००
सत्यार्थप्रकाश	**स्वामी दयानन्द**	२५.००
संस्कारविधि	,,	४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	,,	१०.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	,,	०.१५
आर्याभिविनय	,,	२.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	,,	०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला	,,	०.२५
बालशिक्षक	,,	०.३७
व्यवहारभानु	,,	१.००
सन्ध्या विनय	**नित्यानन्द वेदालंकार**	२.००
पूर्व और पश्चिम	,,	७.५०
जीवन की राहें	,,	४.००
सु-राज्य की रूपरेखा	,,	०.५०
प्राणायामविधि	**नारायण स्वामी**	०.६०
आर्यसमाज क्या है ?	,,	१.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला		३.००
स्वाध्यायसंग्रह	**स्वामी वेदानन्द**	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे	सैंकड़ा	१५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे(छोटा)	,,	४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे	,,	६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका		२.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान	१.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना	१.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता	१.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त)	१.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द**	२.५०
बाल शिक्षा	०.६०
उपनिषद् प्रकाश	१२.००
वैशेषिक दर्शन	८.००
न्याय दर्शन	६.००
सांख्य दर्शन	५.००

बालोपयोगी

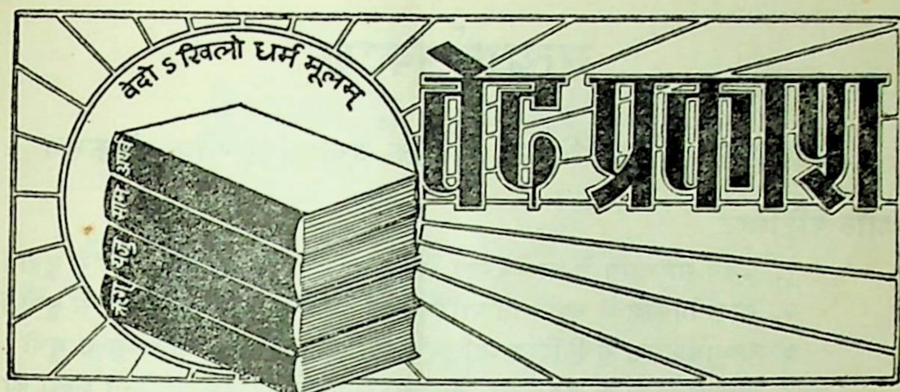
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



शाश्वत संकल्प

यस्मिन्नृचः सामयजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

(यजुर्वेद ३४-५)

शब्दार्थः—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) रथ की नाभि में अरों के समान (ऋचः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता यस्मिन्) ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद प्रतिष्ठित हैं, (यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तं ओतम्) जिसमें प्राणियों के हितार्थ सभी प्रकार का ज्ञान सूत में मणियों के समान संकलित है, (तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) वह मेरा मन सच्छास्त्रों के प्रचार में लगे रहने का संकल्पी हो !

भावार्थः—जिन वेदों में संसार-भर का ज्ञान भरा पड़ा है और जो सब प्रकार के विज्ञानों का भण्डार है, उसे धारण करने और उसका प्रचार-प्रसार करने में मेरा मन संकल्पशील रहे !

वेदप्रकाश के सम्बन्ध में

इस अंक के साथ वेदप्रकाश के २७ वर्ष पूरे हुए। इस वर्ष भी गत वर्षों की तरह लगभग सभी अंक विशिष्ट सामग्री लिए हुए विशेषांक थे।

वेदालोक अंक, स्वस्तिवाचन-शान्तिकरण अंक, सामवेदसूक्तिसुधा के दो अंक, अग्निहोत्र अंक, ये पाँचों अंक स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा लिखे गए थे और यह सारी सामग्री उन्होंने अपनी प्रचार-यात्रा में फिजी से भेजी थी। इन अंकों के अतिरिक्त प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार द्वारा लिखित ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का एक सरल अध्ययन दो अंकों में प्रकाशित हुआ। एक अंक में महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती को श्रद्धांजलि देते हुए उनकी जीवनी प्रकाशित की गई। एक अंक में मॉरीशस के वैदिक विद्वान् प्रो० विष्णुदयाल एम० ए० द्वारा लिखित 'पावन चरितावली' प्रकाशित हुआ। एक अंक प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार लिखित 'भगवद्भजन जरूरी है', 'श्रेय और प्रेय' तथा 'बुद्धि प्रखर कैसे हो' तीन लेख प्रकाशित हुए। प्रस्तुत अंक में वैद्य गुरुदत्त जी के वेद-सम्बन्धी लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं। इस प्रकार कुल बारह अंकों में से ग्यारह अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुए।

आगामी वर्ष में भी इसी प्रकार सभी अंकों को विशेषांक बनाने का प्रयत्न किया जायेगा।

वार्षिक शुल्क भेजें—इस अंक के साथ लगभग सभी ग्राहकों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो जाता है, अतः सभी पाठकों से निवेदन है कि अपना शुल्क शीघ्र भेजें। पाठकों से यह निवेदन भी है कि वे न केवल अपने लिए वेदप्रकाश का शुल्क भेजें, बल्कि अपने इष्ट मित्रों एवं सम्बन्धियों को भी वेदप्रकाश का ग्राहक बनाएँ। मनीआॅर्डर भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलें।

—सम्पादक

पाठकों के विशेष आग्रह पर

वर्षों बाद पुनः प्रकाशित

श्रीमद्दयानन्द चित्रावली

यह पुस्तक स्वामी दयानन्द जी के तपोनिष्ठ जीवन की एक अनूठी झाँकी प्रस्तुत करने के साथ, उनके जीवन की कुछ अविस्मरणीय घटनाओं के इकरंगे और बहुरंगे चित्रों से भी सुसज्जित है।

छपाई मोटे अक्षरों में और बढ़िया कागज़ पर कराई गई है। अधिक प्रतियाँ मँगवाने पर अधिक कमीशन दिया जाएगा।

मूल्य : आठ रुपये मात्र

प्राप्ति-स्थान

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक १२] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जुलाई, १९७८

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

वेद

मनीषी विद्वान् श्री गुरुदत्त, एम० एस-सी०

लिखित पुस्तक 'वेद प्रवेशिका' का एक अंश

वेद परमात्मा का ज्ञान है

वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। महर्षि स्वामी दयानन्द की ऐसी घोषणा है। इसे भारतीय हिन्दू समाज का एक बहुत बड़ा अंश स्वीकार भी करता है। वह वेदों को स्वतःप्रमाण मानता है। अभिप्राय यह कि इसमें कही बात के लिए वह किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझता।

परन्तु आज के काल में दो विकट स्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं। एक यह कि कुछ लोग वेद शब्द और श्रुति शब्द पर्यायवाचक मानने लगे हैं और श्रुति शब्द उन बहुत-से ग्रन्थों का नाम है जो प्रथम कहे गये और सुने गये थे। इनमें वेदों के अतिरिक्त आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत, गीता इत्यादि भी हैं। वेदों के विषय में परम्परा यह है कि ये अनादि हैं और अपौरुषेय हैं। मनुष्य शरीरधारी होने से असीम नहीं हो सकता। अतः उसका ज्ञान भी असीम नहीं हो सकता। और मनुष्यकृत ग्रन्थ सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं हो सकते।

दूसरी विकट स्थिति यह है कि पृथिवी पर और भारत में भी एक बहुत बड़ी संख्या में लोग ऐसे हो गये हैं जो परमात्मा के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते। इस कारण ईश्वरीय ज्ञान को वे नहीं मानते।

अतएव वेद-ज्ञान में प्रवेश पाने के लिए इन दो प्रारम्भिक विचारों के विषय में स्पष्ट ज्ञान हो जाय तो वेद-अर्थ समझने में रुचि और सामर्थ्य आ सकती है।

प्रथम विचार के विषय में इतना समझ लेना आवश्यक है कि संस्कृत में लिखी प्रत्येक पुस्तक वेद नहीं हो सकती। वेद के अपने कुछ लक्षण होने चाहिएँ। केवल सुनी हुई बात भी वेद नहीं हो सकती और न ही सुनी हुई बात सदैव सत्य होगी।

उदाहरण के रूप में संस्कृत भाषा में एक कथन है—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ।।
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।।

इस कथन को प्रमाण मानने से पूर्व क्या यह जानना आवश्यक नहीं कि किसने यह कथन किया है ? यह जानना अनावश्यक है कि यह कहा गया है, किसी ने सुना है अथवा कहीं लिखा-पढ़ा गया है। सबसे आवश्यक बात यह है कि इसमें जो कुछ कहा गया है क्या वह प्रमाण से सिद्ध है ? क्या वह युक्ति-युक्त है ? और इसका अनुकरण करने से लाभ अर्थात् सुख प्राप्त होगा क्या ?

इस श्लोक के अनुसार कन्या का विवाह करना शरीर-विज्ञान के विरुद्ध और अनुभव से अति दुःखदायी होगा, अतः यह किसी ज्ञानवान् का कथन नहीं हो सकता।

यही बात ब्राह्मण इत्यादि ग्रन्थों की है। ब्राह्मण, आरण्यकादि ग्रन्थ श्रुति होते हुए भी किसी मनुष्य के कहे गये हैं और उनमें सब बातें युक्तियुक्त एवं सांसारिक अनुभव के अनुसार नहीं हैं। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वे सदा और सर्वत्र प्रमाण हैं।

इसी कारण स्वामी दयानन्द यह मानते थे कि आरण्यकों से लेकर महाभारत तक लिखे ग्रन्थ आर्षग्रन्थ माने जा सकते हैं। इस पर भी वेदानु-सार होने पर ही प्रमाण हैं एवं वेद-विपरीत होने पर न मानने योग्य हैं।

यह बात युक्तियुक्त भी है। परस्पर-विरोधी ग्रन्थ प्रमाण नहीं हो सकते। मनुष्य अल्पज्ञ होने से सदा और सर्वत्र निर्भ्रान्ति नहीं हो सकता। उदाहरण के रूप में महाभारत एक ऋषि वेदव्यास का लिखा ग्रन्थ है। इस कारण महाभारत में लिखे को स्वतःप्रमाण मानने के लिए यह आवश्यक है कि पहले श्री वेदव्यास के सर्वज्ञ होने को सिद्ध किया जाये। यह श्री वेदव्यास का जीवन-चरित्र पढ़ने पर पता चलेगा कि वह मानवों की भाँति भूलें भी करते थे। अतः उनका लिखा ग्रन्थ सर्वत्र सत्य होगा, नहीं कहा जा सकता।

महाभारत में कही कई बातें अस्वाभाविक और अयुक्तिसंगत हैं। इस कारण न तो वेदव्यास सर्वज्ञ माने जा सकते हैं और न ही उनकी कही बातें स्वतन्त्र प्रमाणों से सिद्ध किये बिना स्वीकार करने योग्य हो सकती हैं। यही बात ब्राह्मणादि ग्रन्थों की है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि जो कुछ महाभारत आदि के विषय में कहा गया है, वही बात वेद के विषय में क्यों नहीं मानी जाती ?

हम भी यही मानते हैं कि कोई ऐसा प्रमाण होना चाहिये जो वेद के रचयिता का विचार छोड़कर, वेद को सत्य विद्या का ग्रन्थ सिद्ध करे। तभी वेद की प्रामाणिकता स्वीकार की जा सकती है।

भूमण्डल में हिन्दू समाज के बाहर एक बहुत बड़ा जन-समूह है जो वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानता। अतः वेद किसने और कैसे कहे, यह तो पीछे बतायेंगे। पहले यह सिद्ध करना चाहिये कि वेद में निर्भ्रान्त ज्ञान की बातें कही गयी हैं।

भारतीय विज्ञान ने, बिना किसी भी व्यक्ति की साक्षी लिये, वेद में लिखे के आधार पर ही निर्णय किया है कि वेद प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

भारतीय तर्क-शास्त्र ने यह कहा है कि आदि सृष्टि में मनुष्य को कोई ज्ञान देनेवाला होना चाहिये। किसी ज्ञान देनेवाले के अस्तित्व को माने बिना मानव उन्नति नहीं कर सकता था।

ऐसा देखा गया है कि यदि दुर्घटनावश आज भी कोई मनुष्य समाज की बातें सीखने से वंचित हो जाये तो वह कुछ भी सीख नहीं सकता। ऐसे उदाहरण मिले हैं जब किसी विशेष कारण से कोई शिशु अपने माता-पिता और समाज से असम्बद्ध हो गया। उसकी निर्माण-आयु व्यतीत होने पर वह फिर कुछ भी सीख नहीं सका।

एक बहुत ही शिक्षाप्रद उदाहरण अमेरिका के एक समाजशास्त्री आर० एम० मैकिवर ने अपनी पुस्तक 'सोसायटी' में वर्णन किया है। वह लिखता है—

The famous case of Kasper Hauser is peculiarly significant because this ill-starred youth was in all probability bereft of human contacts through political machinations and therefore his condition when found could not be attributed to a defect of innate mentality. When Hauser, at the age of seventeen, wandered into the city of Nuremberg in 1828, he could hardly walk, had the mind of an infant, and could mutter only a meaningless phrase or two. Sociologically it is noteworthy that Kasper mistook inanimate objects for living beings. And when he was killed five years later, a post-mortem revealed the brain development to be subnormal.

इसका अर्थ है—

कैस्परहाउज़र का प्रसिद्ध मामला है। यह विशेष रूप में ध्यान देने योग्य है कि यह भाग्यहीन युवक सम्भवतः राजनीतिक दुर्भाव के कारण मानव-सम्पर्क से वंचित कर दिया गया था। उसकी वैसी अवस्था, जब वह पाया गया तो किसी मानसिक दोष के कारण नहीं कही जा सकती थी। जब सत्रह वर्ष की वयस् में हाउज़र सन् १८२८ में न्यूरम्बर्ग की सड़कों पर घूमता पाया गया तो वह चल नहीं सकता था। उसका मानसिक विकास एक शिशु के समान था। वह केवल कुछ निरर्थक शब्द ही बड़बड़ा सकता था। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह विचारणीय है कि हाउज़र निर्जीव पदार्थों को जीवित प्राणी समझता था। जब वह मारा गया तो उसकी शव-परीक्षा की गयी और उसके मस्तिष्क का विकास बहुत निम्न प्रकार का था।

Ed. 1962 Macmillan & Co. Ltd. London, p 44.

इसी लेखक ने और भी उदाहरण दिये हैं। इनसे लेखक भिन्न परिणाम निकालता है, परन्तु हमें इससे और ऐसे अन्य उदाहरणों से यह विदित होता है कि जब तक मनुष्य को कोई सिखानेवाला न हो, वह कुछ भी सीख नहीं सकता।

यदि वस्तुस्थिति यह है तो प्रथम मनुष्य को किसने ज्ञान दिया कि उसे सीधा ही पाँवों के बल चलना चाहिये, क्योंकि इससे वह सिर ऊँचा कर दूर तक देखता हुआ चल सकता है? काम चलाने योग्य शब्द उसे किसने सिखाये? उसे मनुष्य की भाँति रहना तथा अन्य ज्ञान की बातें किसने सिखायीं?

भारतीय दर्शनशास्त्री कहते हैं कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मनुष्य को वेद-ज्ञान दिया जिससे मनुष्य, मनुष्यों की भाँति रहना सीख गया।

विकासवाद

पूर्वोक्त सिद्धान्त पर सन्देह करनेवाले यह कहते हैं कि मनुष्य एकदम नहीं बना। यह संसार के धक्के खाता हुआ, धीरे-धीरे, निम्न प्रकार के जन्तुओं से वर्तमान उन्नत स्थिति में पहुँचा है। इस विचार को वह विकासवाद कहता है। इस वाद के अनुसार यह माना जाता है कि—

(१) सब प्राणी एक ही प्रकार के जन्तु अमीबा (amoeba) से बने हैं और इस विकास (अर्थात् जाति-परिवर्तन) में मनुष्य अन्तिम कड़ी है। इस अवस्था में पहुँचने के लिए उसे लाखों वर्ष लगे हैं। इस वाद को माननेवाले मानते हैं कि मनुष्य का पिता एक वनमानुष के ढंग का जन्तु रहा है जो आजकल नहीं मिलता। आजकल की भाँति का मनुष्य आज से बीस-बाइस सहस्र वर्ष पहले यहाँ था। उससे पहले के उसके चिह्न नहीं मिलते।

भारतीय मत इस वाद (evolution theory) को अशुद्ध मानता है।

भारतीय विज्ञान कहता है—

(१) जाति सन्तति से बनती है। एक जाति के नर और मदीन सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। दो भिन्न जातियों के संयोग से सन्तान नहीं होती। इस कारण ये जातियाँ कभी भी एक नहीं थीं।

(२) जहाँ कई अंशों में मिलती-जुलती जातियों में नर-मदीन के संयोग से सन्तान होती भी है तो वह सन्तान आगे सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकती। घोड़े और गधे के संयोग से खच्चर के बनने का विख्यात उदाहरण है। भेड़िये और कुत्ते में भी कभी सन्तान हो सकती है, परन्तु उससे आगे कोई नयी जाति बनती नहीं देखी जाती। भिन्न-भिन्न योनियों की सन्तान नपुंसक होती है।

यहाँ तक कि वनस्पतियों में भी एक ही जाति में पैबन्द लग सकती है। आम की आम से ही पैबन्द लगती है। कभी विजातियों के साथ पैबन्द

नहीं लगती। उदाहरण के रूप में ग्राम की सन्तरे के साथ पैवन्द नहीं लग सकती ग्रथवा ग्रमरूद की लौकाट से पैबन्द नहीं लग सकती। यह इस कारण कि दोनों की जातियाँ एक नहीं।

(३) इतिहास में ग्राज से सहस्रों वर्ष पहले कुत्ते यहाँ थे। परन्तु कुत्ता तो कुत्ता ही रहा है। वह किसी प्रकार की कोई नवीन जाति उत्पन्न नहीं कर सका।

ग्रतः हमारा (भारतीय विज्ञानवेत्ताग्रों का) यह मत है कि सव जातियाँ ऐसी ही उत्पन्न हुई हैं जैसी कि ग्राज हैं। ग्रादि सृष्टि से मनुष्य मनुष्य ही है ग्रौर बन्दर बन्दर है।

भारतीय विज्ञान ग्रौर वेद ऐसा ही मानता है। इसका खण्डन विकास-वाद नहीं कर सका।

ग्रतः यह मत तो है ही कि ग्रादि काल से मनुष्य से मनुष्य ही बना चला ग्रा रहा है।

एक जन्तु-जाति का दूसरी जन्तु-जाति में परिवर्तन होता दिखायी नहीं देता। साथ ही भारत में सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास लाखों वर्ष पुराना है। यदि मानव-सृष्टि केवल बीस-बाइस हज़ार वर्ष पुरानी है तो भारत का इतिहास ग्रशुद्ध मानना होगा।

यह इतिहास की बात हम ग्रपनी पुस्तक के दूसरे ग्रध्याय में बतायेंगे। यहाँ हम विकासवाद के मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए एक ग्रन्य युक्ति देते हैं।

विकासवादी कहते हैं कि बीस सहस्र वर्ष पूर्व मनुष्य एक वन-प्राणी जैसा जन्तु था ग्रौर धीरे-धीरे उन्नति करता हुग्रा वर्तमान स्थिति में पहुँचा है।

इससे यह स्पष्ट ही है कि ग्राज से एक सहस्र वर्ष पुराना मानव ग्रनु-पात में ग्रसभ्य होना चाहिये ग्रौर दो सहस्र वर्ष पुराना उससे ग्रधिक ग्रसभ्य, ग्रौर ग्राज से छः-सात सहस्र वर्ष पुराना मनुष्य तो सर्वथा ग्रसभ्य, ग्रज्ञ ग्रौर समाज-शास्त्र से ग्रनभिज्ञ होना चाहिये।

परन्तु यूरोपियन विद्वान् यह मानते हैं कि वेद ग्राज से चार-पाँच सहस्र वर्ष पुराने हैं।

यदि वेद में ऐसी बातें मिल जायें जिन्हें वर्तमान वैज्ञानिक पता कर फूले नहीं समाते तो क्या यह सिद्ध नहीं होता कि पूर्ण विकासवाद एक मिथ्या कल्पना है?

देखिये एक वेद-मन्त्र है—

ग्रो३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण ग्राप्यायध्व मघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा ग्रयक्ष्मा

मा वास्तेनऽईशत माघश्ँ सो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।।
—यजु० १-१

अर्थ है—हे दिव्य गुणयुक्त सूर्य ! आप हमें अन्न, ऊर्जा और प्राण देते हैं। आप उन (अन्न, ऊर्जा और प्राण) से श्रेष्ठतम कर्म को करने के लिए हमें भलीभाँति संयुक्त करें। हम ऐश्वर्य प्राप्त करें। न मारे जाने योग्य पशु (गाय, भेड़, बकरी इत्यादि) बहुत सन्तानवाले हमारे पास हों और हम ऐश्वर्ययुक्त हों। हमारे धनादि को चोर, ठग और डाकू छीनकर न ले जा सकें। वह (सूर्य) संसार की रक्षा करनेवाला होवे और यजमान की बहुत-सी प्रजायें हों।

यह कथन न केवल एक सभ्य मनुष्य की कामना कही जा सकती है, वरन् यह वर्तमान विज्ञान के सर्वथा अनुकूल भी है। सूर्य इस पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करने में सहायक होता है। बिना सूर्य के अन्न उत्पन्न नहीं हो सकता। वर्तमान काल के, अपने को महान् उन्नत माननेवाले वैज्ञानिक भी यह जानते हैं कि अन्न सूर्य ही उत्पन्न कर सकता है और पृथिवी की पूर्ण ऊर्जा सूर्य की दी हुई है।

हमारा प्रश्न यह है कि मनुष्य ने (पाश्चात्य विद्वानों के कथनानुसार) पाँच सहस्र वर्ष पुराने वेद से अधिक इस दिशा में क्या सीखा है ? एक भी दाना अन्न का मनुष्य सूर्य की सहायता के बिना अभी तक बना नहीं सका।

तब विकासवाद का क्या अर्थ है ? वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य ने उन्नति नहीं की, वरन् कुछ अवनति ही की है।

तनिक विचार करिये। भारत में चारों वेदों को कण्ठस्थ करनेवाले पुराने काल में काफी संख्या में मिलते थे। आजकल स्मृतियन्त्र में ह्रास हुआ है अथवा नहीं ?

इसी प्रकार अन्य शारीरिक उपलब्धियों में वैदिक काल से भारी ह्रास हुआ है। यदि इन पाँच-छः सहस्र वर्षों में इतना ह्रास हुआ है तो वनमानुष से मनुष्य कैसे बन गया ?

विकासवाद सर्वथा मिथ्यावाद है।

हमारा तो यह कहना है कि वेद में गूढ़ ज्ञान-विज्ञान की बात कही हैं और वेद भूमण्डल के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इससे सृष्टि में विकासवाद सिद्ध नहीं होता।

(४) ऊपर दिये यजुर्वेद के मन्त्र में यह बताया है कि अन्न सूर्य से निर्माण होता है। अन्न में मुख्य पदार्थ हैं 'कार्बोहाईड्रेट्स' और 'प्रोटीन'। प्रकृति में ये दोनों पदार्थ सूर्य-रश्मियों की सहायता से बनते हैं। वैसे तेल (fatty oils) भी जो वनस्पतियों से निकलते हैं, सूर्य की रश्मियों की सहायता से बनते हैं। यह सब यजुर्वेद के कहे जाने के समय विदित था तो यह

कहा जा सकता है कि यजुर्वेद के कहनेवाला आज के वैज्ञानिकों से अधिक नहीं तो उन-जैसा विद्वान् अवश्य ही था।

परन्तु हमारे विचार में और भारतीय मान्यता के अनुसार वेद, वर्तमान रूप में, आज से लाखों वर्ष पहले के कहे ग्रन्थ हैं।

वेद में यह आया है कि वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् वे किसी पुरुष (ऋषि, मनुष्य, देवता तथा परमात्मा) ने नहीं कहे। वे अनादि हैं। परन्तु उनका अनादि स्वरूप तो ज्ञान में है। वर्तमान शब्दों में वे मानव-सृष्टि के होने के समय कहे गये। भारतीय परम्पराओं के अनुसार इसे कहे हुए अड़तीस-उनतालीस लाख वर्ष हो चुके हैं।

वेद के आविर्भाव का प्रकार और इसके काल के विषय में हम पृथक् एक अध्याय में लिखेंगे। यहाँ केवल इतना बताने से अभिप्राय है कि वेद अति प्राचीन ग्रन्थ होते हुए भी उत्कृष्ट ज्ञान-विज्ञान की बातें वर्णन करते हैं। इससे यह कहने में संकोच नहीं होता कि इनके रचनेवाला कोई अत्यन्त विद्वान् तत्त्व है। उसे ही भारतीय परम्परा में परमात्मा कहते हैं।

वेदों में उत्कृष्ट विज्ञान के विषय में मंत्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥

—ऋ० १-१-१

अर्थात्—अग्निम्=अग्नि की। इळे=स्तुति करता हूँ। पुरोहितम्=सृष्टि-रचना से पहले जगत् को देनेवाली। यज्ञस्य=यज्ञ-रूपी कार्य का। देवम्=देनेवाली। ऋत्विजम्=जो समय-समय पर सृष्टि-रचना करे। होतारम्—देनेवाला। रत्नधातमम्=धन-सम्पद देनेवाले को।

इस मन्त्र का अभिप्राय है कि इस संसार में यज्ञरूपी कर्म करनेवाली अग्नि की, जो सृष्टि-रचना से पहले परमाणुओं में संयोग उत्पन्न करनेवाली है और रत्नादि (संसार की अद्भुत सुखकारक वस्तुएँ) देनेवाली है, की मैं स्तुति करता हूँ। स्तुति का अर्थ है गुण, कर्म और स्वभाव को जानना।

अग्नि का अभिप्राय है ऊर्जा (energy)। यह मन्त्र भी संसार में उन्नति और ज्ञान को प्राप्त करने के साधन ऊर्जा-शक्ति को जानने की ओर संकेत है।

इसी प्रकार मन्त्रों में उत्कृष्ट ज्ञान की बातें देखकर ही हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वेद किसी कवि, मनीषी अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए हैं।

यह नहीं कि अन्न और ऊर्जा का नाम ही वेदों में हो, वरन् इनके विषय में रहस्यमयी जानकारी भी दी गई है। यह हम सब आगे चलकर समझाने का यत्न करेंगे।

इस अध्याय में हमने यह बताने का यत्न किया है कि वेद परमात्मा का मनुष्य के लिए दिया हुआ ज्ञान है और इसमें सत्य विद्याओं का ही दर्शन है।

उपनिषदादि ग्रन्थ

मनुष्यकृत ग्रन्थ वेद-समान विश्वास-योग्य नहीं हैं, अतएव उनको तभी स्वीकार किया जा सकता है जब वेद वेदानुकूल हों ।

जब एक बार हम यह समझ लें कि वेद ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ हैं, तब उस कसौटी पर अन्य ग्रन्थों की परीक्षा की जा सकती है ।

परीक्षा करते समय प्रमाणों के विषय में यह माना गया है कि प्रमाण तीन प्रकार के हैं—

द्वयोरेकतरस्य वाप्यसंनिकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा तत्साधकतमं यत् त् त्रिविधं प्रमाणम् ।

अर्थात्—(बुद्धि और आत्मा) दोनों अथवा दोनों में से एक को पूर्व-ज्ञात अर्थ का ज्ञान होना प्रमा कहलाता है । जो इस (प्रमा) को भली-भाँति सद्ध करता है, वह प्रमाण तीन प्रकार का है ।

इन तीन प्रकार के प्रमाणों को प्रत्यक्ष-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण और शब्द-प्रमाण कहते हैं ।

प्रत्यक्ष का अभिप्राय है—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ —न्याय० १-१-४

अर्थात्—इन्द्रियों के विषयों के साथ संयोग से उत्पन्न ज्ञान, जो शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सके, जो दोषरहित हो और निश्चय रूप हो, वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है ।

अभिप्राय यह है कि इन्द्रिय द्वारा भ्रमरहित और निश्चयात्मक ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं, भले ही वह शब्दों में प्रकट न किया जा सके ।

दूसरे प्रकार के प्रमाण के विषय में कहा है—

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥ —सां० १-१००

अर्थात्—अटल सम्बन्ध को प्रतिबन्ध कहते हैं । इसको देखकर बँधे हुए का ज्ञान अनुमान कहलाता है ।

जब यह पता चले कि दो वस्तुओं, विचारों अथवा सिद्धान्तों का एक न टूटनेवाला सम्बन्ध है, तब एक को देखकर दूसरे के वहाँ होने का ज्ञान अनुमान कहलाता है ।

यह प्रमाण प्रायः सूक्ष्म अथवा लीन पदार्थों के विषय में प्रयोग किया जाता है । इनको प्रत्यक्ष करने में इन्द्रियाँ कार्य नहीं करती हैं । इसका एक विख्यात उदाहरण सांख्याचार्य देता है—

अचाक्षुषाणामनुमानेनसिद्धिर्धूमादिभिरिव वह्नेः ॥

—सां० १-६०

अर्थात्—अदृष्ट पदार्थों की अनुमान से सिद्धि होती है। जैसे, धूमादि को देखकर अग्नि का ज्ञान होता है।

अग्नि दिखायी न देती हो, परन्तु धुआँ दिखायी दे तो अग्नि का ज्ञान निश्चय से होता है।

शब्द-प्रमाण का अभिप्राय है वेद-प्रमाण।

यह सब यहाँ बताने से हमारा अभिप्राय यह है कि किसी बात अथवा ग्रन्थ की प्रामाणिकता में ये तीन प्रमाण हैं। वेद तो हैं ही। वेद के अतिरिक्त भी प्रत्यक्ष और अनुमान-प्रमाण से किसी वस्तु के सत्य ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

हम यहाँ बृहदारण्यक उपनिषद् के एक कथन की परीक्षा करेंगे। बृहदारण्यक उपनिषद् में एक स्थान पर कहा है—

…चाक्रायणः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो…

—बृ० उ० ३-४-१

अर्थ है—चाक्रायण ने याज्ञवल्क्य से पूछा—हे याज्ञवल्क्य ! जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तर आत्मा है, मेरे लिए उसकी व्याख्या करो।

याज्ञवल्क्य ने इसका उत्तर दिया। इस पर पुनः प्रश्न हुआ। कुछ प्रश्नोत्तरों के उपरान्त याज्ञवल्क्य ने अन्तिम उत्तर इस प्रकार दिया—

…न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं श्रृणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीथाः। एष त आत्मा सर्वान्तरोऽतोऽन्यदार्तं ततो होषस्तश्चाक्रायण उपरराम॥

—बृ० उ० ३-४-२

अर्थ है—तुम दृष्टि के द्रष्टा को नहीं देख सकते, श्रुति के श्रोता को नहीं सुन सकते, मति के मन्ता को मनन नहीं कर सकते, विज्ञाति के विज्ञाता को नहीं जान सकते। तुम्हारी यह आत्मा सर्वान्तर ही है। इससे भिन्न नाशवान् है। इसके उपरान्त चाक्रायण चुप हो गया।

अब हम बृहदारण्यक के इस कथन की, उक्त प्रमाणों के आधार पर परीक्षा करते हैं।

इस कथन का अभिप्राय है कि जो मनुष्य में देखता है, सुनता है, विचार करता है, जानता है, उसे जाना नहीं जा सकता। वही सबके भीतर एक आत्मा है।

यह कथन प्रत्यक्ष-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण और शब्द-प्रमाण से सिद्ध नहीं होता।

यह इस प्रकार है कि वह जो एक मनुष्य में देखता, सुनता, मनन करता अथवा जानता है, वही सबमें नहीं है। सबमें देखनेवाले, सुननेवाले, मनन करनेवाले और ज्ञान प्राप्त करनेवाले भिन्न-भिन्न हैं।

यदि देवदत्त और सोमदत्त दोनों में देखने इत्यादि वाला आत्मा एक ही होता तो जो कुछ देवदत्त देखता, वह सोमदत्त अथवा कोई भी अन्य मनुष्य देख लेता।

यदि देवदत्त देवदास का चलचित्र देख रहा है तो सोमदत्त घर पर अथवा किसी भी अन्य स्थान पर बैठा वह चलचित्र देख लेता।

यदि एक मनुष्य घर बैठा ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड पर ठाकुर ओंकारनाथ का संगीत सुन रहा है तो संसारभर के सब प्राणी उसे सुन लेते। क्योंकि, महर्षि याज्ञवल्क्य के कहे अनुसार वही आत्मा सबमें है।

अतः यह प्रत्यक्ष-प्रमाण से अशुद्ध कथन है। अनुमान-प्रमाण से भी यह अशुद्ध सिद्ध होगा। मान लीजिये कि देवदत्त बाईसिकल पर जाता-जाता मोटरगाड़ी से टकरा घायल हो हस्पताल में पहुँच जाता है। वहाँ उसका ऑपरेशन हो रहा है और ऑपरेशन की वेदना से वह कराह रहा है और सोमदत्त घर बैठा हलुवा खाता हुआ प्रसन्नता एवं सुख अनुभव कर रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि देवदत्त का आत्मा और सोमदत्त का आत्मा एक नहीं। इस प्रकार अनुमान-प्रमाण से भी याज्ञवल्क्य का यह कथन अशुद्ध सिद्ध किया जा सकता है।

शब्द-प्रमाण से भी यह अशुद्ध सिद्ध किया जा सकता है। हमने बताया है कि शब्द-प्रमाण से अभिप्राय वेद-प्रमाण है। इस कथन का विरोध वेद में इस प्रकार है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥

—ऋ० १-१६४-२०, २१, २२

अर्थात्—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया=दो सुन्दर गतियोंवाले परस्पर सम्बन्धित तथा सखा-भाव रखते हुए एक-समान। वृक्षं=काटे-छाँटे जाने-वाली प्रकृति पर। परि षस्वजाते=सर्वतः आश्रित हैं। तयोः=उन दोनों में। अन्यः=एक। पिप्पलं स्वादु अत्ति=प्रकृति-रूपी वृक्ष के पके फलों का स्वाद लेता है (सुख-दुःख भोगता है)। अनश्नन्=न खाता हुआ। अन्यः= दूसरा (परमात्मा)। अभि चाकशीति=साक्षी-रूप देखता है ॥२०॥

यत्रा=जहाँ। सुपर्णा=जीव कर्म करनेवाला। अमृतस्य भागम्= अमृत पाने को। अनिमेषम्=निरन्तर। विदथा अभिस्वरन्ति=ज्ञान-विज्ञान का चिन्तन-पालन करता है। इनः विश्वस्य भुवनस्य=समस्त गृहों का

स्वामी। गोपाः=रक्षक। मा धीरः=मुझ विद्वान् को। पाकम्=जो ज्ञान से परिपक्व हो चुका है। आ विवेश=आकर प्रवेश करे ।।२१।।

सुपर्णाः=जीव। यस्मिन् वृक्षे मधु अदः=जिस वृक्ष के मीठे फल खाता है। निविशन्ते अधिविश्वे सुवते=जगत् में रहते सन्तान उत्पन्न करता है। इव आहुः तस्य=यह उनके विषय में कहा जाता है। अग्रे स्वादु पिप्पलं =पहले स्वादिष्ट फल खाये थे। तत् न उत् न शत् चः पितरम् न वेद=वे परमात्मा को नहीं जानते और नाश को प्राप्त होते हैं ।। २२।।

इन मन्त्रों का भावार्थ यह है कि विश्व में आत्मा और परमात्मा प्रकृति के आश्रय रहते हैं। एक प्रकृति का भोग करता है और परमात्मा साक्षी-रूप देखता है। जो जीव परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करता है और भुवनों के स्वामी रक्षक परमात्मा के आश्रय रहता है, वह मोक्ष-प्राप्ति की कामना करता है।

और जो इस संसार के स्वादों को लेता हुआ यहाँ सन्तान उत्पन्न करता है, वह उस परमात्मा और मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता।

हमारे कहने का निष्कर्ष यह है कि आत्म-तत्त्व दो हैं। एक तत्त्व पृथक्-पृथक् शरीरों में रहता हुआ भले-बुरे कर्म करता है। खाता-पीता, सुनता, सूँघता, मनन करता और ज्ञान प्राप्त करता है। वह आत्मा है। वह सबमें एक नहीं है। भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न है।

दूसरा तत्त्व सर्वान्तर एक है।

अतः उपनिषद्-वाक्य ग़लत है।

इसी प्रकार किसी भी ग्रन्थ की प्रामाणिकता का निर्णय किया जा सकता है। ग्रन्थ में कही बात को प्रत्यक्ष, अनुमान अथवा शब्द-प्रमाण से निश्चय किया जा सकता है।

इन तीनों अथवा इनमें से किसी एक प्रमाण से सिद्ध किया पदार्थ प्रमाणित माना जाता है। सांख्यदर्शन में यह कहा है—

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाऽऽधिक्यसिद्धिः ।। —सां० १-८८

अर्थ है—इन प्रमाणों से जो कुछ सिद्ध हो जाये वह अन्तिम सिद्ध है; और अधिक प्रमाणों की आवश्यकता नहीं रहती।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि वेदार्थ की सत्यता की परीक्षा भी इसी प्रकार प्रमाण से की जा सकती है अर्थात् जैसे ऊपर बताया है प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द-प्रमाण से। वेदों पर निरुक्त कहनेवाले यास्क इस प्रकार कहते हैं—

अक्षरं न क्षरति। न क्षीयते वाऽक्षरं भवति। वाचोऽक्ष इति वा। अक्षो यानस्याञ्जनात्। तत्प्रकृतीतरद्वर्तनसामान्यात्। इति।

अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढः। अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः। न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः।

—यास्क निरुक्त १३-१२

अर्थात्—जो क्षरित, क्षीण नहीं होता, वह ही वाक् (वेद-वाणी) हो जाती है। अथवा वाक् (वेद-वाणी) नाश नहीं होती। जैसे शकट के अरे अक्ष (धुरे) के आश्रय कार्य करते हैं, इसी प्रकार वाक् (वेद-वाणी) अक्षरों के आश्रय कार्य करती है। अतः मन्त्रार्थ की चिन्ता की गयी है। अर्थ श्रुति के प्रमाण से, युक्ति से तथा प्रकरण-अनुसार होने चाहियें।

यह स्पष्ट है कि यास्क समझता है कि वेद परस्पर-विरोधी नहीं। अतः वेदार्थ में शब्द-प्रमाण का अभिप्राय यह है कि वेद में किसी स्थान पर कही बात किसी दूसरे स्थान पर कहे के विरुद्ध नहीं हो सकती।

यास्क यह भी समझता है कि वेद का कहा तर्क से असिद्ध नहीं हो सकता। अभिप्राय यह कि वेद-कथन सदा तर्क-संगत होता है।

तर्क के विषय में यह कहा है कि आधार-युक्त तर्क सदा सत्य होता है। जिस तर्क में किसी प्रत्यक्ष अथवा अनुमान का आधार न हो, वह तर्क माननीय नहीं हो सकता। वेद सर्वदा तर्क-संगत बात ही कहता है।

साथ ही वेद के अर्थ प्रकरण के अनुसार ही करने चाहियें। जिस विषय का सूक्त अथवा मन्त्र हो, उस विषय से हटकर उस मन्त्र का अर्थ यदि किया जायेगा तो वह अशुद्ध होगा।

यहाँ प्रकरण के विषय में दो शब्द कह देना उचित है। वेद-मन्त्रों, सूक्तों (मन्त्र-समूहों) अथवा मन्त्रांशों पर देवता लिखे रहते हैं। ये देवता ही उस मन्त्र, मन्त्रांश, सूक्त का प्रकरण (विषय) होते हैं और उसका विचार रखकर ही मन्त्रार्थ होने चाहियें। अभिप्राय यह है कि मन्त्र अथवा सूक्त के देवता का अर्थ है मन्त्र अथवा सूक्त में वर्णित विषय। प्रायः एक सूक्त (मन्त्र-समूह) का एक ही देवता अर्थात् विषय होता है। कभी एक ही सूक्त में मन्त्रों के भिन्न-भिन्न देवता होते हैं। इस पर भी उनका सूक्त में होना यह प्रकट करता है कि विषय भिन्न-भिन्न होने पर भी उनमें समीपता अथवा सम्बन्ध है।

देवता मन्त्रों का प्रकरण होता है और अर्थ प्रकरणानुसार होने चाहियें। यही यास्काचार्य का मत है। इससे यह स्पष्ट ही है कि वेद में प्रकरणानुसार ही वक्तव्य हैं।

हमने यह इस सन्दर्भ में बताया है कि वेदार्थ की सत्यता भी उसी प्रकार देखी जाती है जिस प्रकार किसी भी ग्रन्थ के सत्य-असत्य का निर्णय किया जाता है।

भारतीय विद्वानों का यह मत है कि वेद इस कटौती पर सत्य सिद्ध होते हैं। अतः वेद स्वतःप्रमाण हैं।

जैसे किसी मनुष्य का किसी विषय में ज्ञान सदा सिद्ध हुआ हो तो फिर उस व्यक्ति को उस विषय का विशेषज्ञ मान, उस विषय में उसे प्रमाण समझा जाता है। वही बात वेदों की है। अन्तर इतना है कि जितने भी विषयों पर वेदों की परख की गयी है, इसे सत्य ही पाया गया है; जबकि किसी भी मनुष्य के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। मनुष्य किसी एक अथवा दो-तीन विषयों का विशेषज्ञ हो सकता है, परन्तु सर्वज्ञ नहीं हो सकता। अतएव वेद सर्वज्ञ परमात्मा का रचा ग्रन्थ माना जाता है। परमात्मा को कवि कहा जाता है। कवि का अर्थ है सर्वज्ञ।

उपनिषद्, ब्राह्मण इत्यादि ग्रन्थ इस कसौटी पर सदा और सब स्थान पर सत्य सिद्ध नहीं होते। इस कारण ये ग्रन्थ वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक ये वेदानुकूल हों और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से इनकी बात सिद्ध की जा सके।

उपनिषदादि ग्रन्थों को 'परता प्रमाण' माना जाता है।

वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने का वेद स्वयं भी साक्षी है। यद्यपि हम इन प्रमाणों को प्रथम कोटि का प्रमाण नहीं मानते, परन्तु जब वेद की अन्य बातें सत्य सिद्ध होती हैं तो इसके अपने विषय में साक्षी को भी सत्य माना जा सकता है।

अथर्ववेद का एक मन्त्र है—

यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्य-थर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।

—अथर्ववेद १०-७-२०

अर्थ हैं—यस्मात्=जिस (परमात्मा) से। ऋचः=ऋचायें। अप अतक्षन्=प्रकट हुईं। यस्मात्=जिससे। यजुः=यजुर्वेद। अप अकषन्=प्रकट हुआ। सामानि=मोक्ष विद्यायें (सामवेद)। यस्य=जिसके। लोमानि=लोम हैं। अथर्व अङ्गिरसः=अथर्व अङ्गों के रस समान हैं। मुखं तं=मुख के समान हैं। स्कम्भं सः स्वित् एव कतमः ब्रूहि=वह धारण करनेयोग्य (परमात्मा) कौन है? तू ही कह।

अभिप्राय यह है कि परमात्मा जो मुखस्वरूप है अर्थात् ज्ञान कहने-वाला है, उससे ही ऋक्, यजुः, साम, अथर्ववेद उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र है—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

—यजु० ३१-७

अर्थात्—तस्मात्=उस। यज्ञात्=अति पूजनीय से। सर्वहुतः=सबसे ग्रहण किये जानेवाले से। ऋचः=ऋग्वेद। सामानि=सामवेद। जज्ञिरे=उत्पन्न हुए। तस्मात्=उसी से। छन्दांसि=अथर्ववेद। जज्ञिरे=उत्पन्न हुआ। तस्मात्=उससे। यजुः=यजुर्वेद। अजायत=उत्पन्न हुआ।

इस वेद-मन्त्र से यह प्रकट होता है कि वेद अपने परमात्मा-रचित होने की घोषणा करता है। वह परमात्मा सबका हित करनेवाला है।

इतना कुछ कहने पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि परमात्मा कोई तत्त्व है भी क्या ?

परमात्मा है

ऐसा वेद में कहा है। वेद की प्रामाणिकता के विषय में हम पिछले अध्याय में कह आये हैं। अतः यदि वेद में परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है तो हमें परमात्मा को मानना ही पड़ेगा।

परन्तु ऋषियों ने इतने पर सन्तोष नहीं किया। वेद के अतिरिक्त प्रमाणों से भी परमात्मा के अस्तित्व की सिद्धि की है। हम दोनों प्रकार से परमात्मा के विषय में विचार करेंगे।

वेद में कहा है—

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

—यजु० ४०-१

अर्थात्—ईशा=ईश्वर से। वास्यम्=आच्छादित है। इदम्=यह सब-कुछ। सर्वम्=सब। यत् किम् च=और जो कुछ। जगत्याम्=चलायमान संसार में। जगत्=चल रहा है। तेन त्यक्तेन=इस कारण त्यागपूर्वक। भुञ्जीथा=भोग कर। मा=मत। गृधः=लालच कर। कस्य स्वित्=किसका है वह। धनम्=मलकीयत।

अभिप्राय यह कि जो कुछ इस जगत् में स्थावर एवं चलायमान दिखायी देता है, वह आच्छादित है परमात्मा से। इस कारण मत लालच कर। त्यागपूर्वक इसका भोग कर। यह किसी की भी मलकीयत नहीं है।

पूर्ण जगत् के प्राकृतिक पदार्थों की रचना परमात्मा ने की है। यह सब मनुष्य-मात्र के लिए है। अतः किसी को इस पर मलकीयत जमाकर नहीं बैठ जाना चाहिये। त्याग की भावना से ही इसका भोग करना चाहिये।

परमात्मा के स्वरूप के विषय में भी कहा है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजु० ४०-८

अर्थात्—सः=वह (परमात्मा)। परि अगात्=सर्वत्र व्यापक है। शुक्र=शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान्। अकायम्=शरीर-रहित। अव्रणम्=विकार-रहित। अस्नाविरम्=स्नायु-बन्धन से रहित। शुद्धम्=अविद्यादि दोषों से रहित। अपापविद्धम्=वह जो पाप से बद्ध नहीं होता। कविः=

महान् ज्ञानवान् । मनीषी=सबके मन को जाननेवाला । परिभूः=दुष्टों को दूर करनेवाला । स्वयम्भूः=अनादि । शाश्वतीभ्यः=सनातन अनादि । समाभ्यः=सबके लिए समान भाव में । याथातथ्यतः=यथार्थता से । अर्थात् =सब पदार्थों का । व्यदधात्=अच्छी प्रकार से उपदेश करता है ।

इन मन्त्रों को यहाँ देने से हमारा अभिप्राय यह बताना है कि वेद आस्तिकवाद का ग्रन्थ है । यह सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सब जगत् के रचने-वाले तत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार करता है ।

वेद प्रामाणिक ग्रन्थ है, यह बताया है । वेद ने परमात्मा के अस्तित्व को माना है । इससे परमात्मा को स्वीकार करने में बहुत बल मिलता है । वेद की प्रामाणिकता का आधार इसका ईश्वरकृत होना नहीं । यह तो अपौरुषेय माना जाता है । परमात्मा के साथ यह भी अनादि है ।

परन्तु वेद की प्रामाणिकता इस कारण नहीं कि यह परमात्मा द्वारा कहा गया है । इसकी प्रामाणिकता है इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण तथा अनुमान-प्रमाण से भी सिद्ध होना । जो कुछ भी इसमें कहा है, वह इन प्रमाणों से सिद्ध ही है ।

ऐसा करने के उपरान्त वेद में परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना एक प्रमाण है । परन्तु यदि वेद प्रत्यक्ष और अनुमान से सत्य-सिद्ध ग्रन्थ है तो वेद में कहा गया परमात्मा भी तो प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध होना चाहिये ।

यह दर्शनशास्त्रों ने सिद्ध किया है ।

ब्रह्मसूत्रों में कहा है—

जन्माद्यस्य यतः ।। —ब्र० सू० १-१-२

अर्थात्—जन्मादि=जन्म, पालन और प्रलय । अस्य=इस जगत् का । यतः=जिससे होता है (वह ब्रह्म है) ।

दर्शनाचार्य ने युक्ति की है कि जिससे यह दृश्यमान जगत् बना है, कार्य कर रहा है और प्रलय के समय विनष्ट होता है, वह परमात्मा है ।

नास्तिक, जो परमात्मा के अस्तित्व को नहीं मानता, कहता है कि यह प्रकृति के नियम से बना है, परन्तु प्रकृति तो बिना किसी चेतन के चलाये चलती नहीं ।

दर्शनाचार्य इसमें इस प्रकार युक्ति करता है—

व्यतिरेकानवस्थितेश्च अनपेक्षत्वात् ।। —ब्र० सू० २-२-४

अर्थात्—व्यतिरेक अनवस्थितेः=उलट धर्म का न अवस्थित होने में । अनपेक्षत्वात्=बिना (किसी चेतन के) अपेक्षा के ।

अभिप्राय यह है कि प्रकृति का कोई भी अंश जिस अवस्था में है उसी अवस्था में रहता है बिना किसी (चेतन) के प्रभाव के ।

एक गेंद खेल के मैदान में रखा हो तो वह वहाँ शताब्दियों तक पड़ा रहेगा और हिलेगा नहीं, जब तक कोई शक्तिवान् उसको ठोकर मारकर नहीं हिलाता।

यह सिद्धान्त तो आजकल के वैज्ञानिक भी मानते हैं। एक प्रख्यात वैज्ञानिक न्यूटन ने गति के नियमों में पहली ही बात यह लिखी है—

Every particle of matter continues in a state of rest or motion with constant speed in a straight line unless compelled by a force to change that state.

अर्थात्—प्रकृति का कोई भी कण अचल स्थिति में पड़ा रहता है अथवा एक ही गति से सीधी रेखा में चलता रहता है जब तक वह किसी विपरीत शक्ति से अवस्था बदलने पर विवश नहीं किया जाता।

नास्तिक का कहना कि प्रकृति अपने नियम से रूप बदलती तथा अवस्था बदलती है, प्रमाण से सिद्ध नहीं।

जगत्, सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि सब गति से चल रहे हैं। क्या यह सदा से ऐसे हैं? वैज्ञानिक ऐसा नहीं मानते। यह सृष्टि बनी है। इस जगत् में हम नित्य नक्षत्र टूटते देखते हैं। जो टूटा है वह कभी बना भी था। इस युक्ति से सृष्टि-रचना का अनुमान होता है और इससे यह पता चलता है कि इस रचना को करनेवाला कोई महान् शक्तिशाली है।

ऊपर ब्रह्मसूत्रों को कहनेवाला कहता है कि वह ब्रह्म है।

महर्षि स्वामी दयानन्द ईश्वर की सिद्धि में इस प्रकार 'सत्यार्थ प्रकाश' में कहते हैं—

प्रश्नकर्त्ता पूछता है—आप ईश्वर-ईश्वर कहते हैं, परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

अब विचारणीय यह होना चाहिए कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचादि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है, वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना-विशेषादि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।

इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञान-प्राप्ति में गुणों का प्रत्यक्ष होता है। गुणी का तो अनुमान ही होता है। इसी प्रकार रचनादि गुणों को देखकर रचना करनेवाले का ज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान ही कहा जायेगा।

हम मधुर ध्वनि सुनते हैं। कान को ध्वनि का ज्ञान होता है, परन्तु मन को तथा आत्मा को वाद्य-यन्त्र (शहनाई इत्यादि) का ज्ञान होता है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि चलते हैं। चलने को हम प्रत्यक्ष देखते हैं। इससे उनको चलानेवाले का ज्ञान भी प्रत्यक्ष ही कह सकते हैं।

परमात्मा ने वेद कब और कैसे प्रकट किये ?

यदि यह स्वीकार करें कि वेद नित्य (अनादि) हैं और इनको प्रकट परमात्मा ने किया है तो इसके प्रकट होने का काल ईश्वरीय-ज्ञान के ग्रन्थ वेद में से ही स्वीकार करना पड़ेगा।

वैसे युक्ति तो यही कह सकती है कि जिस समय जहाँ वेदों की अत्यधिक आवश्यकता रही होगी, उसी समय में वे वहाँ प्रकट हुए होंगे।

वेद-ज्ञान इस पृथिवी पर मनुष्य के लिए ही है। मनुष्य से इतर प्राणी इसको न समझ सकते हैं और न ही वे इससे कोई लाभ उठा सकते हैं; अतः वेद मनुष्य को तभी मिले होंगे जब मनुष्य इस सृष्टि पर उत्पन्न हुआ था। मनुष्य इस सृष्टि पर कब हुआ, यही जानने को रह जाता है।

विकासवाद को सत्य सिद्धान्त माननेवाले तो यह मानते हैं कि आरम्भ में एक-कोषीय जन्तु (Unicellular animal) ही बना था और लाखों-करोड़ों वर्षों में उस एक-कोषीय जन्तु से वर्तमान युग के करोड़ों जातियों के जन्तु बने हैं। वे यह भी मानते हैं कि उस विकास की श्रृङ्खला में मनुष्य सबसे उन्नत और अन्तिम प्राणी है। हमने यह बताया है कि विकासवाद एक मिथ्या सिद्धान्त है। विकासवाद को यदि सत्य मानें तो भी यह मानना पड़ेगा कि वेद कहे जाने के काल में मनुष्य आज से अवनत अवस्था में था। मनुष्य की अन्य प्राणियों से श्रेष्ठता इसकी बुद्धि की है और वेद एक महान् विद्वान् और ज्ञानवान् व्यक्ति के कहे ग्रन्थ मानने होंगे। इसमें वर्तमान युग के ज्ञात सिद्धान्तों से अधिक श्रेष्ठ सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है।

हमने एक मन्त्र दिया है कि अन्न और ऊर्जा पृथिवी पर सूर्य से प्राप्त हुई है, हो रही है और होती रहेगी। इन दोनों का स्रोत सूर्य के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। इससे अधिक इस विषय में वर्तमान विज्ञान जान नहीं सका। एक अन्य मन्त्र लीजिये—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥

—ऋ० १-१६३-१

सूक्त (१-१६३) का देवता (विषय) है 'अश्वोऽग्निर्देवता।' अग्नि-अश्व। अश्व सृष्टि-रचना करनेवाली शक्ति है। अश्वोऽग्नि है वह अग्नि जो रचना-कार्य करनेवाली है। अतः मन्त्रों का अर्थ इसी विषय पर होना चाहिये।

मन्त्रार्थ हैं—श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू=बाज़ के पंखों तथा हरिण की बाहों की भाँति। अर्वन्=तीव्र गति से चलनेवाला (परमात्मा का तेज)। उद्यन् समुद्रात्=समुद्र (अन्तरिक्ष) से ऊपर उठता हुआ। यत् अक्रन्दः= जिसने घोर शब्द किया। प्रथमम् जायमान=पहले उत्पन्न हुआ। उत वा

पुरीषात्=अथवा सब कामना पूर्ण करनेवाला। ते महि जातं=वह महत् उत्पन्न हुआ।

इस मन्त्र में सृष्टि-रचना के आरम्भ का वर्णन है। अश्व को हमने रचना आरम्भ करनेवाला कहा है। यह इस कारण कि अन्य विद्वानों ने भी इसे इसी प्रकार लिया है। उदाहरण के रूप में बृहदारण्यक उपनिषद् में सृष्टि-रचना के प्रसंग में यह कहा है—

उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः। —बृ० उ० १-१-१

अर्थात्—उषा, (सृष्टि-आरम्भ) के यज्ञ के अश्व का शिर (प्रथम चरण) है। यहाँ सृष्टि-रचना के उषा अर्थात् आरम्भ के काल का वर्णन है और कहा है कि रचना-रूपी यज्ञ का अश्व प्रथम पग है।

इसी कारण अश्वोऽग्नि (देवता) से यह अभिप्राय है कि सृष्टि-रचना का प्रसंग है। अर्वन्—तेजस्वी, तीव्रगामी, घोर शब्द करनेवाला है।

इस सूक्त के अगले मन्त्रों को पढ़ने से उक्त अर्थ ही ठीक प्रतीत होंगे। त्रित का अर्थ है तीन का न टूटनेवाला संयोग। यह 'सत्त्व रजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृति' का द्योतक है।'

इस प्रकार के मन्त्रों को पढ़ और समझकर यह कहना ही पड़ेगा कि या तो यह मानो कि वैदिक काल में मनुष्य आजकल से भी उत्कृष्ट ज्ञान रखता था, अथवा यह मानो कि वेद ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ हैं।

भारतीय परम्परा तो नीचे के वेद-मन्त्रों से स्पष्ट होती है—

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥
पुमाँ एनं तनुत उत् कृणत्ति पुमान् वि तत्ने अधि नाके अस्मिन्।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥
कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत्।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥

—ऋ० १०-१३०-१, २, ३

इस सूक्त का देवता है 'भाव वृत्तम्'। इसका अर्थ है भाव (रचना होने) का वृत्तान्त।

अर्थ हैं—यः=जो। यज्ञोः=यज्ञ। विश्वतः=सब ओर से। तन्तुभिः=तन्तुओं द्वारा। ततः=विस्तृत हुआ। एक शतं=एक सौ एक। देव=देव-वर्ष। कर्मेभिः=कर्म द्वारा। आयतः=विस्तृत हुआ। इमे=यह सब। वयन्ति=बुनते हैं। पितरः=पितर अर्थात् प्रजापति (मनु)। यः=जो। आययुः=बनाया। आसते=विद्यमान हैं। तत्=विस्तृत। प्र वयाप=(प्र-व्य-अप) वय=ऊपर का और नीचे को बुना ॥१॥

पुमान्=परम पुरुष। एनम्=इस (संसाररूपी यज्ञ) को। तनुत=

१. देखें लेखक का सांख्यदर्शन सूत्र १-६१ पर भाष्य।

विस्तार करता है। उत् कृणत्ति=समाप्त करता है। पुमान्=परम पुरुष। वि तत्ने=विस्तृत करता है। अधिनाके=आकाश में। अस्मिन्=इसमें। इमे=वे। मयूखा=किरणें। उपसेदुः=उपस्थित होते हैं। उ-सदः=स्थान पर। तसराणि सामानि चक्र=तिरछी गति वाले छन्द बनाये। ओतवे=बुनने के लिये ॥२॥

का=क्या। आसीत्=थी। प्रमा=परिमाण वाली। प्रतिमा=परिमाण मापने का साधन। किम्=क्या था। निदानम्=कारण और फल। आज्यम् किम् आसीत्=उस यज्ञ में सामग्री क्या थी। परिधिः आसीत्= रचना-यज्ञ कहाँ तक फैला हुआ था। छन्दः किम् आसीत्=छन्द क्या था। प्र उगम् कि उक्थं=क्या कहा गया था (उन छन्दों में)। यत्=जब। विश्वे देवाः=समस्त देवगण। देवम् अयजन्त=परमात्मा का भजन कर अर्थात् सहायक हो रहे थे ॥३॥

इन मन्त्रों का भावार्थ यह है—

जब पूर्व के सूक्त (१०-१२९) में कहे अनुसार सृष्टि-रचना आरम्भ हुई तो एक सौ एक देव-वर्ष तक प्रकृति के परमाणुओं का ताना-बाना होता रहा और तब पितर (परमात्मा) ने पंच महाभूतों से इस जगत् के विविध पदार्थ ऐसे बुने जैसे ताने-बाने से कपड़ा बुना जाता है। इस सबको करने-वाला परमात्मा है। बहुत ही विस्तृत क्षेत्र आकाश में यह जगत् बन गया और बनने पर जो देवता बने, वे परमात्मा के यज्ञ में सहायता करने लगे।

कैसे? यह आगे कहा है—

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः।
विश्वान् देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥
चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।
पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान् य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥

—ऋ० १०-१३०-४,५,६

अर्थात्—अग्नेः=अग्नि। गायत्री=गायत्री छन्द। अभवत्=हुई। सयुग्वा=सहयोगी। उष्णिहया=उष्णिक् छन्द के साथ। सविता=सूर्य। संबभूव=भली प्रकार संयुक्त हो गया। अनुष्टुभा=छन्द से। सोम=स्तुतियों से। महस्वान्=महान् तेजस्वी हुआ। बृहस्पतेः=बृहस्पति की। बृहती= बृहती छन्द। वाचम्=वाणी को। आवत्=प्राप्त हुआ।

विराट्=विराट् छन्द। मित्रा वरुणयोः=मित्र और वरुण दोनों का। अभि श्री=आश्रित हुआ अर्थात् इन देवताओं को मिला। इन्द्रस्य=इन्द्र का। त्रिष्टुप्=त्रिष्टुप् छन्द। इह=यहाँ पर। भागः=अंश है। अह्नः= दिन का। विश्वान् देवान्=सब देवताओं को। जगती=जगती छन्द।

आविवेश=चारों ओर से प्राप्त हुआ। तेन=उससे। चाक्लृप्र=सामर्थ्यवान् हुआ। ऋषयो=ऋषिगण। मनुष्याः=मनुष्य।

चाक्लृप्रे=सामर्थ्यवान् अर्थात् ज्ञानवान् हुए। तेन=उससे। ऋषयः मनुष्यः=ऋषि और मनुष्य। यज्ञे=यज्ञ (रचना) में। जाते=उत्पन्न होने पर। पितरः=आदिपुरुष। नः=हमारे। पुराणे=प्रथम में। पश्यन्=देखता हुआ। मन्ये=मानता हूँ। मनसा=मन से। चक्षसा=देखने। तान्=उनको। य=जो। इमं=इसको। यज्ञम्=यज्ञ को। अजयन्त=सम्पन्न करते थे। पूर्वे=आरम्भ होनेवाले।

इन मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि पूर्व (ऋ० १०-१३०-३) में जो कहा है कि देवता (वे पदार्थ जो सृष्टि-रचना में बने) परमात्मा के यज्ञ में सहायता देने लगे। अब बताया जा रहा है कि वे क्या सहायता दे रहे हैं।

अग्नि का सहयोग गायत्री छन्द-उच्चारण में होने लगा। उष्णिहा छन्द सूर्य के आश्रित हो गया। अनुष्टुप् छन्द सोम से महान् तेजस्वी हुआ। बृहती छन्द बृहस्पति से संयुक्त हो गया और वाणी को प्राप्त हुआ। विराट् छन्द मित्र और वरुण के आश्रित हो गया। इन्द्र दिन के समय त्रिष्टुप् छन्द का अंश हो गया। सब देवताओं के आश्रय विराट् छन्द हो गये। इस प्रकार छन्द से संयुक्त हो सामर्थ्यवान् हुए, दोनों ऋषि और मनुष्य भी।

(मनुष्य और ऋषि) सामर्थ्यवान् और ज्ञानवान् होकर परमात्मा के यज्ञ में सहायक होने लगे और हमारे पूर्वज जो सृष्टि के आरम्भ में हुए, वे भी यज्ञ को सम्पन्न करने लगे; अर्थात् उन छन्दों में कहे ज्ञान के अनुसार व्यवहार करने लगे।

इस पूर्ण वक्तव्य में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक यह कि जो ये सात छन्द हैं वे वेदों के मुख्य छन्द हैं।

दूसरी बात यह कि ये छन्द देवताओं के आश्रित हुए हैं; उनके कहनेवाले देवता नहीं। कहनेवाला तो परमात्मा ही था। देवता मात्र आश्रय देनेवाले थे।

तरंगों के रूप में आते हुए छन्दों का भावार्थ ऋषि मन में समझे। फिर उसे भाषा में कहने लगे जो मनुष्यों की भाषा हो गयी थी।

जैसे मनुष्य में आत्मा और शरीर है, आत्मा शरीर के द्वारा ही अपने गुण-दोष बताता (प्रकट करता) है। इसी प्रकार जगत् परमात्मा का शरीर हो जाता है और इस जगत् के द्वारा ही परमात्मा अपने गुणों को प्रकट करता है।

यह प्रक्रिया वेद ने बतायी है कि वेदों का आविर्भाव कैसे हुआ और कहाँ हुआ। कैसे और कब हुआ, इस विषय में भी कहा है।

सृष्टि के आदि में जब मनुष्य उत्पन्न हो गये, तभी ऋषियों ने मनुष्य को बताया।

सृष्टि-रचना और लय एक-दूसरे के उपरान्त चलते रहते हैं, वैसे ही जैसे दिन-रात एक-दूसरे के उपरान्त अनादि काल से चले आ रहे हैं।

जब जहाँ रचना होती है वहाँ ब्रह्म-दिन माना जाता है और जब जहाँ प्रलय होती है तो उसे ब्रह्म-रात्रि कहते हैं। खगोल-शास्त्रियों का यह कहना है कि एक ब्रह्म-दिन और रात्रि ८,६४,००,००,००० सौर वर्ष की होती है। ४,३२,००,००,००० वर्ष का दिन और इतने ही वर्ष की रात्रि। जब दिन आरम्भ होता है तो परमाणुओं की साम्यावस्था भङ्ग होती है और (सांख्य-दर्शन में वर्णित) परिणाम बनने लगते हैं।

यह कहा है कि सम्वत्सर (एक देव-वर्ष) भर एक ब्रह्माण्ड (galaxy) में परिवर्तन होते रहे और इस काल के उपरान्त ब्रह्माण्ड फटा और द्यू (सूर्यादि), पृथिवी, नक्षत्रादि पृथक्-पृथक् हो गये और बीच में अन्तरिक्ष हो गया।

यह घटना ब्रह्म-दिन के आरम्भ से लगभग चार करोड़ बत्तीस लाख वर्ष उपरान्त हुई। तब पृथिव्यादि जो बने, अवश्य बहुत गर्म रहे होंगे और उन्हें ठण्डा होने में पर्याप्त काल व्यतीत हुआ होगा।

ब्रह्म-दिन का विभाजन दो प्रकार से किया जाता है। एक तो रचना-क्रम में जब-जब कोई विशेष परिवर्तन हुआ तो कहा गया है कि ब्रह्म (सृष्टि-रचयिता) का नया रूप प्रकट हो गया। इस विभाजन को मनु अथवा काल-मन्वन्तर कहते हैं। ब्रह्म-दिन के चौदह मन्वन्तर माने गये हैं जिनमें से छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं और सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

सुगम गणना के विचार से पूर्ण ब्रह्म-दिन को १००० चतुर्युगियों में विभक्त किया गया है। इस प्रकार एक मन्वन्तर में ७१.४२८ चतुर्युगियाँ होती हैं। एक चतुर्युगी ४३,२०,००० वर्ष की होती हैं। इस प्रकार छः व्यतीत मन्वन्तरों का काल हुआ ६×४३,२०,०००×७१.४२८=१,८५,१४,१३,७६० सौर वर्ष।

सातवें मन्वन्तर की २७ चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं और अट्ठाइसवीं चतुर्युगी चल रही है। अट्ठाइसवीं चतुर्युगी का सतयुग, द्वापर युग, तथा त्रेता युग व्यतीत होकर कलियुग के ५०७७ वर्ष जा चुके हैं।

यह सब गणना इस प्रकार हो गयी—

६ मन्वन्तरों का व्यतीत काल	१,८५,१४,१३,७६०	मानव-वर्ष
वैवस्वत मनु की २७ चतुर्युगियाँ	११,६६,४०,०००	,, ,,
वैवस्वत मनु की २८वीं चतुर्युगी का सतयुग	१७,२८,०००	,, ,,
,, ,, ,, त्रेतायुग	१२,९६,०००	,, ,,
,, ,, ,, द्वापर युग	८,६४,०००	,, ,,
,, ,, कलियुग का व्यतीत काल	५,०७७	,, ,,
कुल व्यतीत काल	१,९७,१९,४६,८३७	,, ,,

यह माना जाता है कि वैवस्वत मनु में यहाँ पहले वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। पीछे कृमि, कीट, पतंग उत्पन्न हुए। फिर पशु-पक्षी बने और वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में मनुष्य उत्पन्न हुए। यह आज से लगभग ३९ लाख वर्ष पहले हुआ था।

हमारा मत है कि मानव-सृष्टि होते ही वेद, जो छन्द-रूप में प्रसारित पहले से ही हो रहे थे, ऋषियों ने सुने और मानवी भाषा में कहे।

वर्तमान विज्ञान तो यह मानता है कि मनुष्य पृथिवी पर २२ हज़ार वर्ष पहले उत्पन्न हुआ था।

भारतीय शास्त्रों का मत है कि वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में (लगभग उनतालीस लाख वर्ष पूर्व) वेद ऋषियों ने मन में सुने और वर्तमान वैदिक भाषा में कहे।

वेदों का स्वरूप

हम यह बता चुके हैं कि वेद परमात्मा की प्रेरणा से अग्नि, सूर्यादि देवताओं द्वारा तरंगों के रूप में छन्दों में प्रसारित हुए। वे ऋषियों ने सुने और उन्होंने मानव-सृष्टि के आदि में वेदवाणी में कहे।

इसी वाणी का वर्णन वेद में एक अन्य स्थान पर भी है। यहाँ अधिक व्याख्या से है। वेद-मन्त्र हैं—

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥

—ऋ० ८-१००-१०,११

ये वेद-मन्त्र राष्ट्रभाषा अर्थात् जनता की भाषा के विषय में हैं। वेद इस बात को मानता है कि मनुष्य को जब तक कोई शिक्षा देनेवाला न हो तब तक यह कुछ भी सीख नहीं सकता। अतः जब आरम्भ में अमैथुनीय मनुष्य-सृष्टि हुई जो वाणी सीखने की बुद्धि और सामर्थ्य रखती थी तो परमात्मा ने उसे वाणी सिखाने का प्रबन्ध भी किया। आठवें मण्डल के सौवें सूक्त का देवता इन्द्र है, अर्थात् परमात्मा ने वाणी सिखाने का प्रबन्ध कैसे किया, यह यहाँ वर्णन किया गया है।

मन्त्र के अर्थ हैं—यत् वाक् वदन्ति अविचेतनानि=जब अज्ञात अर्थों वाली वाणी। मन्द्रा राष्ट्री देवानाम् निषसाद वदन्ति=आनन्दित करती हुई दिव्य शक्तियों में बैठ जाती है तब वह जनभाषा का रूप बोलती है। चतस्रः ऊर्जं दुदुहे=तब वह शक्तिरूप चारों दिशाओं में दुही जाती है, अर्थात् लोग

उसका दोहन करते हैं। पयांसि=दूध समान। क्व स्वित् अस्याः परमं जगाम =कहाँ तक इस (वाणी) का अन्त गया है ॥१०॥

देवाः देवीं वाचम्—विद्वान् लोगों ने इस दिव्य वाणी को। अजनयन्त =प्रकट किया। विश्वरूपाः=इस समस्त रूपों वाली को। पशवः वदन्ति= जनसाधारण बोलते हैं। सा नः मन्द्रा=वह वाणी हमें (मनुष्यों को) प्रसन्नता प्रदान करती है। इषं ऊर्जं दुहाना=वह वाणी शक्ति देनेवाली टपकती है। धेनुः=गाय के चार स्तनों (चार वेदों) से। अस्मान् सुष्टुत अप एत=हमको स्तुति की हुई प्राप्त हो ॥११॥

इसका अभिप्राय यह है कि जनभाषा मनुष्य को पहले प्राप्त हुई और वेद-ज्ञान पीछे ऋषियों ने छन्दों में उच्चारण होता सुना और फिर मनुष्यों को इस राष्ट्रीय भाषा में बताया।

दोनों में कितने समय का अन्तर रहा होगा, वर्णन नहीं किया गया। परन्तु यह लाखों वर्ष का नहीं होगा। सम्भवतः अमैथुनीय मानवी सृष्टि को पहले राष्ट्रीय भाषा मिली और पीछे तुरन्त ही वेदवाणी मिली।

एक बात यहाँ स्पष्ट है कि दोनों (राष्ट्रीय वाक् और वेद-ज्ञान) पहले देवताओं के द्वारा ही प्रसारित हुए, पीछे ऋषियों द्वारा मनुष्यों को मिले।

यहाँ कुछ थोड़ा-सा इस राष्ट्रीय भाषा और वेद-भाषा के विषय में बता देना ठीक होगा। यह भाषा पदों में आयी। पद अक्षर-समूह ही होते हैं। परन्तु अक्षर-अक्षर करके नहीं आयी; पद-पद करके आयी।

इस विषय में भी एक वेद-मन्त्र है—

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥

—ऋ० १-१६४-२४

अर्थात्—गायत्रेण=व्योम की प्राणादि शक्तियों द्वारा। प्रति मिमीते= बार-बार कहा जाता है। अर्कम्=मन्त्र को। अर्केण=वाणी द्वारा। त्रैष्टुभेन साम वाकम्=त्रैष्टुभ छन्द में साम की वाणी को। वाकेन वाकम्=वाणी से वेद को। द्विपदा चतुष्पदा=दो पदों में, चार पदों में। मिमते सप्त वाणीः= सातों छन्द कहे जाते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि अक्षरेण=न नाश होनेवाले पदों में सातों छन्द कहे गये हैं।

मन्त्रों में हम देखेंगे कि एक पद, द्विपद, चतुष्पद हैं अर्थात् बहुत बड़े-बड़े पद नहीं हैं, जिनमें बड़े-बड़े समास हों और भाषा की विषमता का प्रदर्शन हो।

हमारा यह कहना है कि वेदभाषा अति सरल है। इसमें वह क्लिष्टता नहीं जो मध्यकालीन प्राकृत भाषा में पाई जाती है।

उदाहरण के रूप में न्याय-दर्शन के एक सूत्र को देखिये—

सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमकालातीता (न्या० द० १-२-४)

यह एक पद है।

अब शंकराचार्य को लीजिये। ब्रह्मसूत्र-भाष्य का एक पद है—

…वेदाध्ययनप्रतिषेधस्तदर्थज्ञानानुष्ठानयोश्च…

(वे० द० शंकर भाष्य १-३-३८ में से)

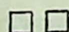
यह वैदिक शैली नहीं। प्रायः मन्त्र द्विपद और चतुष्पद में हैं। एक-पदी वाक्य तो बहुत हैं।

अतः वेदार्थ समझना इतना कठिन नहीं जितना कि दर्शनशास्त्र अथवा शंकर-भाष्य को समझना है।

परन्तु वेदों में भी शब्दार्थ तो समझना होगा और विषय का भी निरीक्षण करना होगा। यह तो किसी भी ग्रन्थ को पढ़ने के लिए आवश्यक है। शब्दों के अर्थ और फिर जहाँ शब्द अनेकार्थवाची हों वहाँ वर्णित विषय के अनुसार शब्दार्थ करने आवश्यक होते हैं।

आज बहुप्रचलित आंग्ल भाषा में भी यही है। उदाहरण के रूप में आंग्ल भाषा का एक शब्द क्रिस्प (crisp) लें। जब तो वस्तु की अवस्था का कथन हो तो इसके अर्थ होंगे—मुरमुरा, भुरभुरा, खस्ता। जहाँ वाणी के सम्बन्ध में यह शब्द आयेगा वहाँ इसके अर्थ होंगे—सुस्पष्ट, विशद। जहाँ मनुष्य की अथवा किसी जन्तु की गति के साथ सम्बन्ध आयेगा वहाँ इसका अर्थ होगा—फुर्तीला, स्फूर्तिदायक। इसका प्रयोग बालों के सम्बन्ध में आये तो अर्थ होंगे—घुँघराले, कुंचित, लहरदार।

यही बात वेद-भाषा की है।



गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र (उर्दू)	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४५.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र)	१५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

दो नई पुस्तकें

सामवेद सूक्तिसुधा	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका एक सरल अध्ययन	प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००

बहुत दिनों बाद दुबारा प्रकाशित

वेद भगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल एम० ए०	६.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
दिव्य दयानन्द	,,	३.००
चतुर्वेद शतकम्	,,	८.००
कर्त्तव्यदर्पण	म० नारायण स्वामी	४.००
गीत भण्डार	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	४.००

एक विशिष्ट प्रकाशन

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द २५.००

सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण) १०१.००

दयानन्द चित्रावली — रामगोपाल विद्यालंकार ८.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रसारित

अन्य प्रकाशन

वैद्य गुरुदत्त

वेद प्रवेशिका	६.००
सांख्य दर्शन	४०.००
विश्वेदेवा:	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००
इतिहास की परम्परा	१२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	१८.००
भारत में राष्ट्र	४.००
ब्रह्मसूत्र I	३०.००
,, II	२४.००
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	५.००
धर्म तथा समाजवाद	१४.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
विज्ञान और विज्ञान	८.००
श्रीमद्भगवतगीता	२४.००
दो लहरों की टक्कर (दो खण्ड)	६६.००

बलराज मधोक

भारत में लोकतन्त्र	१२.००
भारत की सुरक्षा	६.००
भारत की विदेशनीति	६.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
भारत और संसार	८.००
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी	१०.००
पाकिस्तान का आदि और अन्त	५.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्याय सन्दोह	१५.००
स्वाध्याय सन्दीप	१०.००
स्वाध्याय संग्रह	४.००
सावित्री प्रकाश [गायत्री]	२.००
सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव	२.००
सन्ध्यालोक	२.५०
ब्रह्मोद्योपनिषत्	२.५०
जीवन की भूलें	१.००

स्वामी योगेश्वरानन्द जी

आत्मविज्ञान	१८.००
ब्रह्मविज्ञान	२०.००
हिमालय का योगी	१०.००
बहिरंग योग	१८.००
निर्गुण ब्रह्म	१२.००
Nirgun Brahma	१५.००
Science of Soul	१८.००
Science of Divinity	२५.००
First Step to Yoga	२५.००
Himalaya Ka Yogi	१५.००

वेदभाष्य

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद के दस मण्डल में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१८.००
,, ,, द्वितीय ,,	१५.५०
,, ,, तृतीय ,,	१४.००
,, ,, चतुर्थ ,,	१२.००
,, ,, पंचम ,,	१४.००
,, ,, षष्ठ ,,	१०.००
,, ,, सप्तम ,,	१७.००
,, ,, अष्टम ,,	१८.००
,, ,, नवम ,,	१२.००
,, ,, दसवां मण्डल भाग I	३०.००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य ही पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	८.००
,, ,, ,, द्वितीय	७.००
,, ,, ,, तृतीय	७.००

ऋग्वेद भाषा भाष्य चतुर्थ	६.००
,, ,, ,, पंचम	७.००
,, ,, ,, षष्ठ	७.५०
,, ,, ,, सप्तम	८.००
,, ,, ,, अष्टम	८.००
,, ,, ,, नवम	६.००
,, ,, दसवां मण्डल I भाग	१५.००
यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	१६.००
,, ,, द्वितीय	२४.००
,, ,, तृतीय	१६.००
,, ,, चतुर्थ	१४.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ खण्डों में महर्षि दयानन्द I	१५.००
भाग II	२५.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में	११६.००
अथर्ववेद ४ ,,	६४.००
यजुर्वेद २ ,,	२४.००
सामवेद १ ,,	२०.००

दर्शन ग्रन्थ

आचार्य श्रीराम कृत

योग	५.७५
वैशेषिक	५.७५
सांख्य	५.७५
न्याय	५.७५
वेदान्त	५.७५
मीमांसा	७.००
वेद महाविज्ञान	१२.००

उपनिषद्

नारायण स्वामी

ईश	०.६०	केन	०.६०
कठ	१.००	प्रश्न	०.६०
मुण्डक	०.५०	माण्डूक्य	०.२५
ऐतरेय	०.५०	तैत्तिरीय	१.५०

गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	७.००
शंकर भाष्यालोचन	७.००
जीवन चक्र	७.००
धर्म तर्क की कसौटी पर	२.००
सन्ध्या क्या क्यों कैसे	३.००
भारतीय पतन और उत्थान की कहानी	२.५०
आर्य स्मृति	३.००
भगवत् कथा	१.५०
सनातन धर्म	१.००
धर्म सुधासार	०.६०
राष्ट्र निर्माता स्वामी दयानन्द	१.००
कम्यूनिज़्म	३.००
Philosophy of Dayanand	१५.००
Life & Teaching	४.००
Vedic Culture	५.००

विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०

उपनयन वेदारम्भ संस्कार	०.६०
मृतक संस्कार	०.६०
चूड़ाकर्म ,,	०.६०
अन्नप्राशन ,,	०.६०
नामकरण ,,	०.७०
विवाह पद्धति	१.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा	१५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे (छोटा) ,,	४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,,	६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	२.००
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू में)	२.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

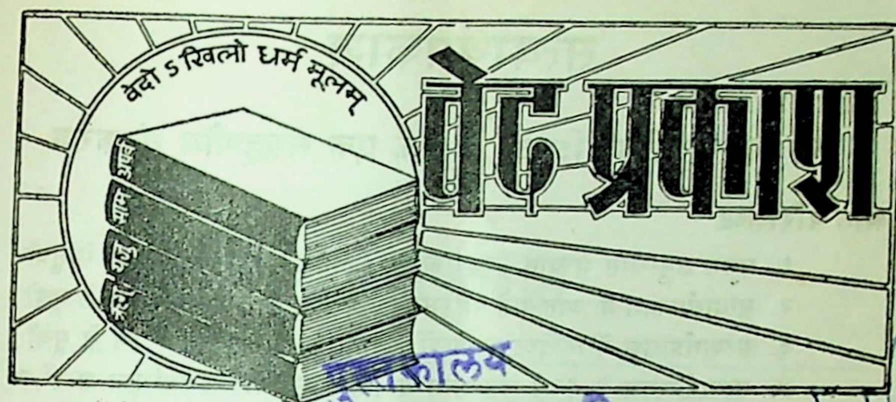
स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द**	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।

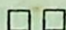


नैरोबी (पूर्वी अफ्रीका) में आर्य सम्मेलन

आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका नैरोबी में २१ से २४ सितम्बर तक हीरक जयन्ती मना रहा है। इस अवसर पर सारे संसार से आर्य भाई वहाँ एकत्र होंगे।

भारत से भी लगभग दो सौ यात्री वहाँ जायेंगे। सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा नई दिल्ली ने हवाई जहाज के किराये में काफी रियायत का प्रबन्ध किया है। साधारणतः ३३००.०० एक तरफ का किराया है। सभा के प्रयत्नों से ४०००.०० रुपये के लगभग दोनों ओर का किराया लगेगा। जो सज्जन चाहें वे रुपये सभा को भेजकर सीट बुक करा लें।

पासपोर्ट, पी-फार्म, स्वास्थ्य सर्टीफिकेट, चेचक, येलोफीवर के टीके के सर्टीफीकेट की व्यवस्था करनी होगी। प्रस्थान ८, १०, १३, १५ सितम्बर को चार समूहों में होगा।



स्वामी जगदीश्वरानन्द जी भारत वापस

फिजी द्वीप के कोने-कोने में जनता को वेदामृत का पान कराके ३५० व्याख्यान, यज्ञ, और संस्कार करके अनेक व्यक्तियों को वैदिक धर्म में दीक्षित तथा बहुतों का मद्य, मांस और धूम्रपान आदि छुड़ाकर

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१० जुलाई रात्रि २-३० बजे भारत पहुँच गये हैं।

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक १]　　वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया　　[अगस्त, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार　आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

मनुष्य की पाँच इच्छाएँ

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ।।

ऋ० ६ । ४७ । १०

शब्दार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली ! सब सुखों के दाता परमेश्वर ! तू (मह्यम्) मुझे (मृळ) सुखी कर तथा मेरे लिए (जीवातुम्) दीर्घ जीवन (इच्छ) प्रदान कर। मेरी (धियम्) बुद्धि को (अयसः धाराम् न) लोहे=कुल्हाड़ी की धार के समान (चोदय) तीक्ष्ण बना। (त्वायुः) तेरा अभिलाषी, तुझे मन से चाहने वाला (अहम्) मैं (इदम्) यह (यत् किम् च) जो कुछ भी (वदामि) माँगूं, निवेदन करुं (तत्) वह (जुषस्व) मुझे प्रदान कीजिए और (मा) मुझे (देववन्तम्) आस्तिक, भगवद्भक्त दिव्यगुणों से युक्त (कृधि) बनाइए।

व्याख्या—मनुष्य की कुछ स्वाभाविक इच्छाएँ होती हैं। इस मन्त्र में मनुष्य की पाँच इच्छाओं का वर्णन है। हम यहाँ प्रत्येक इच्छा पर कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं—

१. इन्द्र मह्यं मृळ

हे सब सुखों के दाता ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू मुझे सुखी कर।

सुख मनुष्य की पहली स्वाभाविक इच्छा है। संसार का प्रत्येक मनुष्य वरन् प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। भक्त कहता है—

इमं मे वरुण श्रुधी हतमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युराचके ।। ऋ० १ । २५ । १९

हे वरणीय प्रभो ! मैं आत्मरक्षा चाहता हुआ आपको पुकारता हूँ। मुझे आज ही, इसी जीवन में सुखी कीजिए और मेरे दुःखों को दूर कीजिए—देव ! मेरी इस पुकार को सुनो और मुझे शीघ्र सुखी करो।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ —ऋ० ७।८९।४

मैं अथाह जल के मध्य में खड़ा हुआ हूँ फिर भी मुझ स्तोता=स्तुति करने-वाले भक्त को प्यास लगी हुई है। हे संरक्षक प्रभो ! मेरी रक्षा करो। आनन्दघन प्रभो ! मुझे शान्ति प्रदान करो।

सुख प्राप्ति के लिए दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं—

१. हम सदा, सर्वत्र परमात्मा की सर्वव्यापकता का अनुभव करें। जो मनुष्य परमात्मा को अणु-अणु और कण-कण में देखता है, उसे सदा अपने साथ समझता है, वह पाप नहीं कर सकता। जब मनुष्य पापों से बच जाएगा तो उनके फल=दुःखों से भी छूट जाएगा। जब हम सुख की प्रार्थना करें तो मन, वचन और कर्म से बुरा कर्म न करें।

२. सन्तोषी बनें। जिसके जीवन में सन्तोष नहीं है, वह सुखी नहीं हो सकता। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ योग द० २।४२

सन्तोष से सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ सुख का लाभ होता है।

महर्षि मनु का कथन है—

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ —मनु० ४।१२

सुख चाहनेवाला मनुष्य अत्यन्त सन्तोष धारण कर संयमी बने क्योंकि सन्तोष सुख का कारण है और असन्तोष दुःख का कारण है।

परमात्मा हमें धन दे सकता है, सन्तोष नहीं। यह सन्तोष तो हमें स्वयं उत्पन्न करना होगा। सन्तोष का अर्थ आलसी होना नहीं है। हाथ-पर-हाथ धरकर निठल्ले बैठने का नाम भी सन्तोष नहीं। सन्तोष का अर्थ पूर्ण पुरुषार्थ करके जो फल मिले उसके सम्बन्ध में कोई गिला न करके उसे स्वीकार कर लेना और आगे फिर पुरुषार्थ करना।

२. जीवातुम् इच्छ

प्रभो ! मुझे दीर्घ जीवन प्रदान कीजिए। दीर्घ जीवन किसलिए ? जिससे मैं अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा कर सकूँ।

वेद के अनुसार हमारी आयु है सौ वर्ष। अथर्ववेद में कहा है—

जीवेम शरदः शतम् । —अथर्व० १९।६७।२

हम सौ वर्ष तक जीएँ।

मानव आयु सौ वर्ष की है परन्तु पुरुषार्थ, शुभकर्म, सदाचार और ओषधि-सेवन आदि द्वारा उसे बढ़ाया जा सकता है। संसार में मरना कोई नहीं चाहता। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी और चींटी जैसा क्षुद्र प्राणी भी मरना नहीं चाहता। मनुष्य की अवस्था तो यह है कि वह शरीर को त्यागकर इन्द्र पद भी नहीं पाना चाहता।

एक माता की पुत्री बीमार हो गई। माता ने प्रार्थना की—मैं बूढ़ी हूँ, अतः मौत तू मुझे उठा ले और यह पुत्री जीवित हो जाए। कहते हैं, उसी समय मृत्यु वहाँ प्रकट हो गई (मृत्यु कोई वस्तु नहीं है जो प्रकट हो, यह तो समझाने के लिए एक दृष्टान्त है) और माता से कहा, "चलो मैं तुम्हें लेने आई हूँ।" माता बोली—"वह पड़ी है, उसे उठा ले जा।"

अथर्ववेद में तीन शब्दों में गागर में सागर भर दिया है—

अमन्त्रिर्भवामृतोऽतिजीवः। —अथर्व० ८।२।२६

हे मानव ! तू अक्षीण=हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ, अमर और दीर्घजीवी बन।

परन्तु दीर्घ जीवन का कुछ उपयोग भी होना चाहिए। उसका कुछ उद्देश्य होना चाहिए। कार सुन्दर है, सुदृढ़ है परन्तु जाना कहीं नहीं है तो ऐसी कार का क्या लाभ ? प्रत्येक वस्तु के तीन गुण बहुत आवश्यक है—१. उपयोग, २. दृढ़ता और ३. सौन्दर्य। इनमें सबसे प्रमुख है उपयोग। इस शरीर का उपयोग क्या है ? यह शरीर मिला है हमें प्रभु प्राप्ति के लिए। वेद में कहा है—

इयं ते यज्ञिया तनूः। —यजु० ४।१३

हे मानव ! तुझे तेरा शरीर प्रभु-प्राप्ति के लिए मिला है।

जिस कार्य के लिए यह शरीररूपी रथ हमें मिला है, हम इसे उसी उपयोग में लगा दें। आज तो हम अपने जीवन के उद्देश्य को ही भूल गए हैं। हमारी अवस्था तो यह है—

आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।

३. चोदय धियमयसो न धाराम्

परमात्मन् ! मेरी बुद्धि को कुल्हाड़ी की धार के समान तीक्ष्ण बना।

संसार में बुद्धिबल सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि के बल पर मनुष्य ने क्या कुछ कर डाला है। बुद्धि के बल से मनुष्य पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ता है और मछलियों की भाँति पानी में तैरता है। बुद्धि वैभव से मनुष्य चन्द्रलोक तक पहुँच गया है और मंगल-गृह में जाने की तैयारी कर रहा है। बुद्धि की सहायता से मनुष्य सिंह जैसे हिंसक पशुओं को पकड़कर उन्हें सरकस में नचाता है। वैदिक धर्मी उत्तम दन्त चिकित्सक (good dentists) नहीं माँगता अपितु वह तो—**अशोणा दन्ताः।** अथर्व० १६।६०।१ नीरोग दाँत माँगता है। वैदिक धर्मी अच्छे डाक्टर नहीं अच्छे शरीर माँगता है। वैदिक धर्मी यह प्रार्थना नहीं करता—O god ! give me the daily bread—हे ईश्वर ! तू मुझे आज की रोटी दे। वह तो यह प्रार्थना करता है—**धियो यो नः**

प्रचोदयात् । (यजु० ३६।३) हे प्रभो ! तू हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ मार्ग पर चला। **वैदिक धर्मी प्रार्थना करता है—**

मेधां मे वरुणो ददातु । यजु० ३२।१५

वरणीय परमात्मा मुझे मेधा = धारणवती बुद्धि प्रदान करे ।

महात्मा विदुर ने बुद्धि की महत्ता का वर्णन करते हुए बहुत सुन्दर कहा है—

न देवाय दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्तितम् ॥

—महा० उद्यो० ३५।४०

देवता लोग ग्वालों की भाँति डण्डा लेकर किसी की रक्षा नहीं करते अपितु **वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं । और—**

यस्मै देवा प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धि तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥

महा० उद्यो० ३४ । ८१

देवता लोग जिसका पराभव करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मों पर ही अधिक दृष्टि रखता है ।

बहुत-से मतों में बुद्धि की अवहेलना की गई है । वैदिक धर्म में तर्क को ऋषि कहा गया है । हमें सत्य को जानने के लिए बुद्धि का उपयोग करना चाहिए । बुद्धि का उपयोग न करने पर उसमें जंग लग जाएगा ।

४. यत् किचाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व

तुझे चाहनेवाला, तेरा अभिलाषी मैं जो कुछ माँगूँ, वह मुझे प्रदान कीजिए ।

भगवान् को चाहनेवाला भक्त वह वस्तु माँगता है जो प्रभु को प्यारी है । भक्त **की भावना तो यह होती है—**

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है ।
यहाँ यूँ भी वाह वाह है और वूँ भी वाह वाह है ॥

मत-मतान्तरों में हम देखते हैं कि भक्त अड़ जाता है । लीजिए एक अड़ियल भक्त की भावना देखिए—

तारिहों न शम्भो तो हम अम्ब की अदालत में,
नेह को वकील कर नालिश लगाएँगे ।
वादा सदा तारबेको कीन्हों त्रिपुरारी आप,
अब इन्कार यही दावा लिखवाएँगे ।
दावा जो जवाब में कहोगे यह पातकी है,
तो अनेक पापिन नजीर दिखलाएँगे ।
ऐसे हू पै नहिन जो तारोगे दिगम्बर तो,
कोष करुणा को सबै कुरक कराएँगे ॥

ये भावनाएँ अवैदिक हैं। प्रभु के भण्डार तो खुले हैं, वह तो निरन्तर दे रहा है। कमी हमारी है। हम लेते नहीं हैं। हमारी अवस्था सीपी की भाँति है। एक कवि ने समुद्र पर व्यङ्ग कसते हुए कहा था—

बस समुद्र देख ली तेरी दरयाये दिली।[1]
तिष्णा लब[2] रखा सदफ[3] इक बूंद पानी के लिए॥

समुद्र ने भी एक कवि के शब्दों में उत्तर दिया—

मुँह में था मोती सदफ के वो न गिर जाए कहीं।
मुंह नहीं खोला सदफ ने मेरे पानी के लिए॥

परमात्मा देव है, वह निरन्तर देता है अतः भक्त को प्रेम में मग्न होकर यह प्रार्थना करनी चाहिए—

न यह चाहता हूँ न वह चाहता हूँ।
फ़कत[1] अपने रब[2] की रज़ा चाहता हूँ॥

५. कृधि मा देववन्तम्

प्रभो! मुझे आस्तिक, भगवद्भक्त और दिव्यगुणों से युक्त देव बना दे।

जीवन का उद्देश्य है उन्नति करना, ऊँचा और ऊँचा उठना। हम मनुष्य से देव बने। देव बनने का उपाय क्या है? प्राणियों पर दया करो, दान दो और इन्द्रियों का दमन करो।

हम प्रभुभक्त बनें, आस्तिक बनें, प्रभु-उपासक बनें। उपासना क्या है? उपास्य के गुणों के अपने जीवन में धारण करना। जैसे लोहे का गोला अग्नि में जाकर अग्निमय हो जाता है, उसी प्रकार उपनिषद् कहती है—

यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। —मुण्डक० ३।२।९

जो उस परम ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म के समान हो जाता है।

इस बात को एक उर्दू कवि ने कहा है—

खुदा की है यह इबादत खुदा-सा बन जाऊँ।

परमात्मा की सच्ची भक्ति, सच्चा नाम स्मरण क्या है, इस विषय में भक्त-शिरोमणि महर्षि दयानन्द ने बहुत सुन्दर लिखा है—

"जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण-कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।"

—सत्यार्थ० सातवां समुल्लास

परमात्मा को गुणों को जीवन में धारण करके देव बनो।



१. उदारता। २. प्यासा। ३. सीप।

वीरभोग्या वसुन्धरा

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥

—ऋ० ७ । २९ । २

शब्दार्थः—(ब्रह्मन्) हे चतुर्वेदवित् वेदज्ञ विद्वन् ! (वीर) शूरवीर ! तू (ब्रह्मकृतिम्) परमेश्वर द्वारा निर्मित संसार को (जुषाणः) प्रेमपूर्वक भोगते हुए (हरिभिः) उत्तम गुणों से युक्त साथियों के सहित (तूयम्) शीघ्र (अर्वाचीनः) हमारे सम्मुख (याहि) आ । (अस्मिन्) इस (सवने) संसाररूप यज्ञ में (नु सु मादयस्व) स्वयं प्रसन्न रह और (नः) हम लोगों को भी आनन्दित कर । (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेद-वचनों को (उप श्रणवः) उत्तम प्रकार तर्क-वितर्क सहित श्रवण कर ।

व्याख्या—मन्त्र में कई दिव्य सन्देश और शिक्षाएँ हैं । हम प्रत्येक पर कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं—

१. ब्रह्मकृतिं जुषाणः

परमेश्वर द्वारा निर्मित यह संसार भोगने योग्य है । यह सृष्टि परमेश्वर की अति मनोरम, अद्भुत, सुन्दर और वैज्ञानिक रचना है । यह संसार त्याज्य नहीं है अपितु भोग्य है । वेद का आदेश है—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।—यजु० ४० । १

परमात्मा द्वारा प्रदत्त पदार्थों को त्याग भाव से भोगो ।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

भोगापवर्गार्थं दृश्यम् । यो० २ । १८

यह दृश्य=संसार भोग और मोक्ष दोनों को देनेवाला है ।

महाभारत युद्ध के पश्चात् लोगों में अनेक दूषित मनोवृत्तियाँ आईं । अनेक महन्तों, पण्डे-पुजारियों और पाखण्डियों ने इस प्रकार की घोषणाएँ कीं—यह संसार जंजाल है, यह मनुष्य को जकड़ लेता है अतः संसार से भागो । शरीर को मारो, मन को मारो आदि ।

एक व्यक्ति साबुन और तेल लगाकर और शरीर को मल-मलकर स्नान कर रहा था । उसी समय एक वेदान्ती उधर से निकला और उसे कहने लगा—"इस नर कंकाल को क्या धोता है, अन्त में तो एक दिन मिट्टी में मिल जाना है ।"

इन वेदान्तियों की अवस्था बड़ी विचित्र है । ये संसार के लोगों को उपदेश देते हैं—

रूखी सूखी खाय के ठण्डा पानी पी ।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जी ॥

परन्तु स्वयं बढ़िया खाते हैं, बढ़िया पहनते हैं, और मौज मारते हैं ।

ऐसे पाखण्डियों से सावधान रहना चाहिए । संसार का कोई भी मनुष्य संसार से बाहर नहीं जा सकता । अतः प्रीतिपूर्वक इसका भोग करना चाहिए ।

२. ब्रह्मन् वीर

संसार त्याज्य नहीं भोग्य है परन्तु इसका भोग कौन कर सकता है। वेद दो सम्बोधन देकर बताता है जो ज्ञानी और वीर है वही संसार को भोग सकता है। अतः मनुष्य ज्ञान और शौर्य, बुद्धि और शक्ति—दोनों को प्राप्त करना चाहिए। जातकर्म-संस्कार में पिता पुत्र को यही तो कहता है—

अश्माभव परशुर्भव । आश्व० गृह्य० १ । १५ । ३

शरीर से पत्थर के समाज दृढ़ और बुद्धि में कुल्हाड़ी के समान तीक्ष्ण बनो।

वेद में कहा है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ —यजु० २० । २५

जिस राष्ट्र में ब्रह्म शक्ति और क्षात्रबल दोनों संयुक्त होकर साथ-साथ विचरते हैं, जिस राष्ट्र के सुनागरिक अपने मस्तिष्क में ज्ञान दीप्ति और हृदय में अदम्य उत्साह अग्नि को प्रज्वलित करके सर्वत्र विचरते हैं, मैं उसी राष्ट्र को पुण्य लोक अथवा भाग्य-शाली राष्ट्र समझता हूँ।

इसी मन्त्र की व्याख्या करते हुए गीता के अन्त में संजय कहते हैं—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धराः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥—गीता० १८ । ७८

जहाँ ब्रह्मशक्ति के प्रतीक योगेश्वर श्रीकृष्ण और क्षात्रबल के मूर्तिमान् स्वरूप धनुर्धारी अर्जुन हों, वहाँ श्री, विजय, भूति और ध्रुवा नीति ये सदा विराजते हैं, य मेरा मत है।

पराशरस्मृति १ । ५९ में कहा है—**वीरभोग्या वसुन्धरा**। यह संसार वीरों के भोगने योग्य है। परन्तु वीरता के साथ ज्ञान की आवश्यकता है। जब वीर अर्जुन युद्ध छोड़कर भागने लगा था, तब श्रीकृष्ण ने उसे ज्ञान प्रदान कर उसे युद्ध में प्रवृत्त कराया था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन में ज्ञान और शक्ति दोनों का ही समन्वय किया था। जहाँ उन्होंने तर्क के तीरों से काशी के पण्डितों का मान मर्दन किया वहाँ उन्होंने कर्णसिंह की तलवार के दो टुकड़े कर दिये।

३. अर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्

उत्तम गुणों से युक्त साथियों के साथ हमारे पास आओ।

अपने साथी बनाओ। कैसे साथी ? जो उत्तम गुणों से युक्त हों। जो शील से युक्त हों, मर्यादाओं में बँधे हों और सदाचार से सुभूषित हों। ऐसे साथियों को तैयार करके निकल पड़ो जनता-जनार्दन की सेवा के लिए। महर्षि दयानन्द ने ठीक ही लिखा है—

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" —आर्यसमाज का नवाँ नियम

आपके बच्चे गाली न दें इसके लिए आपको दूसरों के, मोहल्ले के बच्चों को ठीक करना होगा, उन्हें सभ्य और सुशिक्षित करना होगा। आप बीमार न हों, इसके लिए आपको अपने घर की सफाई के साथ मोहल्ले की भी सफाई करनी होगी। दूसरों को उन्नत करो, दूसरों को उठाओ। वेद का सन्देश है—

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥

—ऋ० १०।१३७।१

हे विद्वान् तेजस्वी लोगो! आप नीचे गिरे हुए को, पतित को ऊपर उठाओ। हे गुणी जनो! बार-बार उठाओ। हे ज्ञानी जनो! अपराध और पाप करने वाले को भी ऊपर उठाओ। हे उदार पुरुषो! पतितों को बारम्बार उठाकर, उन्हें गले लगाकर उन्हें जीवन प्रदान करो।

जन-जन के पास पहुँचो, उन्हें वेद का सन्देश दो। जो बिछुड़े हैं उन्हें गले लगाओ जो गिरे हैं उन्हें ऊँचा उठाओ। घृणा और द्वेष मत करो। सभी से प्रेम करो।

४. अस्मिन् सवने नु सु मादयस्व नः

इस संसार रूपी यज्ञ में स्वयं प्रसन्न रहो और दूसरों को प्रसन्न करो।

कैसी भी स्थिति और परिस्थिति हो सदा हँसते और मुस्कराते रहो। यह तो संसार है। यहाँ सुख और दुःख तो आते ही रहते हैं। किसी ने सुन्दर कहा है—

सुखस्यान्तरं दुःखं दुःखस्यान्तरं सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्॥

सुख के बाद दुःख होता है और दुःख के बाद सुख होता है। न तो मनुष्य नित्य दुःख पाता है और न नित्य सुख पाता है।

किसी उर्दू के कवि ने भी सुन्दर कहा है—

फलक[1] देता है जिसको एश[2] उसको ग़म भी होते हैं।
जहाँ बजते हैं नक्कारे वहाँ मातम[3] भी होते हैं॥

एक हिन्दी भाषा के कवि ने कहा—

संसार में किसका समय है एक-सा रहता सदा।
है निशि-दिवा-सी घूमती सर्वत्र विपदा सम्पदा॥
जो आज एक अनाथ है, नर-नाथ कल होता वही।
जो आज उत्सवमग्न है कल शोक से रोता वही॥

जब दुःख आएँ तो—Hide it in the cave of your heart but walk in the street with a smiling face. उन दुःखों को अपने हृदय में छिपा लो और गलियों में मुस्कराते हुए मुखमण्डल से निकलो।

सदा हँसते और मुस्कराते रहो। रोओ कभी मत। महर्षि दयानन्द जयपुर से हरद्वार जाने लगे तो भक्त रोने लगे। स्वामीजी ने कहा—"हमने रोने का नहीं हँसने

१. आकाश, यहाँ भाग्य, २. विलास सामग्री, ३. शोक।

का उपदेश दिया है।" वेद भी हँसने का, नाचने और गाने का, सदा प्रसन्न और आनन्दित रहने का उपदेश देता है।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥

—ऋ० १०। १८। ३

हम दीर्घ और अति उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हुए नृत्य, हास्य, आनन्द और प्रमोद प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ मार्ग पर अग्रसर हों।

और देखिए—

स्योनाद् योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥

—अथर्व० १४। २। ४३

सुखकारी सेजों से उठते हुए परस्पर हँसी-विनोद युक्त होकर तेज और बल से आनन्दयुक्त होते हुए उत्तम इन्द्रियों अथवा गौओं से सम्पन्न तथा उत्तम पुत्रों से युक्त उत्तम घर में—वर-वधू उत्तम जीवन को बिताते हुए विविध रूप से प्रकाशमान उषायों को व्यतीत करें।

वेद के अनुसार तो मनुष्य की सदा यह भव्य भावना होनी चाहिए—

विश्वदानीं सुमनसः स्याम। —ऋ० ६। ५२। ५

हम सदा पुष्प की भाँति खिले हुए, सुप्रसन्न रहें।

५. इमा ब्रह्माणि उप शृण्वः

तू तर्क-वितर्क पूर्वक वेद वचनों को सुन। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा—

"वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

प्रत्येक आर्य को अपने परम धर्म का पालन करना चाहिए। स्वयं वेद पढ़ो और दूसरों को पढ़ाओ। वेद सुनो और दूसरों को सुनाओ। महर्षि मनु कहते हैं—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनु० २। ६

ऋग्वेदादि चारों वेद सम्पूर्ण धर्मों के मूल हैं, धर्म के विषय में परम प्रमाण हैं।

वेद का अर्थ है ज्ञान। वेद में तृण से लेकर ब्रह्मपर्यन्त सभी ज्ञान-विज्ञान दिया हुआ है। ज्ञान की बातें सुनने से कल्याण ही होता है। वेद कठिनाइयों में हमें मार्ग दिखाता है। जब हम गिरने लगते हैं तो हमें ऊपर उठाता है। देद हमें निराशा से बचाता है, हमें उद्बोधन देकर सावधान करता है। वेद का स्वाध्याय हमारे जीवन में नव-चेतना और शक्ति का संचार करता है। ऐसे वेद का खूब पठन-पाठन, श्रवण और मनन होना चाहिए। वेद के शब्दों में हमारी यह भावना होनी चाहिए—

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ ऋ० १।३८।१४

मैं वेद मन्त्रों से अपना मुख भर लूं, वेद मन्त्रों को खूब कण्ठस्थ कर लूं। फिर जैसे मेघ सर्वत्र वृष्टि करता है मैं भी वेद का सर्वत्र प्रचार और प्रसार करूँ। मैं स्वयं वेदमन्त्रों का गान करूँ और दूसरों से गवाऊँ। □

उपासना-यज्ञ की सामग्री

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः कः आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगंम् किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥

—ऋ० १०।१३०।३

शब्दार्थः—(यत्) जब (विश्वे देवाः) सब देव, समस्त विद्वान् लोग (देवम्) परम देव परमात्मा की (अयजन्त) उपासना करते हैं तब उस उपासना यज्ञ का (प्रमा का आसीत्) परिमाण, इयत्ता, Measure क्या था ? और (प्रतिमा) उस यज्ञ को मापने का साधन क्या था ? (निदानम् किम्) उस यज्ञ का कारण क्या था ? वह यज्ञ किस लिए आरम्भ किया गया था, उस यज्ञ का इष्ट क्षेत्रफल क्या था ? (आज्यम् किम् आसीत्) उस यज्ञ में उस परम फल तक पहुँचने के लिए घृत के सदृश क्या वस्तु थी। (परिधिः कः आसीत्) उस यज्ञ की परिधि क्या थी ? यज्ञशाला की सीमा क्या थी ? (छन्दः किम् आसीत्) गायत्री आदि छन्दों की भाँति उस यज्ञ में कौन से छन्द प्रयुक्त थे ? (प्रउगम् उक्थम् किम्) प्रयोग में लाने योग्य, क्रिया में लाने योग्य प्रशंसनीय बातें क्या थी ?

व्याख्या—जिस सूक्त से यह मन्त्र लिया गया है, वहाँ आगे और पीछे के मन्त्रों में इन प्रश्नों का उत्तर कहीं नहीं है। यह मन्त्र वेद का एक कूट मन्त्र है। संस्कृत साहित्य में भी कूट श्लोक बहुत हैं। कूट श्लोकों में भी अनेक प्रकार की शैलियाँ हैं। लीजिए, मन्त्र की व्याख्या से पूर्व भूमिका रूप में दो-चार कूट श्लोकों का रसास्वादन कीजिए।

कस्तूरी जायते कस्मात् को हन्ति करिणां कुलम् :
किं कुर्यात् कातरो युद्धे मृगात् सिंहः पलायनम् ॥

इस श्लोक के तीन चरणों में तीन प्रश्न हैं और अन्तिम चरण में क्रमशः उनके उत्तर हैं। प्रश्न और उत्तर निम्न हैं—

१. कस्तूरी किससे उत्पन्न होती है ? उत्तर है—मृग से ।
२. हाथियों के कुल का संहार कौन करता है ? सिंह ।
३. कायर युद्ध में क्या करता है ? युद्ध से भाग जाता है।

इस दूसरी शैली का कूट श्लोक देखिए—

वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजस्
त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी
जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः ॥

वृक्ष पर निवास करता है परन्तु पक्षी नहीं है। तीन नेत्रों वाला है परन्तु शिवजी नहीं है। वल्कल वस्त्र पहनता है परन्तु सिद्ध योगी नहीं है। उसमें जल भरा हुआ है परन्तु वह न तो घड़ा ही है और न बादल है। बताओ, वह क्या है ? इस पहेली का

उत्तर श्लोक में नहीं है, उत्तर हमें ढूँढना है। आप उत्तर खोजिए और उत्तर न मिले तो नीचे देखिए।[1]

हिन्दी भाषा में भी ऐसी अनेक पहेलियाँ हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पीली है बेसन की नहीं बनाते हैं।
खाने की वो चीज नहीं पर खाते हैं।

अपनी बुद्धि को दौड़ाइए और उत्तर ढूँढिए। दौड़ते-दौड़ते बुद्धि थक जाए तो नीचे उत्तर पढ़ लीजिए।[2]

प्रस्तुत वेदमन्त्र में जो प्रश्न हैं, जो पहेलियाँ हैं, उनके उत्तर हमें खोजने हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वेद पर गवेषणा=खोज करके अनेक गुत्थियों को सुलझा दिया है। इस मन्त्र की पहेलियों का उत्तर महर्षि याज्ञवल्क्य ने "शतपथ ब्राह्मण" में दिया हुआ है। आइए, क्रम से प्रत्येक प्रश्न का अवलोकन कीजिए और उसका उत्तर लीजिए।

१. का प्रमा आसीत्

देव लोग जब उपासन यज्ञ करने लगे तब उस यज्ञ का परिमाण, माप क्या था? प्रमा का अर्थ बताते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा—

अन्तरिक्ष लोको वै प्रमा। श० ८।३।३।५

अर्थात् प्रमा का अर्थ है अन्तरिक्ष लोक। शरीर में हृदय को अन्तरिक्ष कहते हैं। हृदय ही उसकी माप है। हृदय जितना पवित्र होगा, उपासना उतनी ही उत्तम होगी। इसीलिए हृदय को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाने पर बल दिया जाता है। किसी कवि ने कहा है—

सफाई कल्ब[3] पैदा कर कि यह आइना[4] है लासानी[5]।
इसी में मुनअक्स[6] ऐ मित्र[7] अक्से यार[8] होता है॥

हृदय को निर्मल बनाकर इसमें विशालता लाओ। यदि हृदय में विशालता नहीं तो कुछ नहीं।

एक़बा[9] तुम्हारे गाँव का मीलों हुआ, तो क्या।
रक़बा तुम्हारे दिल का को दो इञ्च भी नहीं॥

हम सन्ध्या करते हुए पढ़ते हैं—**ओम् महः पुनातु हृदये।** वह महतो-महान् परमात्मा मेरे हृदय में पवित्रता और विशालता प्रदान करे। हम जो कुछ वाणी से कहते हैं उसे आचरण में लाते हुए अपने हृदय को विशाल बनाएँ। हमारे हृदय-मन्दिर में क्षुद्रता, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य की भावनाएँ न हों। प्रभु का दर्शन हृदय-मन्दिर में ही होता है। वह इस हृदय-मन्दिर में ही समा सकता है। किसी कवि ने कहा है—

---

१. नारियल २. गिन्नी [अशरफी, Gold coin] यह पीली होती है, इसमें कोई सन्=वर्ष भी अवश्य पड़ा होता है और इसे परखते हैं खरी है या खोटी। ३. हृदय ४. दर्पण ५. अद्वितीय, ६. प्रतिबिम्बित, ७. प्रेमी ८. प्रभु-दर्शन ९. क्षेत्रफल

अर्जो समा[1] कहाँ तेरी वुस्अत[2] को पा सके।
मेरी ही दिल वो है कि जहाँ तू समा सके ॥

परमात्मा हृदय-मन्दिर में समाता है, परन्तु उस समय जब हृदय-मन्दिर पवित्र और विशाल हो जाता है।

बाइबल में भी कहा है—

Blessed are pure in heart for that shall see god.

—Matthew 5/8

जिसके हृदय शुद्ध एवं पवित्र हैं, वे सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि वे ही प्रभु-दर्शन के अधिकारी हैं।

२. प्रतिमा का आसीत्

उस उपासना यज्ञ को मापने का साधन क्या था ? उस यज्ञ की उपमा किससे दी जा सकती थी। उसकी समता=तुलना किससे की जा सकती थी।

उस यज्ञ को मापने का साधन था प्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ शतपथ ब्राह्मण में इन शब्दों में दिया है—

असौ वै लोकः प्रतिमा ।—शत० ८।३।३५

सुदूर लोक को प्रतिमा कहते हैं।

शरीर में दूरस्थ लोक है मस्तिष्क। जैसे द्युलोक सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की ज्योति से जगमगाता है, ऐसे ही मेरा मस्तिष्क भी ज्ञान-ज्योति से ज्ञान के सूर्य से जगमगाना चाहिए। जैसा ज्ञान होता है, उपासना भी वैसी ही होती है। ज्ञानी काशी और मथुरा में जाकर परमात्मा को नहीं खोजता। वह मन्दिर और मस्जिदों में गिरजा और गुरुद्वारों में भी उसे नहीं ढूंढता। ज्ञानी तो उस परमेश्वर को अणु-अणु और कण-कण में देखता है। इस प्रकार ज्ञान ही उस उपासक यज्ञ को मापने वाला साधन है जितना ज्ञान अधिक होगा उतना ही उपासक चमकेगा।

३. किं निदानम्।

वह उपासना यज्ञ किस लिए आरम्भ किया गया था ?

इस प्रश्न का उत्तर है—**देवा देवमयजन्त**—देवों ने देव बनने के लिए इस यज्ञ को आरम्भ किया देव=विद्वान् देव=परमदेव परमात्मा की उपासना इसलिए करते हैं कि हम भी देव बन जाएँ, हम भी परमात्मा जैसे बन जाएँ। देव बनने के लिए खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय परमात्मा का ध्यान रखना चाहिए।

ध्यान के विषय में 'हनुमन्नाटक' में एक सुन्दर कथानक है। रावण सीता को उठा कर लंका में ले गया। उसने बहुत प्रयत्न किया कि सीता मेरे अनुकूल हो जाए परन्तु सीता राम की ही रट लगाती रही। एक दिन सरमा नामक राक्षसी ने कहा—

---

१. पृथिवी और आकाश २. विस्तार, लम्बाई-चौड़ाई

"हे सखि ! भ्रमर के ध्यान से भ्रमर बने हुए कीट को देखकर मुझे डर लगता है कि श्रीराम के निरन्तर ध्यान से तुममें भी पुरुषत्व ग्रा जाने से फिर उनके साथ तुम्हारा प्रेम कैसे होगा ?" फिर वह स्वयं ही उत्तर देती है—"चिन्ता मत करो ! तुम्हारा निरन्तर ध्यान से श्रीराम में भी स्त्रीत्व ग्रा जाएगा फिर दोनों में प्रेम होगा ही।"

उपासना कब पूर्ण होती है ? उपासना तब पूर्ण होती है जब स्थान बदल जाता है। वेद में कितना सुन्दर कहा है—

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥—ऋ० ८।४४।२३

हे प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय प्रभो ! यदि मैं तू जाऊँ अथवा तू मैं बन जाए तब इस जीवन में तेरे ग्रादेश (मैं तेरे गुणों को धारण करूँ) ग्रौर तेरी हितभावनाएँ (संसार के झमेलों से दूर होकर मैं तेरे साथ मोक्षानन्द भोगूँ) सत्य हो जाएँ।

उपासना की तीन ग्रवस्थाएँ हैं —१. समीपता २. गोद में ग्रौर ३. ग्रन्दर (गर्भ की भाँति) उपासना से जीवन में १. पवित्रता ग्राती है। २. जीवन शक्तिसम्पन्न बनता है, ग्रौर उपासक ३. देव बनता है, ब्रह्म-इव बन जाता है

निदान का ग्रर्थ होता है—नि=निश्चय से दा=काटना। इस उपासना यज्ञ का प्रयोजन यह है कि इस यज्ञ से उपासक की सभी वासनाएँ कट जाती हैं।

४. ग्राज्यम् किम्।

उस यज्ञ में घृत क्या था ? इस का उत्तर है—

सत्यमाज्यम्। शत० ११।३।१।१

उस यज्ञ में सत्य ही घृत था। उपासना सत्य से चमकती है। परमात्मा का उपासक ग्रसत्य थोड़े ही बोलेगा। सत्य भाषण का परिणाम क्या होता है—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। योग द० ३।३६

सत्य में प्रतिष्ठित होने पर मनुष्य की वाणी ग्रमोघ हो जाती है, वह जो कह देता है वैसा ही हो जाता है।

ग्रजातशत्रु युधिष्ठिर का व्रत था—

सत्यं तु मे रक्ष्यतमं न राज्यम्। महा० वन० १२०।२७

मेरे लिए सत्य की रक्षा ही प्रधान है, राज्य की नहीं।

इसका परिणाम क्या था ? युधिष्ठिर **'चक्षुर्हणः'**=दृष्टि उठाकर देखने मात्र से ही दूसरे को भस्म करनेवाले बन गए थे।

५. परिधिः कः ग्रासीत्

उस उपासना यज्ञ की परिधि क्या थी ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं—

गुप्त्यै वा ग्रभितः परिधयो भवन्ति। शत० १।३।४।८

इन्द्रियों की रक्षा ही उस उपासना यज्ञ की सीमा थी। इन्द्रियाँ चञ्चल हैं। ये ग्रपने विषयों की ग्रोर भागती हैं। इन इन्द्रियों को विषयों में न जाने देना—यही उस उपासना यज्ञ की परिधि थी।

६. छन्दः कः आसीत्

गायत्री यज्ञ में गायत्री छन्द की आहुतियाँ होंगी। जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द के मन्त्रों की नहीं। इस उपासना-यज्ञ में कौन-से छन्द का प्रयोग किया गया था ? उत्तर है—

वीर्यं छन्दाᳬसि । तां० ६।९।२६

शक्ति का ही छन्द के रूप में प्रयोग किया गया था। शक्ति होगी तभी उपासना यज्ञ चलेगा। शक्ति से ही उपासना-यज्ञ में उत्साह भी होगा। उपनिषद् में घोषणापूर्वक कहा है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः । मुण्डको० ३।२।४

बलहीन मनुष्य उस परमात्मा को नहीं पा सकता।

सनत्कुमार जी कहते हैं—

बलमुपास्व । छान्दो० ७।८।२

हे नारद ! तू बल की प्राप्ति कर।

७. प्रउगं उक्थं किम्

प्रयोग में, क्रिया में लाने योग्य प्रशंसनीय बात क्या थी ? उत्तर है—

यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यम् । ऐ० १।२९

यज्ञीय कर्मों को ही करना। उत्तम कर्म, परोपकारमय कर्म करना ही सच्ची उपासना है। उपासना और क्रोध दोनों का समन्वय नहीं हो सकता। एक ओर प्रभु-भक्ति करना दूसरी ओर बुरे कर्म करना—इन दोनों का मेल नहीं है। नारायण कवि ने ठीक ही कहा है—

भजन करे नित नेम से पाप करे दिन रात।
नारायण ऐसे भक्त से प्रभु करे नहीं बात॥

अपने कर्मों द्वारा परमात्मा की उपासना करो।

हमारे जीवन में उपासना मूर्त्तरूप धारण करे इसके लिए हम चलना शुरू कर दें फिर एक-न-एक दिन पहुंचेंगे ही।

□

सुखी गृहस्थ

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥

—ऋ० १०।८५।४२

पदार्थ—हे दम्पति ! पति-पत्नी ! तुम दोनों (इह एव) यहाँ ही, इसी घर में (स्तम्) रहो। (मा वि यौष्टम्) तुम कभी पृथक् मत होओ तथा एक-दूसरे से द्वेष मत करो। (पुत्रैः) पुत्रों और (नप्तृभिः) पोतों और नातियों के साथ (क्रीळन्तौ) क्रीड़ा करते हुए, खेलते हुए (स्वे गृहे मोदमानौ) अपने घर में आनन्दपूर्वक रहते हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु को (व्यश्नुतम्) प्राप्त करो, भोगो।

व्याख्या—मन्त्र में गृहस्थियों के लिए पाँच दिव्य उपदेश हैं—१. हे दम्पति तुम दोनों इसी घर में रहो। २. तुम कभी पृथक् मत होग्रो ग्रौर एक-दूसरे से द्वेष मत करो। ३. दोनों पूर्ण ग्रायु को प्राप्त करो। ४. पुत्र ग्रौर नातियों के साथ खेलते हुए। ५. ग्रपने घर में ग्रानन्दपूर्वक रहो। इस प्रकार मन्त्र में पाँच उपदेश हैं। प्रथम चार साधन हैं ग्रौर पाँचवाँ साध्य है।

गृहस्थ में पति-पत्नी ग्रानन्दपूर्वक रहें। घर में ग्रानन्द, उल्लास ग्रौर प्रसन्नता का वातावरण हो। घर में ग्रानन्द का सागर ठाठें मारता हो। परन्तु यह ग्रानन्द ग्रौर प्रसन्नता कैसे प्राप्त होगी ? वेद ने उसके चार साधन बताये हैं—

१. इह एव स्तम्

हे पति-पत्नी ! तुम दोनों इसी घर में रहो। पति-पत्नी एक साथ रहें, ग्रलग-ग्रलग नहीं। यदि पति को चिरकाल तक प्रवास में रहना हो, तो पत्नी को भी साथ ले जाए। गृहस्थ की पूर्णता इस बात में है कि पति-पत्नी साथ-साथ रहें। पति-पत्नी एक-दूसरे के बिना ग्रधूरे हैं। शतपथ ग्रादि ब्राह्मणों में कहा है—**पुरुषो वै यज्ञः।** श० १।३।२१ ग्रर्थात् पुरुष यज्ञ है। फिर तैत्तरीय ब्राह्मण में कहा है—**ग्रयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः।** २।२।२।६। मनुष्य निश्चय ही यज्ञकर्म के ग्रयोग्य है जो पत्नी से रहित है। ग्रागे कहा है—**ग्रर्धो वा एष ग्रात्मनः। यत्पत्नी।** तै० ३।३।३५ क्योंकि पत्नी पुरुष के शरीर का ग्राधा भाग है।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

ग्रर्धो ह वा एष ग्रात्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजापतेऽसर्वो हि तावद् भवति॥ शत० ५।२।१।१०

पत्नी पुरुष का ग्राधा ग्रङ्ग है (ग्रंग्रेजी में भी पत्नी को Better half कहते हैं) ग्रतः मनुष्य जब तक पत्नी को नहीं पाता, तब तक वह सन्तान उत्पादन में भी ग्रसमर्थ रहता है, ग्रतः वह ग्रधूरा रहता है।

इह एव स्तम्—का ग्रर्थ यह भी है—तुम गृहस्थ के धर्मों में स्थित रहो। गृहस्थ के प्रमुख धर्म हैं—पञ्चमहायज्ञों का ग्रनुष्ठान, सुप्रजा का निर्माण, ईमानदारी से धनोपार्जन तथा घर की सर्वविध समृद्धि।

स्तम्—द्विवचन है। यह द्विवचन एक समय में एक पुरुष की एक स्त्री ग्रौर एक स्त्री के एक पति का विधान कर रहा है। यदि एक समय में एक से ग्रधिक पति या पत्नी का विधान होता तो 'स्तम्' द्विवचन न होकर 'स्त' बहुवचन होता। एक पतिव्रत ग्रौर एक पत्नीव्रत गृहस्थ कल्याण का मूल है। एक पत्नीव्रत को जिसने तोड़ा उसे सुख नहीं मिला। महाराज दशरथ ने तीन विवाह किये परिणाम श्रीराम को वन में भेजना पड़ा ग्रौर स्वयं को परलोक सिधारना पड़ा। हजरत मोहम्मद को भी गृह-कलह का शिकार होना पड़ा।

इहैव स्तम्—वैवाहिक सम्बन्ध जीवन पर्यन्त होता है। पाश्चात्य देशों में पति ग्रौर पत्नी के होते हुए भी ग्रन्य स्त्री ग्रौर पुरुषों के साथ नाता जोड़ लिया जाता

है। इस कुरीति ने विवाह की पवित्रता को नष्ट कर दिया है। महर्षि मनु ने कहा है—स्वदारनिरतः सदा। [मनु० ३।४५] अपनी पत्नी से ही सदा सन्तुष्ट रहे।

२. मा वि यौष्टम्

हे दम्पति ! तुम दोनों कभी पृथक् मत होओ तथा एक-दूसरे से द्वेष मत करो। वैदिक धर्म में तलाक नहीं है। वैदिक धर्म में जिस दिन विवाह होता है उस दिन पति-पत्नी एक-दूसरे के हाथ बिक जाते हैं। वैदिक धर्म में विवाह दो शरीरों का नहीं दो आत्माओं का मिलन है। विवाह के समय पति और पत्नी निम्न प्रतिज्ञा मन्त्र पढ़ते हैं—

समापो हृदयानि नौ। ऋ० १०।८५।४७

हम दोनों के हृदय मिलकर इस प्रकार एक हो जाएँ जैसे दो जल अपने नाम और रूप को छोड़कर एक हो जाते हैं। जैसे दो मिले हुए जलों को संसार की कोई शक्ति पृथक् नहीं कर सकती, उसी प्रकार हम भी कभी अलग न हों।

गृहस्थ में पति एवं पत्नी के मन, विचार और चित्त सब समान हों। पति-पत्नी में प्रेम हो। प्रेम भी कैसा ? वेद के अनुसार पति-पत्नी की भावना हो—

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति॥

—अथर्व० ७।३६।१

पति और पत्नी हम दोनों की आँखें मधुर मधु के समान प्रेममय अमृत से सिंची हों। हम दोनों का मुखमण्डल स्नेह, प्रेम ज्ञान-ज्योति से लावण्ययुक्त हो। हे प्रियतम ! हे प्रियतमे ! तू मुझे अपने हृदय में रमा ले। हम दोनों का मन भी सदा समान भाव और विचारों वाला हो।

वियोग उसी स्थिति में नहीं होता जब पति-पत्नी में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष न हो कर परस्पर प्रेम होता है। मनु महर्षि कहते हैं—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता-भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वैध्रुवम्॥ —मनु० ३।६०

हे गृहस्थो ! जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी सदा प्रसन्न रहती हैं उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है।

इस स्थिति को जीवन में घटाया कैसे जाए ? इसके लिए निम्न बातों पर ध्यान दें—१. पति और पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करें। २. दोनों एक दूसरे का सम्मान करें। ३. समन्वयवाद को लेकर चलें कभी पति-पत्नी के परामर्श को मान ले तो कभी पत्नी, पति के आदेश को शिरोधार्य कर ले। ४. अपने विचारों को एक-दूसरे पर थोपने और लादने का प्रयत्न न करें। ५. मस्तिष्क को सदा ठण्डा रखें और सदा मीठा एवं मधुर ही बोलें। ६. छिपाकर काम न करें। यदि किसी से कोई भूल हो गयी है, तो उसे एक-दूसरे को बता दें।

३. विश्वम् आयु: व्यश्नुतम्

सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करो। वेद ने अनेक स्थानों पर सौ वर्ष और उससे भी अधिक जीने का उल्लेख किया है। ऋग्वेद [१०।१८।२३] में कहा है—**शतं जीवन्तु शरद: पुरुची:**। सभी मनुष्य सौ शरद्-ऋतुओं तक और उससे भी अधिक जीएँ।

वेद तो यहाँ तक कहता है—

मृत्यो: पदं योपयन्त एत। अथर्व० १२।२।३०

हे मनुष्यो ! मौत के कारणों को परे धकेलते हुए आगे बढ़ो।

सौ वर्ष की आयु प्राप्ति के लिए शरीर दृढ़ होना चाहिए। शरीर को नीरोग, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट बनाने के साधन निम्न हैं—

१. सात्विक आहार—आहार और स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है अत: आहार शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिए। उपनिषत्कार कह गये हैं—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि:। छन्दो० ७।२६।३

आहार शुद्ध होने पर अन्त:करण की शुद्धि होती है।

महर्षि मनु ने कहा है—

वर्जयेन्मधु मांसं च। मनु० २।१७७

शराब और मांस मछली, अण्डों का सेवन त्याग देना चाहिए।

इसी प्रकार बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले अफीम, गाँजा, चरस, चाय, काफी, धूम्रपान आदि का भी परित्याग कर देना चाहिए।

२. व्यायाम—स्वस्थ जीवन के लिए व्यायाम भी अत्यावश्यक है। व्यायाम से शरीर में बल और स्फूर्ति आती है। मुखमण्डल पर ओज, तेज, आभा और कान्ति आती है। व्यायाम से शरीर रोगों से सुरक्षित बन जाता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥ —भावप्रकाश ४।५७

प्रतिदिन व्यायाम करने से शरीर में लघुता=चुस्ती और स्फूर्ति, कार्य करने में शक्ति गात्रों की पुष्टि, वात आदि दोषों का नाश और जठराग्नि की वृद्धि होती है।

३. नियमित दिनचर्या—स्वास्थ्य के लिए नियमित दिनचर्या का होना भी परमावश्यक है। योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा॥ —गीता ६।१७

जिसका आहार नियमित है, जिसका विहार भ्रमणादि नियमित है, कार्यों में जिसकी चेष्टा नियत है, तथा जिसकी निद्रा और जागरण नियत है, इस प्रकार के पुरुष का योग-अनुशासित जीवन उसके दु:खों को दूर कर देता है।

प्रकृति के नियमों को तोड़कर कोई भी सौ वर्ष नहीं जी सकता।

४. प्रसन्नता और निश्चिन्तता—स्वस्थ रहने के लिए सदा प्रसन्न, हँसते और मुस्कराते हुए रहना चाहिए। निश्चितता परम योग है। चिन्ता शरीर को जलाती है। चिन्ता से एक ही रात्रि में मनुष्य के बालों को सफेद होते देखा गया है।

४. क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः

अपने पुत्र-पौत्र और नातियों के साथ क्रीड़ा करते हुए जीवन व्यतीत करो। सन्तान कैसी हो। सन्तान योग्य और सदाचारी होनी चाहिए। किसी कवि ने कहा है—

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यो न चान्तिमः।
सकृद् दुःखकरावद्यावन्तिमस्तु पद पदे॥

हितोपदेश कथामुख श्लोक ८

'पुत्र का उत्पन्न नहीं होना', 'उत्पन्न होकर मर जाना' और जीवन-पर्यन्त मूर्ख रहना—इन तीनों प्रकार के पुत्रों में से आदि के दो अच्छे हैं किन्तु तीसरा अच्छा नहीं है क्योंकि उत्पन्न न होने और मर जाने पर तो क्षणमात्र का दुःख होता है परन्तु मूर्ख पुत्र से तो क्षण-क्षण में दुःख होता है।

और भी—

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतैरपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि॥

—हितो० श्लोक १८

जैसे एक ही चन्द्रमा अपने तेज से अन्धकार को मार भगाता है परन्तु तारागणों का समूह अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकता, वैसे ही कुल का चार चाँद लगाने वाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, सैकड़ों मूर्ख पुत्र किसी काम के नहीं।

वेद का आदेश है मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। —ऋ० १०।५३।६

मनुष्य बनो और दिव्य सन्तान उत्पन्न करो।

सन्तान दिव्य कैसे बने, उनका निर्माण कैसे हो। इसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

१. उच्चादर्श—माता-पिता सन्तान के समक्ष सदा उच्च, महान्, दिव्य आदर्श प्रस्तुत करें। यदि माता-पिता विलासी हैं, शराबी और जुआरी हैं तो सन्तानें भी वैसी ही बनेंगी।

२. सत्सङ्गति—बच्चों की संगति का विशेष ध्यान रखा जाए। माता-पिता इस बात का सदा निरीक्षण करते रहें कि बच्चे कहाँ जाते हैं, किसके साथ बैठते हैं, किनके साथ खेलते हैं। बच्चों में धार्मिक सत्सङ्गों में जाने का स्वभाव डालें।

३. बच्चों के साथ हँसें और खेलें। बच्चों के साथ प्रेम का, सौम्यता का व्यवहार करें। बालक माता-पिता से भयभीत न हों—ऐसा वातावरण घर में बनाएँ।

वेद में वर्णित चार साधनों को अपने से हमारे गृहस्थ आनन्द धाम बन जाएँगे।

□□

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

म० श्रानन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
श्रानन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र (उर्दू)	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४५.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.०
अथर्ववेदशतक	२.०
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र)	१५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

दो नई पुस्तकें

सामवेद सूक्तिसुधा	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका एक सरल अध्ययन	प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००

बहुत दिनों बाद दुबारा प्रकाशित

वेद भगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल एम० ए०	६.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
दिव्य दयानन्द	,,	३.००
चतुर्वेद शतकम्	,,	८.००
कर्त्तव्यदर्पण	म० नारायण स्वामी	४.००
गीत भण्डार	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	४.००

एक विशिष्ट प्रकाशन

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द २५.००

सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण) १०१.००

दयानन्द चित्रावली रामगोपाल विद्यालंकार ८.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रसारित

अन्य प्रकाशन

वैद्य गुरुदत्त

वेद प्रवेशिका	६.००
सांख्य दर्शन	४०.००
विश्वेदेवा:	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००
इतिहास की परम्परा	१२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	१८.००
भारत में राष्ट्र	४.००
ब्रह्मसूत्र I	३०.००
,, II	२४.००
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	५.००
धर्म तथा समाजवाद	१४.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
विज्ञान और विज्ञान	८.००
श्रीमद्भगवतगीता	२४.००
दो लहरों की टक्कर (दो खण्ड)	६६.००

बलराज मधोक

भारत में लोकतन्त्र	१२.००
भारत की सुरक्षा	६.००
भारत की विदेशनीति	६.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
भारत और संसार	८.००
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी	१०.००
पाकिस्तान का आदि और अन्त	५.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्याय सन्दोह	१५.००
स्वाध्याय सन्दीप	१०.००
स्वाध्याय संग्रह	४.००
सावित्री प्रकाश [गायत्री]	२.००
सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव	२.००
सन्ध्यालोक	२.५०
ब्रह्मोद्योपनिषत्	२.५०
जीवन की भूलें	१.००

स्वामी योगेश्वरानन्द जी

आत्मविज्ञान	१८.००
ब्रह्मविज्ञान	२०.००
हिमालय का योगी	१०.००
बहिरंग योग	१८.००
निर्गुण ब्रह्म	१२.००
Nirgun Brahma	१५.००
Science of Soul	१८.००
Science of Divinity	२५.००
First Step to Yoga	२५.००
Himalaya Ka Yogi	१५.००

वेदभाष्य

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद के दस मण्डल में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ६ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१८.००
,, ,, द्वितीय ,,	१५.५०
,, ,, तृतीय ,,	१४.००
,, ,, चतुर्थ ,,	१२.००
,, ,, पंचम ,,	१४.००
,, ,, षष्ठ ,,	१०.००
,, ,, सप्तम ,,	१७.००
,, ,, अष्टम ,,	१८.००
,, ,, नवम ,,	१२.००
,, ,, दसवां मण्डल भाग I	३०.००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथभ	८.००
,, ,, ,, द्वितीय	७.००
,, ,, ,, तृतीय	७.००

ऋग्वेद भाषा भाष्य चतुर्थ ६.००
,, ,, ,, पंचम ७.००
,, ,, ,, षष्ठ ७.५०
,, ,, ,, सप्तम ८.००
,, ,, ,, अष्टम ८.००
,, ,, ,, नवम ६.००
,, ,, दसवां मण्डल I भाग १५.००
यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम १६.००
,, ,, द्वितीय २४.००
,, ,, तृतीय १६.००
,, ,, चतुर्थ १४.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ खण्डों में
महर्षि दयानन्द I १५.००
भाग II २५.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में ११६.००
अथर्ववेद ४ ,, ६४.००
यजुर्वेद २ ,, २४.००
सामवेद १ ,, २०.००

दर्शन ग्रन्थ

आचार्य श्रीराम कृत

योग ५.७५
वैशेषिक ५.७५
सांख्य ५.७५
न्याय ५.७५
वेदान्त ५.७५
मीमांसा ७.००
वेद महाविज्ञान १२.००

उपनिषद्

महात्मा नारायण स्वामी

ईश	०.६०	केन	०.६०
कठ	१.००	प्रश्न	०.६०
मुण्डक	०.५०	माण्डूक्य	०.२५
ऐतरेय	०.५०	तैत्तिरीय	१.५०

गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा ७.००
शंकर भाष्यालोचन ७.००
जीवन चक्र ७.००
धर्म तर्क की कसौटी पर २.००
सन्ध्या क्या क्यों कैसे ३.००
भारतीय पतन और उत्थान की कहानी २.५०
आर्य स्मृति ३.००
भगवत् कथा १.५०
सनातन धर्म १.००
धर्म सुधासार ०.६०
राष्ट्र निर्माता स्वामी दयानन्द १.००
कम्यूनिज़म ३.००
Philosophy of Dayanand १५.००
Life & Teaching ४.००
Vedic Culture ५.००

विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०

उपनयन वेदारम्भ संस्कार ०.६०
मृतक संस्कार ०.६०
चूड़ाकर्म ,, ०.६०
अन्नप्राशन ,, ०.६०
नामकरण ,, ०.७०
विवाह पद्धति १.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे (छोटा) ,, ४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,, ६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.००
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू में) २.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

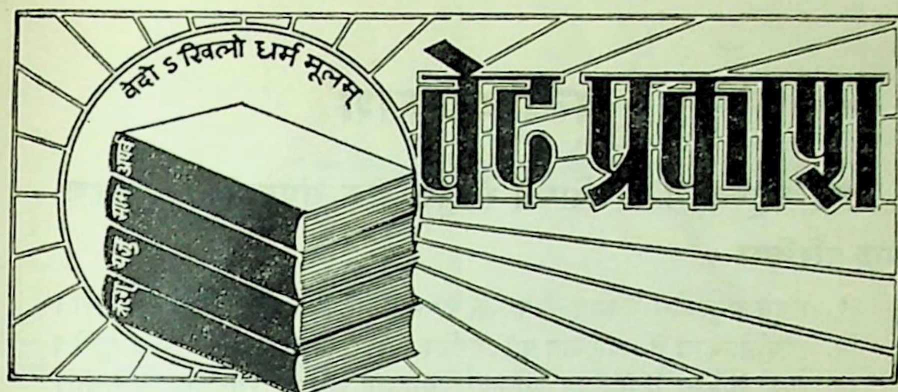
स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



एक नवीन प्रकाशन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की शताब्दी के अवसर पर महर्षि के ग्रन्थों के आधार पर संकलित

सत्यार्थ-सरस्वती

इसके संकलनकर्त्ता हैं पं० मदनमोहन जी विद्यासागर

ग्रन्थ में १४ प्रवाह हैं। आरम्भ के १० प्रवाह बहुत विस्तृत हैं। सत्यार्थप्रकाश के साथ ही अनेक बातों को महर्षि के अन्य ग्रन्थों से लेकर उस-उस विषय के साथ ग्रथित कर दिया गया है। अनेक स्थानों पर नवीन प्रश्नोत्तर भी जोड़ दिये गये हैं; कठिन स्थलों को सरल बना दिया गया है। जो विषय यत्र-तत्र फैले हुए थे, उन्हें एक स्थान पर रख दिया गया है। अन्त में 'आर्योद्देश्य रत्नमाला' भी संग्रहीत कर दी गई है। पुस्तक का कागज और छपाई उत्तम है। संकलन में परिश्रम किया गया है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य है २५ रुपये।

पुस्तक सीमित संख्या में छपी है। तुरन्त आदेश भेजें।



षड्दर्शन

भारतीय छह आस्तिक दर्शनों का वैदिक साहित्य में विशेष स्थान है। दर्शनों की अनेक व्याख्याएँ की गई हैं। परन्तु अब तक छह दर्शन एक ही जिल्द में और अर्थसहित नहीं छपे थे। इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन एक जिल्द में छप रहे हैं। 'वेदप्रकाश' साइज में लगभग ५५० पृष्ठ का यह ग्रन्थ नवम्बर मास तक तैयार हो जाएगा। प्रकाशन आरम्भ हो गया है। इस ग्रन्थ का मूल्य लगभग ४० रुपये होगा।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की सुनहरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक २-३] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [सितम्बर, अक्टूबर १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

तेजस्वी बनने के उपाय

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि ॥ —साम० ६१४

शब्दार्थः—हे तेज के भण्डार प्रभो ! (हिरण्यस्य) वीर्य और सोने का (यत्) जो (वर्चः) तेज है, (यत् वा) और जो (गवाम्) गौओं, सूर्य-किरणों और विद्या का (वर्चः) तेज है (उत) तथा (सत्यस्य) सत्य का एवं (ब्राह्मणः) परमात्मा का जो (वर्चः) तेज है (तेन) उस तेज से (मा) मैं अपने-आपको (संसृजामसि) अच्छी प्रकार संयुक्त करके अपने को सुभूषित एवं संस्कृत करूँ।

व्याख्या—हम तेजस्वी कैसे बनें ? इसी का रहस्य मन्त्र में बताया गया है। मन्त्र में वर्णित तेजों को यदि हम अपने जीवन में धारण कर लेंगे तो हम तेजस्वी बन जाएँगे। लीजिए, एक-एक पदार्थ पर चिन्तन कीजिए—

१. हिरण्यस्य यत् वर्चः

हिरण्य=वीर्य और सुवर्ण का जो तेज है, उसे मैं अपने जीवन में धारण करूँ।

तेजस्वी बनने का सर्वोत्तम साधन है वीर्य-रक्षण। जो वीर्य की रक्षा करते हैं, उनके मुखमण्डल पर तेज चमकता है, एक आभा और दीप्ति होती है। प्रश्न होता है—वीर्य क्या है ? हम जो भोजन करते हैं, वह रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि में परिवर्तित होकर अन्त में वीर्य बनता है। तेज की प्राप्ति इस वीर्य-रक्षण से ही होती है। इसीलिए वेद में प्रार्थना की गई है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

—यजु० १९।९

'आप तेजस्वरूप हैं, मुझमें भी तेज का आधान कीजिए। आप शक्तिशाली हैं, मुझमें भी पराक्रम फूँकिए।'

जिन व्यक्तियों ने वीर्य को सुरक्षित रक्खा वे महाशक्तिशाली बने। महावीर हनुमान् को कौन नहीं जानता ! अपने ब्रह्मचर्य के बल पर उन्होंने अकेले ही सारी लंका को जला डाला था। रावण के महलों में परम सुन्दरी स्त्रियों को देखकर भी उनके हृदय में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ था। अपने ब्रह्मचर्य-लोप की आशंका का समाधान करते हुए उन्होंने कहा था—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ।।

—वा० रा० सु० ११।४१

'यद्यपि मैंने रावण की इन सभी स्त्रियों को निश्चिन्त अवस्था में सोये हुए देखा है परन्तु इनके दर्शन से मेरे मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।'

भीष्म पितामह ब्रह्मचर्य के बल पर ही एक सौ बहत्तर वर्ष की अवस्था में भी प्रतिदिन दस सहस्र पाण्डव सेना का संहार कर डालते थे।

आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द भी ऐसे ही दीप्तिमान ब्रह्मचारी थे। महर्षि के उपदेशों से मथुरा में खलबली मच गई। पण्डे और पुजारी शास्त्रार्थ के लिए तो सामने नहीं आये; हाँ, एक वेश्या को कुछ प्रलोभन देकर तथा सिखा-पढ़ाकर उनके पास भेज दिया कि तू वहाँ जाकर शोर मचा देना, फिर हम देख लेंगे। वेश्या वहाँ पहुँचती है। समाधि में बैठे हुए ऋषि के दीप्त मुखमण्डल को देखकर उसके भाव बदल जाते हैं। वह समाधि खुलने की प्रतीक्षा में द्वार के पास उनकी ओर पीठ करके खड़ी हो जातीं है। जब समाधि खुली तो एक देवी को वहाँ देख ऋषि पूछते हैं—

माँ ! क्या लाई है स्वामी के डेरे ?

'माँ' शब्द सुनते ही उस वेश्या का हृदय बदल गया। उसने अपने आभूषणों की पोटली बनाई और बोली—

स्वामिन् ! ये हैं मेरे पाप घनेरे ।।

वीर्य-रक्षण से शरीर में तेज आता है, परन्तु इस वीर्य की रक्षा कैसे हो ? वीर्य रक्षा के अनेक साधन हैं—१. ब्रह्ममुहूर्त्त में उठना, २. व्यायाम, ३. शुद्ध एवं सात्विक आहार, ४. स्वाध्याय, ५. सत्सङ्ग आदि।

हिरण्य का दूसरा अर्थ है सुवर्ण=सोना। सुवर्ण-धारण भी तेज प्रदान करता है। वेद में कहा है—

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।

अथर्व० १।३५।२

'जो चतुर जन से प्राप्त करने योग्य सुवर्ण को धारण करता है, वह जीवों में अपनी आयु को बहुत लम्बी कर लेता है।'

सुवर्ण धारण करें। सुवर्ण जल का पान करें।

निरुक्त (२।३।१०) के अनुसार **'हिरण्यं हितरमणं भवति'** सुवर्ण हितकर और रमणीय है तथा आश्वलायन गृह्य० (१।१५।३) के अनुसार बालक को उपदेश देते हुए पिता कहता है—**"हिरण्यमस्तृतं भव"**—तू अटूट सुवर्ण बन जा। इस प्रकार मनुष्य सबका हितकारी हो, गुणों में रमणीय हो और, अपने व्रतों में अटूट हो।

२. यद्वा वर्चो गवामुत्

'गौ=गाय, सूर्य-किरण और विद्या के तेज से हम अपने को अलंकृत करें।' गौ की महिमा महान् है। वेद में कहा है—

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥

—ऋ० ६।२८।६

'हे गौवो! तुम अपने घी-दूध आदि पदार्थों से दुर्बल मनुष्य को मोटा बना देती हो और निस्तेज=कान्ति और शोभा से हीन को तेजस्वी और शोभायमान बना देती हो। घर को पवित्र, कल्याणमय और सुख-सम्पन्न बना देती हो। तुम्हारा रम्भाना भी बहुत भला लगता है। सभाओं में तुम्हारे बल आदि का खूब गुणगान किया जाता है।'

गोदुग्ध की महिमा में कहा गया है—

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम्।
दीपनं च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत्॥

भाव० निघण्टु दुग्ध० २४

'गाय का धारोष्ण दूध बल को देनेवाला, हल्का, शीतल, अमृत के समान गुणकारी, अग्नि-दीपक और वात-पित्त-कफ—तीनों दोषों का नाशक परन्तु शीतल होने पर त्याज्य है [उतना गुणकारी नहीं रहता]।'

यजुर्वेद के पहले ही मन्त्र में गो-महिमा का वर्णन है—**आप्यायध्वमघ्न्याः**—कभी न मारने योग्य गौएँ खूब हृष्ट-पुष्ट हों और निरन्तर बढ़ें। वे गौएँ—**प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः**—सन्तानवाली, रोग-रहित और यक्ष्मा-कीटाणुओं से रहित हों और—**मा स्तेन ईशत वः माघशꣳसः**—हे गौओ! तुम्हारे ऊपर चोर, डाकू और हिंसक पुरुष शासन न करे।

वेद में गोघातक को प्राणदण्ड और सीसे की गोली से उड़ा देने का आदेश है।

गौ का अर्थ सूर्य-किरण भी है। प्रातःकालीन बालसूर्य की रश्मियों का सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से शरीर में जीवनीय तत्त्व 'द' (Vitamin D) की प्राप्ति होती है। नील-लोहित रश्मियाँ (Ultra-Violet

Rays) शरीर पर पड़कर उसे नीरोग और स्वस्थ बनाती हैं। वेद में सूर्य-चिकित्सा का वर्णन करते हुए कहा है—

उद्यनद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥—ऋ० १।५०।११

'सबके अनुकूल दीप्तियुक्त सूर्य ! तू उदय होता हुआ और आकाश में ऊँचा चढ़ता हुआ मेरे हृदय-रोग और पीलिया रोग को आज ही, शीघ्र नष्ट कर दे।'

सूर्य से तेज-प्राप्ति के लिए सूर्योदय से पूर्व उठो। आर्ष ग्रन्थों में सूर्योदय के पश्चात् सोने को पाप माना जाता है।

गायत्री मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ तो आपने अनेक बार पढ़ा और सुना होगा। गायत्री मन्त्र का आधिदैविक अर्थ भी है।

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥—यजु० ३६।३

'हम उस जगत् के जीवन, दुःख=रोगनाशक और सुख=आरोग्य-दायक सविता-सूर्य के ग्रहण करने योग्य तेजोमय स्वरूप को धारण करते हैं, अर्थात् प्रतिदिन उसका सेवन करते हैं। वह हमारे कर्मों को गति प्रदान करता है।'

गौ का अर्थ ज्ञान भी है। मुखमण्डल पर ज्ञान की भी एक द्युति होती है। ज्ञान-विद्या की महिमा में जितना कहा जाए कम है। वेद में कहा है—

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।—यजु० ४०।१४

'विद्या से अमृत=अमर जीवन, मोक्ष की प्राप्ति होती है।'

किसी कवि ने भी कहा है—

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ।

'विद्याधन सब धनों में सर्वश्रेष्ठ है।'

३. सत्यस्य यत् वर्चः

'जो सत्य का तेज है, हम उससे अपने जीवन को विभूषित करते हैं।'

सत्य में अद्भुत तेज होता है। सत्यवादी तोप के गोले के सामने भी नहीं झुकता। सत्यवादी का सभी सम्मान करते हैं। सत्य से नीच, दुष्ट और पतित भी सुधर जाते हैं।

एक चोर था। काम था प्रतिदिन रात्रि में इधर-उधर हाथ मारना। एक दिन किसी महात्मा के सत्संग में चोर ने सत्य बोलने का व्रत लिया। रात्रि में चोरी करने निकला। पहरेदार ने पूछा—"कौन ?" इसने उत्तर दिया—"चोर।" पहरेदार ने समझा कि कोई राजकर्मचारी है, मेरे पूछने से रुष्ट होकर ऐसा उत्तर दिया है, अतः उसे कुछ न कहकर उसे जाने दिया। जब यह राजमहल के निकट पहुँचा तो वहाँ भी एक पहरेदार ने पूछा—

"कहाँ जाते हो ?" उसने उत्तर दिया—"महल में।" पहरेदार ने फिर पूछा—"किसलिए ?" चोर ने कहा—"चोरी करने के लिए।" उसने भी मज़ाक समझकर उसे अन्दर जाने दिया। जब यह चोरी करके बाहर निकला तो पहरेदार ने पूछा—"क्या चुराया ?" चोर ने कहा—"जवाहरात के तीन डब्बे।" पहरेदार ने सोचा—'यदि यह चोर होता, तो बताता क्यों ?' ऐसा सोचकर उसे जाने दिया। प्रातः शोर मच गया कि राजमहल में चोरी हो गई। कोषाध्यक्ष ने सोचा—'एक डब्बा तू उठाकर अपने घर में रख ले, वह चोर के ही नाम लग जाएगा।' उधर खोज करने पर चोर पकड़ा गया। उसने अपराध भी स्वीकार कर लिया परन्तु उसने बताया कि वह डब्बे तीन ही ले गया था। तलाशी लेने पर चौथा डब्बा कोषाध्यक्ष के घर से मिल गया। राजा ने कोषाध्यक्ष को तो कारागार में डलवा दिया और इस सत्यवादी चोर को अपना कोषाध्यक्ष नियुक्त कर दिया। आजीविका का समुचित प्रबन्ध हो जाने पर चोर ने चोरी करना भी छोड़ दिया।

सत्य को जीवन में धारण करो। सत्य का पालन करो। सत्य की रक्षा करो। वेद में कहा है—

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥
—ऋ० ७।१०४।१२

'उत्तम विज्ञान को जाननेवाले विवेकी मनुष्य के पास सत्य और असत्य वचन परस्पर स्पर्धा करते हुए, एक-दूसरे को दबाते हुए आते हैं। सौम्य स्वभाव उत्तम ज्ञानी उन दोनों में जो सत्य और धर्मानुकूल होता है, उसकी रक्षा करता है और जो असत्य है उसे मार भगाता है।'

४. यत् ब्रह्मणः वर्चः

'जो ब्रह्म=परमेश्वर और वेद का तेज है, हम अपने को उससे भूषित करते हैं।'

परमेश्वर के तेज को ब्रह्मतेज कहते हैं। यह ब्रह्मतेज सर्वश्रेष्ठ है। इस ब्रह्मबल की प्राप्ति होगी यम-नियमों के पालन, योगाभ्यास और प्रभु-उपासना से। हमारे जीवन का चरम और परम लक्ष्य तो ब्रह्म की प्राप्ति है। इस ब्रह्मतेज के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दो।

ब्रह्म का अर्थ है वेद। हम वेद के ज्ञान से अपने को अलंकृत करें। वेद की शिक्षाएँ हमारे जीवन को ऊँचा उठाएँगी। हम वेद पढ़ें और अपनी सन्तानों को भी वेद पढ़ने की प्रेरणा दें।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः॥—सा० १५९५

'जो हमारी सन्तानें हैं वे अविनाशी परमेश्वर की वेद-वाणियों को ध्यानपूर्वक एवं श्रद्धा से सुनें, जिससे वे हमारे लिए उत्तम सुखदायी हों।

मन्त्र का सार निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—

मेरे शरीर में सुवर्ण का तेज—सौन्दर्य हो। शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हो। मेरे मस्तिष्क में सूर्यकिरणों का तेज—ज्ञान-ज्योति जगमगाती हो। मेरे हृदय में सत्य का निवास हो और मेरे आत्मा में ब्रह्मानन्द की तरंगें उठ रही हों।



उसी की स्तुति कर

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः सत्यस्य युवानम्।
अद्रोघवाचं सुशेवम्॥—अथर्व० ६।१।२

शब्दार्थः—(तम् उ स्तुहि) उस एक ईश्वर की ही स्तुति कर (यः) जो (अन्तः सिन्धौ) संसाररूपी समुद्र में सर्वत्र व्यापक है (सत्यस्य सूनुः) सत्य का प्रेरक है (युवानम्) सदा युवा अर्थात् अखण्ड और एकरस है (अद्रोघवाचम्) हिंसारहित प्रेममयी वाणी का उपदेष्टा है और (सुशेवम्) सुख-शान्ति का भण्डार और प्रदाता है।

व्याख्या—मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति के सम्बन्ध में छह दिव्य-उपदेश हैं। हम क्रमशः उनपर कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं—

१. तम् उ स्तुहि

'एक ही ईश्वर की स्तुति कर।' यहाँ एक कहाँ से आ गया। यह संस्कृत भाषा की विशेषता है। 'तम्' एकवचन है, अतः अर्थ होगा उस एक ईश्वर की ही स्तुति कर। उसकी स्तुति कर, किसकी? इसका उत्तर मन्त्र के अगले पदों में विद्यमान है।

एक ईश्वर की स्तुति कर। एक की शरण पकड़ने से बेड़ा पार हो जाता है। एक कवि ने कहा है—

एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।
जो तू सींचे मूल को, फूले-फले अघाय॥

बहुत-से व्यक्ति संशयवादी होते हैं। वे सबकी उपासना करना चाहते हैं। ऐसी ही एक स्त्री प्रातःकाल उठते ही राम, कृष्ण, हनुमान्, राधा, गणेश आदि सभी का नाम लेती थी। एक सज्जन ने उससे पूछा—"तू सबका नाम क्यों लेती है?" उसने उत्तर दिया—"कोई तो भड़वा सुनेगा ही!" ऐसे संशयवादी नष्ट हो जाते हैं।

वेद डिण्डिम घोषणा से कहते हैं कि परमेश्वर एक ही है—

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।

—अथर्व० १३।४।२०

'जिस परमेश्वर में यह समस्त जगत् आश्रित है, वह शक्तिस्वरूप सबका संचालक है। वह एक ही है। वह एकरस, अखण्ड और चेतनस्वरूप है। वह अद्वितीय और एक ही है।'

कबीर जी ने भी कहा है—

साहब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहब जो कहूँ, साहब खरा रिसाय ॥

हम एक ही ईश्वर के उपासक बनें। वेद में उसे स्थान-स्थान पर एक ही लिखा है। अथर्ववेद में एक अन्य स्थान पर कहा है—

एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।—अथर्व० २।२।१

'केवल वही परमात्मा सभी प्रजाओं द्वारा वन्दनीय और स्तुत्य है।' उसी की स्तुति करो और कैसी स्तुति—

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेह्याथर्वण ।
स्तुहि देवं सवितारम् ॥—अथर्व० ६।१।१

'हे निश्चल योगी! तू रात्रि में और दिन में ईश्वर का गुणगान कर, दिल खोलकर उसके गीत गा। तू सर्वोत्पादक और सबके प्रेरक देव की स्तुति कर और उस प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को अपने हृदय में धारण कर ले।'

२. अन्तः सिन्धौ स्तुहि

'तू उसकी स्तुति कर जो संसार-समुद्र में रमा हुआ है; जो अणु-अणु और कण-कण में विद्यमान है, जो सर्वव्यापक है।' तू उस ईश्वर की उपासना कर जो सदा तेरे अङ्ग-सङ्ग है, जिसे प्राप्त करने के लिए भटकना नहीं पड़ता। वह ईश्वर संसार-सागर से पार उतारनेवाला है। उसी से प्रार्थना करो—

भवा सुपारो अतिपारयो नः ।—ऋ० ६।४७।७

'प्रभो! संसार सागर के भयङ्कर प्रवाह में पड़कर हमें कुछ सूझ नहीं रहा है। तू सुपार बन जा और हमें पार लगा दे।' तू हमारे जन्म-मरण आदि कष्टों से हमें तार दे और हमें ऐसा बल प्रदान कर कि हम अपने काम-क्रोध आदि शत्रुओं को मार भगाएँ।

'अन्तः सिन्धौ' का एक अर्थ हृदय-समुद्र भी होता है। हम उस ईश्वर की उपासना करें जो हमारे हृदय-मन्दिर में विद्यमान है। उसकी उपासना से हम सभी पापों और तापों से बच जाएँगे क्योंकि ईश्वर हमारे सभी कर्मों को देखता है—

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ सं निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥

—अथर्व० ४।१६।२

'जो खड़ा है, जो चल रहा है, जो किसी को ठगता है, जो छिपकर सेंध आदि लगाता है, जो बलात् डाके डालता हैं तथा कोई दो व्यक्ति एक-साथ एकान्त में बैठकर जो गुप्त मन्त्रणा करते हैं, उन सबको तीसरे व्यक्ति के रूप में उपस्थित होकर वह वरणीय परमेश्वर देखता है।'

हम सर्वव्यापक और सदा विद्यमान परमेश्वर की उपासना करें, फिर हमें सब-कुछ प्राप्त हो जाएगा। किसी उर्दू के कवि ने क्या खूब कहा है—

ख़ुदा को पाया तो क्या न पाया !

सर्वव्यापक प्रभु की उपासना करो। उसे अपना रक्षक बना लो। प्रभु जिसकी रक्षा करते हैं, उसे भय कहाँ !

फ़ानूस[1] बन के जिसकी हिफ़ाज़त[2] हवा करे।
वो शम्अ[3] क्या बुझेगी जिसे रोशन ख़ुदा करे॥

और भी कहा है—

नूरे-हक़[4] शमए-इलाही[5] को बुझा सकता है कौन ?
जिसका हामी[6] हो ख़ुदा उसको मिटा सकता है कौन ?

हम ऐसे ईश्वर की स्तुति करें।

३. सत्यस्य सूनुः स्तुति

'तू ऐसे ईश्वर की स्तुति कर जो सत्य की प्रेरणा करता है।' जो साधक, जो उपासक अपने को प्रभु के प्रति समर्पित कर देते हैं, परमेश्वर उन्हें सुमार्ग से चलाता है—

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।
ब्रह्म द्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम्॥

—ऋ० २।२३।४

'अखिल ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! तू ब्रह्म-द्वेषियों को तपानेवाला और अभिमानियों का नाश करनेवाला है। तेरा सामर्थ्य महान् है, अतः जो अपने-आपको तुझे समर्पित कर देता है, तू उसे उत्तम मार्ग से चलाता है, तू उसकी रक्षा करता है और तेरे संरक्षण में उसे पाप नहीं व्यापता।'

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

—ऋ० २।२३।५

'बृहस्पते ! तू उत्तम रक्षक बनकर जिसकी रक्षा करता है उसे न तो कोई पाप व्यापता है और न दुराचार उसपर आक्रमण कर सकता है। शत्रु-जन और भेदी लोग उसे मार नहीं सकते। वह परमेश्वर अपने भक्त के सभी नाशकारी कारणों को हटा देता है।'

---

१. छत से लटकते हुए काँच के दीपाधार, २. रक्षा, ३. दीपक, ४. सत्य की ज्योति, ५. ईश्वरीय ज्योति, ६. सहायक।

हम ऐसे ईश्वर की स्तुति करें जो हमें सुपथ पर चलाए, हमें सुप्रेरणा प्रदान करे। जो ज्ञानरूपी वृक्ष के फल खाने से मना कर दे, जो स्त्रियों के वस्त्रों को लेकर वृक्ष पर जा चढ़े और मनुष्यों को कुमार्ग पर चलाए, उसकी न तो हम स्तुति ही करें और न उसे परमेश्वर ही मानें।

४. युवानं स्तुहि

'तू ऐसे ईश्वर की स्तुति कर जो सदा एकरस और अखण्ड रहता है।' हम ऐसे ईश्वर की स्तुति करें जिसमें हेर-फेर नहीं होता, जो गर्भ में नहीं आता और जन्म-मरण के चक्र से रहित हो। वेद के अनुसार ऐसे ईश्वर की उपासना करो—

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

—अथर्व० १०।८।४४

'जो कामनाओं और संकल्पों से रहित है, धैर्यवान् और प्रशान्त है, सदा अमर अविनाशी है, स्वयं अपनी सत्ता से विराजमान है, आनन्द से परिपूर्ण है, जिसमें किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं हैं, ऐसे धीर, अजर-अमर, अखण्ड, एकरस परमात्मा को जाननेवाला पुरुष मृत्यु से भी नहीं डरता।'

तथाकथित ईश्वरों के जीवनों को तर्क-तुला पर तोलने से वे ईश्वर सिद्ध नहीं होते। श्रीराम एकरस नहीं रहे। सीता को खोजते हुए वे अत्यन्त दुःखी होकर लक्ष्मण जी से कहते हैं—

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि
पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको
दुःखेन दुःखं यदहं विशामि॥

—वा० रा० अरण्य० ६३।४

'पूर्वजन्म में निश्चय ही मैंने बद-बदकर अनेक बार बहुत-से पाप किये हैं, उन्हीं का कर्मफल आज मुझे भोगना पड़ रहा है, इसी से मेरे ऊपर दुःख के बाद दुःख आ रहे हैं।'

श्रीकृष्ण जरासन्ध से सत्रह बार परास्त होते हैं। उन्होंने अर्जुन को जो गीता का उपदेश दिया था, उसे स्वयं भूल गये।

ऐसे दुःखी व्यक्तियों की उपासना करने से हम भी दुःखी ही होंगे। सुख-प्राप्ति के लिए हम युवा=सदा एकरस रहनेवाले परमात्मा की ही स्तुति करें।

'युवानम्' का एक और अर्थ होता है—संयोग और वियोग करने-वाला। हम उस परमात्मा की स्तुति करें जो संसार का निर्माता और

संहर्त्ता है, जो जीवात्माओं का शरीर के साथ मेल कराता है और समय आने पर उनसे पृथक् करता है, जो मनुष्य को भलाई से जोड़ता है और बुराई से हटाता है।

५. अद्रोघवाचं स्तुहि

'तू उसकी उपासना कर जो हिंसा-रहित सत्यवाणी का उपदेष्टा है।' ईश्वर प्राणियों के प्रति कटुता और हिंसा के व्यवहार का उपदेश नहीं देता। ईश्वर तो प्रेम का दिव्य एवं मधुर सन्देश देता है। प्रभु-प्रदत्त वेद के सन्देश कितने मधुर हैं, तनिक निहारिए—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

—अथर्व० ३।३०।१

'तुम सबके साथ समान-हृदय रहो। तुम सबके मन एक-समान हों। तुम किसी के प्रति वैर-विरोध मत करो। तुम परस्पर ऐसा प्रेम करो जैसे गौ अपने नवजात बछड़े से करती है।'

और देखिए—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥

—अथर्व० ३।३०।६

'हे मनुष्यो! तुम्हारी प्याऊ एक हो। तुम्हारी भोजनशाला भी एक हो। तुमको एक-समान धर्मादि व्यवहार में नियुक्त करता हूँ। जैसे चक्र के अरे चारों ओर से चक्र की नाभि में लगे होते हैं, उसी प्रकार तुम सब मिल-कर यज्ञ आदि शुभ कर्म किया करो।'

कैसा उत्कृष्ट साम्यवाद है! कैसा द्रोहरहित मानव-कल्याणकारी वचन है!

उपास्य के गुण उपासक में आते हैं, अतः भक्त को भी मन-वचन-कर्म से न किसी की हिंसा करनी चाहिए, न ईर्ष्या-द्वेष और न कटु एवं कठोर वचन ही बोलना चाहिए।

६. सुशेवं स्तुहि

'उसकी उपासना करो जो सुख-शान्ति का भण्डार और सुख-शान्ति का दाता है।'

भक्त सुख-शान्ति, आनन्द और कल्याण चाहता है। सुख और आनन्द उससे ही प्राप्त हो सकता है, जिसके पास हो। जो स्वयं अशान्त और सुख-रहित है वह दूसरों को सुख कैसे दे सकता है! यदि सुख और शान्ति चाहिए तो प्रभु से प्रार्थना करो। वेद के शब्दों में शान्ति के भण्डार से याचना करो—

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।

—ऋ० ९।११३।११

'प्रभो ! जिस आप में सम्पूर्ण समृद्धि, सम्पूर्ण हर्ष, सम्पूर्ण प्रसन्नता और सम्पूर्ण शान्तियाँ विद्यमान हैं, जिस आप में अभिलाषी पुरुष की सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, मुझे जन्म-मृत्यु से रहित उस मोक्षधाम में पहुँचा दे । हे आनन्दमय ! मुझ उपासक के लिए परिस्रवित हो, सम्प्राप्त हो ।'

हम उपर्युक्त गुणों से युक्त ईश्वर की स्तुति करें और इन गुणों को अपने जीवन में धारण करें, तभी हमारा कल्याण होगा ।



दस्युओं का दमन

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणींरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्र प्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ।।

—ऋ० ७।६।३

शब्दार्थः—हे राजन् ! (पूर्वः) सबसे प्रमुख (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी आप (अक्रतून्) कर्महीन, मूर्ख और आलसी (ग्रथिनः) व्यर्थ बकवास करनेवाले, हृदय में गाँठ रखनेवाले, द्वेषी, कुटलाचारी, अज्ञान में फँसे हुए (मृध्रवाचः) हिंसक, दूसरों को पीड़ा देनेवाले, कठोर और असत्यभाषी (पणीन्) व्यापार-बुद्धिवाले, व्यवहारी, कंजूस (अश्रद्धान्) अश्रद्धालु (अवृधान्) दूसरों को न बढ़ने देनेवाले, समाज की हानि करनेवाले (अयज्ञान्) यज्ञ, सत्सङ्ग, दान और उपासना आदि से रहित (अयज्यून्) अन्यों का, विद्वानों का सत्कार न करनेवाले, इस प्रकार के (तान्) उन-उन (दस्यून्) दुष्ट व्यक्तियों को (अपरान्) तथा इस प्रकार के अन्य लोगों को (प्र प्र विवाय) निरन्तर दूर करो और (नि, चकार) पराजित तथा पदच्युत करो ।'

व्याख्या—मन्त्र में राष्ट्र के प्रमुख तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य का निर्देश है कि वह राष्ट्र में रहनेवाले दस्युओं को पराजित एवं पदच्युत करे । मन्त्र में दस्युओं के लक्षण दिये हुए हैं । इन लक्षणों के उलट देने पर ये "आर्य" के गुणों के परिचायक बन जाएँगे ।

१. अक्रतून्

जो कर्महीन=कर्मरहित, मूर्ख और आलसी है, वह दस्यु है । वेद में अन्यत्र कहा है—

अकर्मा दस्युः । —ऋ० १०।२२।८

'जो कर्मरहित हैं, कहते बहुत हैं परन्तु करते कुछ नहीं, वे दस्यु हैं, अनार्य हैं; जो कर्मशील हैं, विद्वान् और उद्यमी हैं, वे आर्य हैं। आर्य बनने के लिए निरन्तर कर्म करो। वेद का आदेश है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ् समाः।

—यजु० ४०।२

'मनुष्य संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे।'

वेद का एक अन्य आदेश है—

सखायः क्रतुमिच्छत।—ऋ० ८।७०।१३

'हे मित्रो! कर्म करने की इच्छा करो।'

वेद तो यहाँ तक कहता है—

स्वेन क्रतुना सं वदेत।—ऋ० १०।३१।२

मनुष्य अपने कर्मों द्वारा बोले।

सदा स्मरण रक्खो—

Motion is life and stagnation is death.

'गति=कर्मशीलता जीवन है और स्थिरता, कर्महीनता मृत्यु है।'

राजा को चाहिए कि वह अपने राष्ट्र में आर्यों, विद्वानों, पुरुषार्थियों को प्रोत्साहन दे और दस्युओं का दमन करे।

२. ग्रथिनः

'व्यर्थ बकवास करनेवाले, हृदय में गाँठ रखनेवाले, द्वेषी, कुटिलाचारी और अज्ञान में फँसे हुए लोग दस्यु हैं।'

व्यर्थ की बकवास में, गप्पबाज़ी में हम अपना और राष्ट्र का कितना समय बर्बाद करते हैं! जो जल्पि=व्यर्थ बकवास करनेवाले हैं, उन्हें परमात्मा के दर्शन भी नहीं होते। आर्य बनने के लिए हम मितभाषी बनें।

'ग्रथिनः' का दूसरा अर्थ है—हृदय में गाँठ रखनेवाले, दूसरों से द्वेष रखनेवाले और कुटिल व्यवहार करनेवाले जन। ऐसे जन दस्यु हैं। किसी से द्वेष मत करो। आपकी तो यह भव्यभावना होनी चाहिए—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

—यजु० ३६।१८

'मैं संसार के सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ।'

इसका फल क्या होगा? वेद कहता है—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

—यजु० ४०।७

'जिस ब्रह्मज्ञान की अवस्था में आत्मज्ञानी मनुष्य के लिए सब प्राणी अपनी आत्मा के समान हो जाते हैं, उस अवस्था में योगाभ्यास द्वारा सर्वत्र

परमात्मा के एकत्व को देखनेवाले योगी को कौन-सा मोह और कौन-सा शोक रह सकता है ?

अतः किसी के प्रति ईर्ष्या और द्वेष न रखकर हृदय को विशाल और पवित्र बनाओ ।

'ग्रथिनः' का एक और अर्थ है, अज्ञान में बँधे हुए, व्यसनों में फँसे हुए। अज्ञान और व्यसन दोनों मानव-समाज के शत्रु हैं । अज्ञान को नष्ट कर जीवन में ज्ञान-ज्योति जगाइए । व्यसनों को तिलाञ्जलि देकर जीवन को व्यसन-मुक्त और दोष-शून्य बनाइए ।

३. मृध्रवाचः

'जो हिंसक, दूसरों को पीड़ा देनेवाले, कठोर एवं असत्य-भाषी हैं, वे दस्यु हैं ।' जो अहिंसक, दूसरों को सुख देनेवाले और मधुरभाषी हैं वे आर्य हैं ।

अहिंसक बनो ! अहिंसा अष्टाङ्गयोग का प्रथम सोपान=सीढ़ी है । दूसरों को सुख दो ! तुलसीदास जी ने कहा है—

परहित सरसि धरम नहिं भाई ।
पर-पीड़ा सम नहीं अधमाई ।।

—राम० मा० उत्तर० ४१।१

कटु और कड़वा मत बोलो ! वाणी का घाव कभी नहीं भरता । आज वाणी कटु और दूषित हो रही है । एक अध्यापक ने एक घण्टे तक मधुर-भाषण पर व्याख्यान दिया । थोड़ी देर पश्चात् दो बच्चे उनके पास पहुँचे । एक बच्चे ने कहा—"इसने मुझे गाली दी है ।" अध्यापक ने डाँटते हुए कहा—"क्यों बे ! गधे के बच्चे ! तूने इस उल्लू को गाली क्यों दी थी ?"

ऐसी वाणी मत बोलो ! सत्य, प्रिय, मधुर और हितकर बोलो ! वेद के शब्दों में आपकी भावना हो—

पयस्वन्मामकं वचः । —ऋ० १०।१७।१४

'मेरा वचन सारयुक्त एवं मधुर हो ।'

४. पणीन्

'जो व्यापार-बुद्धिवाले, व्यवहारी और कंजूस हैं, वे दस्यु हैं । जो परमार्थ-बुद्धिवाले और दानशील हैं, वे आर्य हैं ।'

'पणिः' का अर्थ होता है बनियापन, हर बात को पैसे से तोलना । धन कमाओ और खूब कमाओ, परन्तु हर बात को धन से मत तोलते रहो ।

'पणिः' का एक अर्थ होता है—कंजूस । कंजूस न स्वयं खाता है और न दूसरे को खाने देता है । कंजूस तो किसी को दान देते देखकर भी दुःखी होता है ।

किसी कंजूस के उदास मुख को देखकर एक कवि ने सुन्दर 'उत्प्रेक्षा' की है—

नीरी पूछे सूम से, काहे बदन मलीन।
क्या तुम्हरो कछु गिर गयो, या काहू को दीन।।

सूम ने उत्तर दिया—

न मेरो कछु गिर गयो, न काहू कछु दीन।
देतन देखो और को, तासों बदन मलीन।।

कंजूस मत बनो! उदार और दानी बनो!

५. अश्रद्धान्

'जो श्रद्धाहीन हैं, वे दस्यु हैं'; जो श्रद्धालु हैं, वे आर्य हैं।

वेद में श्रद्धा की बड़ी महिमा गाई गई है—

श्रद्धया विन्दते वसु।—ऋ० १०।१५१।४

'श्रद्धा से धन, जीवन-धन=मोक्ष की प्राप्ति होती है।'

श्रद्धया सत्यमाप्यते।—यजु० १९।३०

'श्रद्धा से सत्यस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति होती हैं।'

योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं—

संशयात्मा विनश्यति।—गीता० ४।४०

" 'पता नहीं यह ठीक है अथवा यह ठीक हैं'—इस प्रकार के तर्क-वितर्क में लगा रहनेवाला मनुष्य नष्ट हो जाता है।" और

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।—गीता० ४।३९

'श्रद्धालु मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता हैं।'

अश्रद्धा को अपने जीवन से मार भगाओ तथा जीवन में श्रद्धा उत्पन्न करो। माता के लिए श्रद्धा, पिता के लिए श्रद्धा, आचार्य, अतिथि और राष्ट्र के लिए श्रद्धा उत्पन्न करो। महर्षि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द की-सी श्रद्धा जीवन में लाओ।

६. अवृधान्

'जो दूसरों को न बढ़ने देनेवाले और समाज की हानि करनेवाले हैं, वे दस्यु हैं।' जो दूसरों की उन्नति में सहायक और समाज के हितैषी हैं, वे आर्य हैं।

ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो दूसरों की उन्नति में बाधा पहुँचाते हैं। एक मकान की सीढ़ी से चढ़कर लोग ऊपर जा रहे थे। एक लंगड़ा व्यक्ति नीचे बैठा हुआ था। किसी ने पूछा—"तू नीचे क्यों बैठा हैं?" उसने उत्तर दिया—"मैं स्वयं तो ऊपर चढ़ नहीं सकता, जो ऊपर जा रहे हैं, उनकी टाँग पकड़कर नीचे खींचूँगा, जिससे ऊपर जानेवाले भी न चढ़ सकें।" ऐसे लोग दस्यु हैं।

जो समाज को हानि पहुँचानेवाले हैं, वे भी दस्यु हैं। जो सार्वजनिक स्थानों पर पानी पीकर नल खुला छोड़ देते हैं, जो पत्थर मारकर बल्ब तोड़ देते हैं, मोटरकारों के शीशे फोड़ देते हैं और इसी प्रकार के कार्य करते हैं, वे दस्यु हैं।

संसार का उपकार करो! दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझो! दूसरों के कल्याण और वृद्धि की भावना रक्खो!

७. अयज्ञान्

'जो यज्ञ, सत्सङ्ग, दान और उपासना-रहित हैं, वे दस्यु हैं।' जो यज्ञ-शील, सत्सङ्गी, दाता और उपासक हैं, वे आर्य हैं।

जो यज्ञ नहीं करते वे दस्यु हैं। यज्ञ का अर्थ संकुचित नहीं है। अग्नि में किया जानेवाला यज्ञ भी लाभदायक हैं। जिन घरों में दैनिक यज्ञ होता है, वहाँ यज्ञ की सुगन्ध कपड़ों में भी पहुँच जाती है। यज्ञ से अनेक बीमारियों का नाश होता है। वैदिक धर्म में प्रत्येक शुभकर्म और संस्कार के आरम्भ में यज्ञ करने का विधान है। वेद का उपदेश है—

ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम्।—ऋ० ३।८।८

'यज्ञ के झण्डे को सदा ऊँचा रक्खो।'

व्यापक अर्थों में—

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।—शत० १।७।१।५

'श्रेष्ठतम कर्म को, सर्वोत्तम कर्मों को यज्ञ कहते हैं।'

संसार में परोपकार आदि जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं वे सब यज्ञ हैं। अतः यज्ञ करने का तात्पर्य है, श्रेष्ठ कर्म करना।

संसार में दर्शनीय कौन है?—जिसके पास धन-धान्य बहुत है? नहीं। जिसके भवन बहुत ऊँचे-ऊँचे हैं? नहीं। जिसकी चमड़ी गोरी है? नहीं। चमड़ी तो वेश्या की भी गोरी होती है। फिर दर्शनीय कौन है? मैं कहता हूँ—

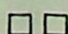
स्वनीको भवति कर्मभिः।

'मनुष्य अपने कर्मों से सुन्दर बनता है' अतः सुन्दर, उत्तम, श्रेष्ठ कर्म करो।

८. अयज्यून्

'विद्वानों का सत्कार न करनेवाले दस्यु हैं।' विद्वानों का सत्कार करनेवाले आर्य हैं। विद्वानों का आदर-सत्कार करना चाहिए। विद्वानों के अपमान से कुल और राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। चाणक्य के अपमान से नन्दवंश समाप्त हो गया।

राजा का कर्त्तव्य है कि अपने राष्ट्र में आर्यों को वृद्धि करे और जो दस्यु हैं, उन्हें दूर कर दे। यदि वे उच्चपद पर हों, तो उन्हें पदच्युत कर दें।



मानव-जीवन की योजना

परिचिन्मर्तो द्रविणं ममन्याद्‌तस्य पथा नमसा विवासेत्।
उत स्वेन क्रतुना संवदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात्॥

—ऋ० १०।३१।२

शब्दार्थः—(मर्तः) मनुष्य (परिचित्) सर्वतः, सब ओर (द्रविणम्) धन को (ममन्यात्) चाहे, कमाये। (नमसा) दृढ़ता के साथ (ऋतस्य पथा) ऋत के पथ से (आ विवासेत्) साधना करे (उत) और (स्वेन क्रतुना) अपने कर्म से, अपने आत्मा से (संवदेत्) बोले, संवाद करे। (मनसा) मन से (श्रेयांसम् दक्षम्) कल्याणमय, मङ्गलमय उत्साह को, भद्र संबल को, परोपकार की भावना को (जगृभ्यात्) ग्रहण करे।

व्याख्या—जीवन का वैदिक दृष्टिकोण क्या है? मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों का समविकास। शिक्षा का उद्देश्य भी यही है। किसी ने शिक्षा की परिभाषा करते हुए सुन्दर कहा है—

It (education) is the harmonious development of the physical, mental and moral faculties in a man.

हमारे जीवन में सभी शक्तियों का समविकास हो। जहाँ हम जीवन में आर्थिक उन्नति करें वहाँ धार्मिक उन्नति भी हो। हमारे जीवन में यह स्थिति न आये—

योग न युक्ति, ध्यान नहिं पूजा, वृद्ध भये अकुलाय।

केवल संसार में फँसे रहना, संसार में उलझे रहना, संसार के साथ ही चिपटे रहना भी ठीक नहीं है। आङ्गल कवि वर्ड्सवर्थ के (Wordsworth) ने ठीक ही कहा था—

The world is too much with us,
Getting and spending we lay waste our powers.

'हम संसार के साथ ऐसे चिपके हुए हैं कि कमाने और खर्च करने में ही अपनी सारी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहे हैं।'

क्या यही जीवन है? क्या यही जीवन का उद्देश्य है? अपने जीवन को और जीवन के उद्देश्य को समझो! जीवन क्या है? किसी ने कहा है—Life is a tale told by an idiot. 'जीवन एक ऐसी कहानी है जो किसी मूर्ख द्वारा बताई गई है।' तो क्या सचमुच जीवन मूर्ख द्वारा बताई कहानी है?

क्या पेट की ज्वाला को शान्त कर लेना, भूख मिटा लेना ही जीवन है? नहीं, पेट तो गधे, घोड़े, कुत्ते और कौए भी भर लेते हैं। पेट की भूख तो अमीर और गरीब सभी मिटा लेते हैं। तब क्या ऊँचे-ऊँचे महलों, विमान-गृहों, अटारियों और भव्य प्रासादों में रहना ही जीवन है? नहीं—

Life in a hut can be most peaceful.
Life in a palace can be most miserable.

'झोंपड़ी में रहनेवाले मनुष्य का जीवन अत्यन्त शान्त हो सकता है और प्रासाद में रहनेवाले का जीवन अति दुःखी हो सकता है।'

महाराज जनक की घटना आपको ध्यान होगी। उन्होंने घोषणापूर्वक कहा था—

अनन्तं बत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन॥

महा० शान्ति० १७।१९

'दूसरों की दृष्टि में मेरे पास बहुत धन है, परन्तु उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। सारी मिथिला में आग लग जाए तो भी मेरा कुछ नहीं जलेगा।'

फिर जीवन क्या है ? कुछ लोग कहते हैं कि अग्नि, वायु, जल आदि भूतों को इकट्ठा किया और जीवन बन गया। इनके अलग-अलग हो जाने पर जीवन भी समाप्त हो जाता है। परन्तु भूतों को एकत्र करने से जीवन नहीं बन सकता। दार्शनिकों ने भूतों का अध्ययन करके यह समाधान किया है—

न भूत चैतन्यम्॥—सांख्य० ५।१३०

'पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश चेतन नहीं हैं।'

जब भूत जड़ हैं, उनमें जीवन है ही नहीं, तो उनके मिलाने से उनमें जीवन कैसे आ सकता है ?

तब जीवन क्या है ? ईसाई कहते हैं—It is merely a breath. 'प्राण ही जीवन है।' परन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। जीवन प्राणों का भी प्राण है।

दिव्य जीवन के लिए जीवन की योजना बनाओ और योजना भी ठीक ढंग से। योजना के अभाव में लाभ नहीं होता।

वेद ने इस संसार को एक नदी की उपमा दी है—

अश्मन्वती रीयते।—अथर्व० १२।२।२६

'संसाररूपी पथरीली नदी (Rocky Stream) बह रही है।' इस पथरीली नदी को पार करना है। जीवन में बड़े-बड़े प्रश्न आएँगे, उनका समाधान करना है। उनके समाधान के लिए परिश्रम और पुरुषार्थ करना होगा। बहादुरी से उनका मुकाबिला करना होगा। वेद कहता है—**वीरयध्वम्**—'संघर्ष करो।' उस संघर्ष के परिणामस्वरूप—The very dust under your feet will turn into gold. 'तुम्हारे पैर के नीचे की धूलि सुवर्ण में परिवर्तित हो जाएगी।'

मेरे जीवनरूपी भवन की नींव में सीमेण्ट क्या हो ?—मैं प्रत्येक परिस्थिति का वीरता से मुकाबिला करूँगा। मैं अपने जीवन को यज्ञमय एवं योगमय बनाऊँगा। मेरा बच्चा दो रुपये के रसगुल्ले खा जाए और पड़ौसी के बच्चे के पास फीस न हो, यह तो मनुष्यता नहीं ! हमारे पास अधिक धन हो तो हम दूसरों को बाँट दें। हाथी के भोजन में से यदि एक कौर नीचे गिर

पड़े तो उससे सहस्त्रों चींटियाँ अपना पेट भर सकती हैं। धनिकों का जीवन भी ऐसा ही हो। आजकल के धनिक लोग सिनेमा में जाकर पचासों रुपये पर पानी फेर देते हैं। यदि यह धन किसी निर्धन को दे दिया जाए तो कितना उत्तम हो! माताएँ पाँच-पाँच सौ रुपये की साड़ियाँ पहनती हैं। यदि इतनी बहुमूल्य साड़ियाँ न पहनकर यह रुपया अनाथों को दे दिया जाए तो कितना कल्याण हो जाए!

प्रस्तुत मन्त्र मानव-जीवन की एक सुन्दर योजना हमारे सामने उपस्थित करता है। मन्त्र कहता है—

१. परिचिन्मर्तो द्रविणं ममन्यात्

'मनुष्य ज्ञानपूर्वक धन का, आर्थिक सामग्री का चयन करे, संग्रह करे, खूब धन कमाए।'

धन जीवन के लिए आवश्यक है। वेद धन कमाने के लिए मना नहीं करता। वेद में स्थान-स्थान पर धन-प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएँ आती हैं। लीजिए कुछ मन्त्रों का अवलोकन कीजिए—

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्॥

—अथर्व० १६।३।१

'समस्त ऐश्वर्यवालों का मैं शिरोमणि बनूँ और अपने समान बल-ऐश्वर्यवालों का भी शिरोमणि बनूँ।'

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्॥

—अथर्व० १६।४।१

'मैं समस्त ऐश्वर्यवालों का केन्द्र बन जाऊँ। अपने समानवाले पुरुषों का भी मैं केन्द्र बन जाऊँ।'

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम्॥

अथर्व० ३।२०।२

'हे सर्वोन्नति-साधक ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप हमें इस संसार में उत्तम रीति से उपदेश करो तथा हमारे लिए कल्याणकारक बनो। हे समस्त प्रजाओं के पालक परमात्मन्! आप सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हो, अतः हमें सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करो।'

हम धन कमाएँ और खूब कमाएँ, परन्तु अन्याय से धन न कमाएँ। जब खोटा धन हमारे पास आए तो उसे ललकारकर कह दें—

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत।
अयस्मयेनांकेन द्विषते त्वा सजामसि॥

अथर्व० ७।११५।१

'ग्रो पापिन लक्ष्मी ! इस घर से परे भाग जा। यहाँ से नष्ट हो जा, उस घर से भी दूर चली जा। तुझ कुलक्षणा को ग्रपना द्वेषी जानकर लोहे के दाग़ से दाग़कर ग्रपने से परे भगाते हैं।'

ग्रन्याय से उपार्जित धन मनुष्य को नष्ट कर देता है। धन कमाग्रो। ग्रधर्मपूर्वक नहीं। वेद कहता है--

समुद्रं गच्छ स्वाहा। यजु० ६।२१

'ग्रपने जीवन की बाज़ी लगाकर समुद्र से भी धन प्राप्त करें' परन्तु ग्रपने दृष्टिकोण को धार्मिक रखो। ज्ञानपूर्वक कर्म करो।

२. ऋतस्य पथा नमसा विवासेत्

'मनुष्य दृढ़तापूर्वक ऋत के मार्ग से साधना करे'। मनुष्य सत्य, ज्ञान, सदाचार, ब्रह्मचर्य, न्याय, दया ग्रादि के पथ पर चले।

इस सृष्टि को निहारो ! सृष्टि में सर्वत्र ऋत=नियम ग्रौर व्यवस्था (Law and Order) दिखाई दे रही है। सूर्य को देखो ! सूर्य का तापमान (Surface Temprature) १०,८०० डिगरी फ़ैरनहीट है। २१२ डिगरी पर हाथ जल जाता है। लोग कहते हैं, यह संसार ग्रपने-ग्राप बन जाता है। तनिक कल्पना कीजिए, यदि यह तापमान २५,००० डिगरी हो जाए तो क्या होगा ? सभी कुछ जल-भुनकर राख हो जाएगा। जीवन मूर्ख की कहानी नहीं है। ब्रौन (W. D. Brown) ने ग्रपनी पुस्तक Superiority of Vedic Religion में लिखा है—The Vedic Religion is the most scientific. 'वैदिक धर्म सबसे ग्रधिक वैज्ञानिक है।' यदि सूर्य का तापमान ५०० डिगरी रह जाए तो हम सब जम जाएँ।

इस सृष्टि में निरन्तर यज्ञ हो रहा है। हम भी यज्ञमय जीवनवाले बनें। ग्राज हमारे जीवनों में ऋत कहाँ है—

वो भी दिन थे ग्रादमी का ग्रादमी खाता था ग़म।
हाय ग्रब तो ग्रादमी को ग्रादमी खाने लगा॥

हमारे जीवन में कोई नियम नहीं रहा—न उठने का न सोने का, न खाने का न पीने का, न पढ़ने का न लिखने का। ग्रपने जीवन को ऋत के ढाँचे में ढालिए, ग्रपने जीवन में सत्य ग्रौर प्रेम को स्थान दीजिए, क्योंकि—

The truth and love are the most powerful thing in the world.

इस मन्त्र-खण्ड का एक ग्रौर भी भाव है—ऋत के मार्ग में नम्र होकर सेवा करो। ईश्वर ग्रादर्श पुरुष है, उसे समर्पण कर दो, जीवन में नम्रता ग्राएगी।

३. उत स्वेन ऋतुना वदेत्।

'मनुष्य ग्रपनी ग्रात्मा से संवाद करे, ग्रपना निरीक्षण करे, ग्रपना स्वाध्याय करे ग्रौर देखे कि मैं प्रतिदिन ग्रागे बढ़ रहा हूँ ग्रथवा कोल्हू के

बैल की भाँति वही पड़ा हूँ।' आज आत्म-निरीक्षण के स्थान पर दूसरों के दोष देखे जाते हैं। छलनी सूई से कहती है—"बहन ! तेरे सिर में एक छेद है।" परन्तु छलनी यह नहीं सोचती कि मेरा तो सारा ही शरीर छेदों से भरा पड़ा है। ऊँट को दूसरों का टेढ़ापन तो दिखाई देता है परन्तु अपना टेढ़ापन दिखाई नहीं देता।

मनुष्य की भी यही स्थिति है। वह दूसरों के अवगुण देखता है, अपने नहीं। मन्त्र कहता है, एकान्त में बैठकर अपने जीवन की पड़ताल करो।

इस मन्त्र-खण्ड का एक और अर्थ भी है—हम अपने कर्म द्वारा बोलें। हम केवल बढ़-चढ़कर बातें ही न करें, कर्म करें—

कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोय।
कथनी छाँड करनी करे, विष से अमृत होय॥

वाणी से नहीं, कर्म से बोलो। लोग आपके कर्म से यह जानें कि आप क्या कहना चाहते हैं।

४. श्रेयसां दक्षं मनसा जगृभ्यात्

'मनुष्य मन से कल्याणमय उत्साह को पकड़े।' मनुष्य को सबका मङ्गलकारी होना चाहिए। उसे तो सबका उपकार करना चाहिए। अपकार के बदले में भी वह उपकार ही करे। जितना लोग उसका विरोध करें, उतना ही वह सबकी मङ्गलकामना करे। महर्षि दयानन्द का कितना विरोध हुआ परन्तु फिर भी सबका कल्याण ही किया। बच्चे उनपर पत्थर फेंकते थे और वे उन्हें मिठाई खिलाते थे। मर्यादा पुरुषोत्तमराम के जीवन को देखो ! जब लक्ष्मण जी ने श्रीराम को वनवास देनेवाली माता कैकेयी की निन्दा की तो श्रीराम कहते हैं—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।

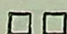
वा० रा० अरण्य० १६।३७

'हे लक्ष्मण ! तुम्हें मझली माता की निन्दा नहीं करनी चाहिए।'

दक्ष (उत्साह) चोरी, जारी, हिंसा के लिए भी हो सकता है। वेद कहता है कि यह उत्साह कल्याणमय हो, मङ्गलकारी हो। हमारे जीवन में अभद्र उत्साह नहीं होना चाहिए। मन का दक्ष (उत्साह) है संकल्प। यह दक्ष श्रेयान् हो, अतः वेद ने कहा —

मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। —यजु० ३४।१

मेरा मन शिवसंकल्पमय हो।



अनिष्ट-त्याग : इष्ट-प्राप्ति

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वाऽवद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥—ऋ० ५।५३।१४

शब्दार्थः—(मरुतः) हे विद्वानो ! आपके सहयोग और सहायता से हम (निदः अतीयाम) निन्दा करनेवाले मनुष्यों का त्याग करें। (स्वस्तिभिः तिरः अतीयाम) हम कल्याणकारी कर्मों को करते हुए खोटे कर्मों से बचें। (अवद्यम् अतीयाम्) हम पाप-कर्मों से पृथक् रहें। (अरातीः हित्वा अतीयाम) हम अदानशीलता और आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का पराभव करके आगे बढ़ें। (शम् वृष्ट्वी) हम सब पर सुख की वृष्टि करें। (आपः योः) हम योगाभ्यास द्वारा आनन्दमय परमात्मा के साथ युक्त हों। (उस्रि सह) हम गौओं को प्राप्त हों, इन्द्रियों के स्वामी बनें, (भेषजम् सह) हमारे पास अन्न, जल और ओषधियाँ पर्याप्त मात्रा में हों और साथ ही (सह स्याम) हम सब का सह-अस्तित्व हो।

व्याख्या—मन्त्र में आठ दिव्य-उपदेश हैं। मन्त्र के पूर्वार्द्ध में अनिष्ट का परि-हार और उत्तरार्द्ध में इष्टि-प्राप्ति की कामना है। आइए, मनन कीजिए—

१. मरुतः निदः अतीयाम

'हे विद्वानो ! हम निन्दा करनेवाले मनुष्यों का त्याग करें।'

मनुष्य को निन्दा करनेवालों से दूर रहना चाहिए। स्वयं किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि—

निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ।—ऋ० ५।२।६

'निन्दा करनेवाले स्वयं निन्दित होते हैं।'

निन्दा न करके गुण ग्रहण करो। मल पर बैठनेवाली मक्खी न बनो। फूलों से शहद एकत्र करनेवाली मधुमक्खी बनो। गिरे-से-गिरे मनुष्य में भी कोई-न-कोई गुण होता है, उस गुण को ग्रहण करो।

मन्त्र-खण्ड का एक अन्य भाव भी हो सकता है—निन्दा करनेवालों की निन्दा की परवाह न करके उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़े चलो। नीतिनिपुण लोग निन्दा करें या स्तुति—अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहो।

२. स्वस्तिभिः तिरः अतीयाम

'कल्याणकारक कर्मों को करते हुए खोटे, टेढ़े, उलटे और नीच कर्मों का उल्लं-घन करें, त्याग करें।' सदा शुभ कर्म ही करें—

शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासना-सरित् ।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥

योगवा० मुमु० ९।३०

'शुभ और अशुभ मार्गों से बहनेवाली वासनारूपी नदी को अपने पुरुषार्थ और प्रयत्न द्वारा अशुभ मार्ग से हटाकर शुभ मार्ग में लगाना चाहिए।'

An empty mind is the devil's workshop. खाली दिमाग शैतान का कारखाना बन जाता है। शुभ कर्म करते रहो, तो खोटे कर्मों से बचे रहोगे।

वह चाल चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी।
वह काम कर कि याद तुझे सब किया करें॥

३. अवद्यम् अतीयाम

'हम पाप कर्मों का त्याग करें।'

कर्म ही मनुष्य को बन्धन में डालते हैं और कर्म से ही मनुष्य को मोक्ष मिलता है। कर्म से ही मनुष्य ऊँचा उठता है और कर्मों से ही नीचे गिरता है। उत्तम कर्मों से मनुष्य उन्नति करता है। अतः निन्दित कर्मों, पाप कर्मों को त्याग देना चाहिए। कर्म का सिद्धान्त अटल है। वेद में कहा है—

पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति।—अथर्व० १२।३।४८

पकाने वाले को पका हुआ पदार्थ ही मिलता है। जैसा पकाता है, वही सामने आता है। खोटे कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है।

घटना १७५७ की है। तिलहर-नरेश के पुत्र इन्द्रदमन को गलित कुष्ठ हो गया था और युवराज्ञी पक्षाघात से लुन्ज हो गई थी। कारण जानने के लिए दीवान को पेशवा माधवराव के न्यायाधीश रामशास्त्री के पास भेजा गया। वे बड़े उच्च चरित्र व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन में कभी किसी से रिश्वत नहीं ली थी। घर में एक दिन से अधिक के लिए खाद्य सामग्री नहीं रखते थे। वे इतने धर्मात्मा और न्यायप्रिय थे कि जब रघुनाथराव ने माधवराव के भाई और उत्तराधिकारी पेशवा नारायणराव की हत्या में भाग लेने का प्रायश्चित्त पूछा तो रामशास्त्री ने निर्भीकता से कहा—"इसका प्रायश्चित तो तुम प्राण देकर ही कर सकते हो। यह पाप और किसी प्रकार नहीं धोया जा सकता। इसी कारण अब तुम और तुम्हारा राज्य भी फूले-फलेगा नहीं। रही मेरी बात, जब तक तुम्हारा राज्य है, तब तक न तो मैं तुम्हारी नौकरी स्वीकार करूँगा और न पूना में ही पैर रखूंगा।"

शास्त्री जी ने एक वर्ष तक साधु-सेवा-व्रत लेने का परामर्श दिया। वर्ष की समाप्ति पर एक दिव्य विभूति वहाँ पधारी। योग द्वारा उसने बताया—अहोबल में एक लक्षाधिपति सेठ थे। वे बड़े ईश्वरोपासक और दानी थे। गरीबों के लिए उनका सत्र सदा खुला रहता था। सभी तीर्थों में उनके दान-सत्र थे। उसके पुण्य से इन्हें राजकुल में जन्म मिला है। परन्तु युवावस्था के मद में उन्मत्त होकर इन्होंने अपनी अनुजवधू के साथ रति की। यह बात इनकी पत्नी से नहीं देखी गई। घर में कलह हुआ। अनुजवधू ने सेठ के सहयोग से इनकी धर्मपत्नी को खूब पीटा और रस्सी से बाँध, मुँह में कपड़ा ठूँस कुएँ में धकेल दिया। इसी दुष्कर्म का यह परिणाम है। सेठ राजकुमार है, अनुजवधू से रति के कारण कुष्ठ से पीड़ित है; युवराज्ञी वही अनुजवधू है, जिसने अपनी जेठानी की दुर्गति की थी।

ओ मानव! सदा स्मरण रख, तू सहस्राक्ष=हजारों आँखोंवाले की दृष्टि से बच न सकेगा।

४. अराती हित्वा अतीयाम

अदानशीलता और आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का पराभव कर हम आगे बढ़ें।

हम अदान शीलता का परित्याग कर दानी बनें। दान का फल क्या होता है? एक दिन महाराज भोज कहीं से रथ पर सवार होकर आ रहे थे। मार्ग में उन्होंने राजकवि को हाथी पर बैठे देखकर पूछा—"आपको यह हाथी कहाँ मिल गया?" राजकवि ने उत्तर दिया—

टूटा जूता दिया दान में, जिसका यह परिणाम।
मिला बैठने को यह हाथी, दान बड़ा शुभ काम॥

अराती का अर्थ शत्रु भी होता है। शत्रु दो प्रकार के होते हैं—आन्तरिक और बाह्य। हम दोनों प्रकार के शत्रुओं को कुचल डालें। आन्तरिक शत्रुओं को कुचलने के लिए वेद का आदेश है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥ —अथर्व० ८।४।२२

हे इन्द्र! उल्लू की चाल—वृत्ति मोह, भेड़िये की चाल क्रोध, कुत्ते की चाल चाटुकारिता, कोक—चिड़े की वृत्ति काम, सुपर्ण—गरुड़ की वृत्ति अभिमान और गिद्ध की चाल लोभ को तू ऐसे रगड़ डाल जैसे सिल-बट्टे पर मसाले को पीसते हैं।

बाह्य शत्रुओं के दमन के लिए वेद का सन्देश है—

उत्तिष्ठ सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥ —अथर्व० ११।१०।१

उदाराः=उत्+आराः। Always going upwords. सदा आगे बढ़ने वाले जनो! उठो, जागो, अपने झण्डे हाथ में लो और जो सर्प के समान कुटिल वृत्ति वाले राक्षस और शत्रु हैं, उन पर आक्रमण करो।

यहाँ मन्त्र का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है। यहाँ तक अनिष्ट का परिहार है। अब उत्तरार्द्ध आरम्भ होता है, जिसमें इष्ट प्राप्ति की कामना है।

५. शम् वृष्टवी

सुख की वृष्टि करते हुए हम आगे बढ़ें। हम किसी को दुःख न दें। हम दूसरों पर सदा सुख की वृष्टि करें। जो दीन हैं, दुःखी हैं, पददलित हैं, उन सभी को सुखी करें। एक कवि के शब्दों में—

काँटा लगे किसी को तड़पते हैं हम अमीर।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है॥

दूसरों को दुःख में देखकर हम दुःखी हो जाएँ, तड़प उठें। और कवि के शब्द में कह उठें—

इक हूक-सी दिल में उठती है, इक दर्द जिगर में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं, जब चैन से आलम सोता है॥

हम दूसरों के दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करें।

६. श्राप: योः

हम योगाभ्यास द्वारा श्रानन्दमय परमात्मा के साथ युक्त हों।

हमें यह मानव शरीर प्रभु-प्राप्ति के लिए मिला है। योगी याज्ञवल्क्य ने कहा है—

श्रयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्। —या० स्मृ० १।८

योगाभ्यास के द्वारा परमात्मा का दर्शन करना मनुष्य का परम धर्म है।

इस दिव्य मानव-देह, श्रयोध्यापुरी, ब्रह्मपुरी, नारायण की नगरी को प्राप्त कर इसी जन्म में प्रभु को प्राप्त करना चाहिए। जब तक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों में शक्ति है श्रौर श्रायु शेष है तभी तक उस परमात्मा को जान लो। यदि चूक गये तो महाविनाश हो जाएगा श्रौर शिल्हण मिश्रण के शब्दों में कहना पड़ेगा—

जन्मेदं बन्धतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येण विक्रीत हन्त चिन्तामणिर्मया।।

हन्त! सांसारिक भोगों की लालसा में फँसकर मैंने यह श्रमूल्य मानव जीवन बन्धन में डाल दिया। श्रहो! मैंने चिन्तामणि को काच के मूल्यों में बेच दिया।

७. उस्रि सह

हम गौश्रों को प्राप्त हों।

गौ का श्रर्थ है, गाय, वाणी श्रौर इन्द्रियाँ, गौ की महिमा में वेद कहता है—

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवां श्रप्येति ब्रह्मणा।। श्रथर्व० १०।१०।६

गौ यज्ञशाला जैसे पवित्र स्थान में रखने योग्य है, दूधरूपी श्रमृत प्रदान करने वाली है। जीवन प्रदायिनी है, पृथ्वी को उर्वरा बनाए रखने वाली है। उसके बछड़े पृथ्वी पर हल चलाकर श्रन्न उत्पन्न करते हैं। वह लक्ष्मी के समान धन प्रदान करने वाली है तथा विद्वानों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराने में सहायता प्रदान करती है।

वाणी से हम मधुर, सत्य एवं हितकर बोलें।

हमारी इन्द्रियाँ निर्मल एवं पवित्र हों।

८. भेषजम् सह

हम सदा भेषज से युक्त रहें।

भेषज के तीन श्रर्थ हैं—श्रन्न, जल श्रौर श्रौषध। हम श्रन्नवान् बनें। हमारे घर में उत्तम श्रन्नों के भण्डार भरे हुए हों। नाना प्रकार के पेय जल हमें प्राप्त होते रहें। यदि कभी रोगी हो जाएँ तो उत्तम श्रौषधें हमें प्राप्त हों।

९. सह स्याम

हमारा सह श्रस्तित्व हो। हम श्रपने लोगों के साथ सदा सुख से बने रहें। यह सह-श्रस्तित्व क्या है? महर्षि दयानन्द सरस्वती ने श्रार्यसमाज के नियमों में लिखा है—

"प्रत्येक को श्रपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में श्रपनी उन्नति समझनी चाहिए।"

यही है सह श्रस्तित्व। हम प्रत्येक को श्रागे बढ़ने में, ऊपर चढ़ने में, उन्नति करने में, ऊँचा उठने में, सहायता प्रदान करें। ▫

दीपावली का दिव्य सन्देश

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती



हमारे पर्वों में दीपावली का स्थान बहुत ऊँचा है। पर्व मानव-जीवन के लिए दिव्य सन्देश देते हैं। दीपावली पर्व भी प्रतिवर्ष अपना सन्देश लेकर आता है। दीपमाला का यह पर्व हमें कई दिव्य सन्देश देता है।

यह पर्व ऋतु-पर्व है। इस समय भारत में धान की फसल पककर तैयार हो जाती है। अपनी फसल को देखकर किसान का मन-मयूर नाच उठता है। नये अन्न को स्वयं खाने से पूर्व वह यज्ञ करके उसे देवताओं को खिलाता है। इस प्रकार यह नव-सस्येष्टि-पर्व है।

भारत में दीपावली से पूर्व वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है। वर्षा के कारण घरों में जो सीलन आ गई थी, अब दीपावली के पावन पर्व पर उसकी सफाई होती है। मकानों का जो रंग-रोगन उतर गया था; घरों की मरम्मत कर उन्हें लीपा-पोता जाता है। घरों में यज्ञ किया जाता है जिससे अनेक प्रकार की विषैली गैसों का प्रभाव समाप्त हो जाता है। रात्रि में दीपक जलाये जाते हैं जिससे अनेक प्रकार के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

दीपावली—दो शब्दों से बना है दीप+आवली। दीपों की पंक्ति, और दीपमाला—दीपकों की माला। दीपक क्यों जलाते हैं? एक वर्ष में बारह अमावस्याएँ होती हैं। सभी अमावस्याओं में घोर अन्धकार होता है परन्तु दीपावली की अमावस्या सबसे अधिक अन्धकारमयी होती है। एक कवि के शब्दों में **'वर्षन्तीव तमो नभः'**—'ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश अन्धकार की वृष्टि कर रहा है।' इस अन्धकार को दूर करने के लिए मनुष्य भी दीपक जलाकर अपना प्रयत्न करता है।

दीपावली पर्व इतना ही प्राचीन है जितना वेद। वेद सृष्टि के आरम्भ में दिया गया था। अतः दीपावली पर्व भी सृष्टि के आरम्भ से ही मनाया जा रहा है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति ने पहले दिन अग्नि का आविष्कार किया वह भाग्यशाली था। परन्तु ऋग्वेद का तो प्रथम मन्त्र ही **'अग्निमीळे'** से आरम्भ होता है। वेद में अनेक स्थानों पर प्रार्थना है—

आरोह तमसो ज्योतिः—हे मानव! तू अन्धकार से निकलकर प्रकाश की ओर चल। इसी तथ्य को शतपथ ब्राह्मण ने कहा—**'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'** प्रभो! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल। दीपावली के जलते हुए दीपक हमें सन्देश देते हैं—ओ मानव! तू अपने आत्मारूपी दीपक को जला! Illumine Your self. आत्म-ज्योति को जागृत करो। आध्यात्मिक दीपावली मनाओ। स्मरण रक्खो—

एक दीप अपने आप जलता जो
बुझे हुए लाखों दीपों को जलायेगा

परन्तु बुझे हुए लाखों प्रदीप
एक दीपक को न जलाने पायेगा ।।

'**अग्निना अग्निः समिध्यते**'—दीपक से दीपक जलता है, जीवन से जीवन प्रकाशित होता है। अपने आत्मारूपी दीपक को जला—यह दीपमाला का पहला सन्देश है।

दीपावली के दिन वैश्य लोग लक्ष्मी का पूजन करते हैं। सोने की मोहरें (Golden Coins) या चांदी के रुपये लेकर उन्हें दूध से धोते हैं। इसका रहस्य क्या है इसे भूल गये। सोने और चांदी के सिक्कों को दूध से धोने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि आपका धन, आपकी कमाई दूध-जैसी धुली हुई शुद्ध और पवित्र होनी चाहिए। धन कमाओ और खूब कमाओ, परन्तु ईमानदारी से। बेईमानी करके, छल से, कपट से, दूसरों का गला काटकर, दूसरों का शोषण करके, दूसरों का हक छीनकर धन मत कमाओ। वेद का आदेश है—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ।।

'पुरुषार्थ से धन कमाओ। पुरुषार्थ, परिश्रम और ईमानदारी से कमाया हुआ धन प्रतिदिन आपकी पुष्टि का कारण बनेगा। उस धन का सेवन करके आपकी सन्तानें उत्तम बनेंगी और संसार में आपका यश फैलेगा।' पवित्र कमाई कर—यह दीपावली का दूसरा सन्देश है।

लोगों में एक ग़लत विश्वास पैदा हो गया है कि दीपावली के दिन जुए में जिसकी जीत हो जाती है, वह वर्षभर जीतता रहता है; अतः बहुत-से व्यक्ति दीपावली के दिन जुआ खेलते हैं। यह धारणा मिथ्या और भ्रामक है। वेद का सन्देश है—"अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमाना" अर्थात् 'जुआ मत खेलो! खेती करो और खेती द्वारा जो धन प्राप्त हो उसी को अपना सर्वस्व मानो।' जुआ निठल्लेपन का प्रतीक है और खेती परिश्रम का। परिश्रम से धन कमाओ! जुआ मत खेलो! जुए के कारण नल नष्ट हुआ। जुए के कारण युधिष्ठिर और उनके भाइयों पर आपत्ति आई। अतः दीपावली का तीसरा सन्देश है—अक्षैर्मा दीव्यः—जुआ मत खेलो!

जैसा हमने पहले कहा—दीपावली अत्यन्त प्राचीन पर्व है, इतना ही पुराना जितना परमात्मा द्वारा दिया हुआ वेद। परन्तु लोगों में एक ग़लत धारणा चल पड़ी है; प्रायः ऐसा कहा और लिखा जाता है कि दीपावली के दिन वनवास से लौटने पर श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ था, उसी प्रसन्नता में दीपमाला की गई थी। श्रीराम की रावण के ऊपर विजय के उपलक्ष्य में यह पर्व मनाया जाता है—यह विश्वास बिल्कुल झूठा है।

इस पर्व का मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा मैं डंके की चोट के साथ कह सकता हूँ। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि आर्य-समाज श्रीराम को नहीं मानता। हमारे पर्वों में रामनवमी भी एक पर्व है। उस दिन आर्य-समाजों में श्रीराम के जीवन पर प्रवचन होते हैं। रामायण की कथा होती है। श्रीराम

का दीपावली पर राज्याभिषेक महर्षि वाल्मीकि और सन्त तुलसीदास दोनों की रामायणों से नहीं होता। श्रीराम के राज्याभिषेक का सामान इकट्ठा करने का आदेश देते हुए दशरथ जी वसिष्ठ जी से कहते हैं—

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
अभिषेकाय रामस्य सर्वमेवोपकल्पताम् ॥

'यह चैत्र का मास है, इस समय सारे वन-उपवन पुष्पों से सुशोभित हो रहे हैं। ऐसे शुभ अवसर पर आप श्रीराम के राज्याभिषेक के सामान की तैयारी कीजिए। दूसरे ही दिन श्रीराम का वनवास हो गया। अब तनिक विचारिए, चौदह वर्ष कब पूरे होंगे? चैत्र में या कार्तिक में? श्रीराम ने वर्षा ऋतु तो प्रस्रवण गिरि पर बिताई थी। वर्षा समाप्त होने के बाद सीता की खोज आरम्भ हुई। वानरों को सीता को खोजने के लिए एक वर्ष की अवधि दी गई। तब कार्तिक में श्रीराम का राज्याभिषेक कैसे हो सकता है? रावण का वध कब हुआ? रामचरित-मानस के अनेक संस्करणों में श्रीराम-वनवास के कार्यक्रम का एक तिथि-पत्र दिया हुआ है। वहाँ लिखा है—

चैत्र शुक्ल चौदस जब आई।
मर्यो रावण जग दुखदाई ॥

रावण चैत्र में मारा गया। इस प्रकार यह सिद्ध है कि दीपावली के साथ श्रीराम का कोई सम्बन्ध नहीं है।

दीपावली सृष्टि के आदि से चला आ रहा है। हाँ, बीच-बीच में कुछ महापुरुषों का सम्बन्ध इस पर्व के साथ जुड़ गया। जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी का निर्वाण दीपावली को हुआ था। सिखों के गुरु अर्जुनदेव का बलिदान इसी दिन हुआ था। स्वामी रामतीर्थ ने भी इसी दिन जल-समाधि ली थी। आर्य-समाज के संस्थापक, क्रान्ति के अग्रदूत, महान् वेदज्ञ, योगिराज, देश-सुधारक, अधर्मोद्धारक, नारी-उत्थान के प्रबल समर्थक, अखण्ड ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण भी दीपावली के दिन ही हुआ था। आर्य-समाज दीपावली पर्व को ऋषि-निर्वाण-उत्सव के रूप में मनाता है।

जिस समय भारत के नहीं, विश्व के भाग्य आकाश पर अविद्या और अन्धकार की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं। कहीं अनाथ विधवाओं का क्रन्दन हो रहा था। कहीं छूआछूत का बोल-बाला था। मन्दिरों में पण्डे और पुजारियों की तूती बोलती थी। वहाँ देव-दासियाँ रखी जाती थीं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की होली हो रही थी। हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनाया जा रहा था। नारियों को पैर की जूती समझा जाता था। उन्हें वेद पढ़ने का, वेद ही क्या कुछ भी पढ़ने का अधिकार नहीं था। शंकराचार्य ने उनके लिए घोषणा कर दी "द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।" नरक का द्वार क्या है नारी! वेद को लोग भूल चुके थे। लोगों का विश्वास था—वेद को शंखासुर ले गया है। ऐसी भीषण परिस्थितियों में महर्षि दयानन्द भारतीय रंगमञ्च पर अवतीर्ण हुए।

महर्षि दयानन्द ने भारत की परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन किया। भारत की समस्याओं को समझा और उनका समाधान किया।

भारतीय वेदों को भूल चुके थे। पाश्चात्यों ने उन्हें गडरियों के गीत बताया। महर्षि दयानन्द ने वही वेद-ज्ञान, जो सृष्टि के आदि में परमात्मा ने चार ऋषियों को दिया था, पुन: लोगों को प्रदान किया। उन्होंने आर्य-समाज के नियम बनाते हुए कहा—

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

आप भी वेद पढ़ने का व्रत कीजिए। प्रतिदिन वेद पढ़ो! चाहे वेद का एक शब्द ही पढ़ो, आपका कल्याण होगा।

महर्षि के आगमन से पूर्व शैव और वैष्णवों के झगड़े थे। महर्षि ने कहा, झगड़ते क्यों हो—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। परमात्मा एक है, उसके नाम अनेक हैं संसार को उत्पन्न करने के कारण उसे ब्रह्मा कहते हैं, संसार का पालन करने के कारण विष्णु और संहार करने के कारण शिव कहते हैं। ये सब नाम एक ही परमात्मा के हैं।

परमात्मा एक है, अद्वितीय है। महर्षि ने एक दृष्टान्त दिया। एक महात्मा के ा चेले थे। एक दाहिनी टांग की सेवा करता था, दूसरा बाईं की। एक दिन एक शष्य ने देखा कि दूसरे साथी की टांग मेरी टांग पर पड़ी है। बस एक डण्डा जमा दिया। दूसरे ने देखा मेरी टांग सूज रही है। पता लगने पर उसने दूसरी टांग में दो डण्डे मार दिये। टांगों को लेकर झगड़ा हो रहा है, दोनों टांगें एक ही गुरु की हैं।

महर्षि ने कहा—परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम ओम् है। वेद में, दर्शनों में, उपनिषदों में, सर्मत्र ओम् के स्मरण का विधान है। वेद में कहा—ओम् क्रतो स्मर! हे कर्मशील जीव! तू ओम् का स्मरण कर। दर्शनों में कहा—'तस्य वाचकः प्रणवः' उस परमात्मा का वाचक प्रणव=ओम् है।

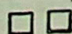
परमात्मा की मूर्ति नहीं है। वेद कहता है—**'न स्तय प्रतिमा अस्ति'**—उस परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है। महर्षि दयानन्द ने माता-पिता-प्राचार्य-अतिथि की पूजा करने का विधान किया है।

महर्षि ने कहा—परमात्मा अवतार नहीं लेता। जो सर्वव्यापक है, उसका आना-जाना कैसा?

महर्षि ने कहा जीवित—माता-पिता की सेवा ही सच्चा श्राद्ध है। मरे के नाम पर किसी को खिलाने से मरे प्राणी को नहीं पहुँच सकता।

महर्षि ने नारी जाति को वेद पढ़ने का अधिकार दिया। अछूतों को गले लगाया। वे गौ माता के वकील बने। उन्होंने वैदिक धर्म का द्वार विधर्मियों के लिए भी खोल दिया। उन्होंने अनाथों के लिए अनाथालय खोले, विधवाओं के लिए वनिता-विश्राम खुलवाए। गो-रक्षा के लिए गो-शालाएँ खुलवाईं। महर्षि के उपकारों को कहाँ तक गिनाएँ। एक कवि के शब्दों में—

गिनें जायें मुम्किन है सहरा के जर्रे, समुन्द्र के कतरे फ़लक के सितारे।
मगर कैसे मुम्किन स्वामी दयानन्द! गिने जायें हमसे एहसाँ तुम्हारे॥



गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु-दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र (उर्दू)	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४५.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेद शतकम्	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र)	१५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका-समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

कुछ नई पुस्तकें

सामवेद सूक्तिसुधा	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका एक सरल अध्ययन	प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००
वेद भगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल एम० ए०	६.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
दिव्य दयानन्द	,,	३.००
चतुर्वेद शतकम्	,,	८.००
कर्त्तव्यदर्पण	म० नारायण स्वामी	४.००
गीत भण्डार	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	४.००
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द २५.००

सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण) १०१.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति ।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है ।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

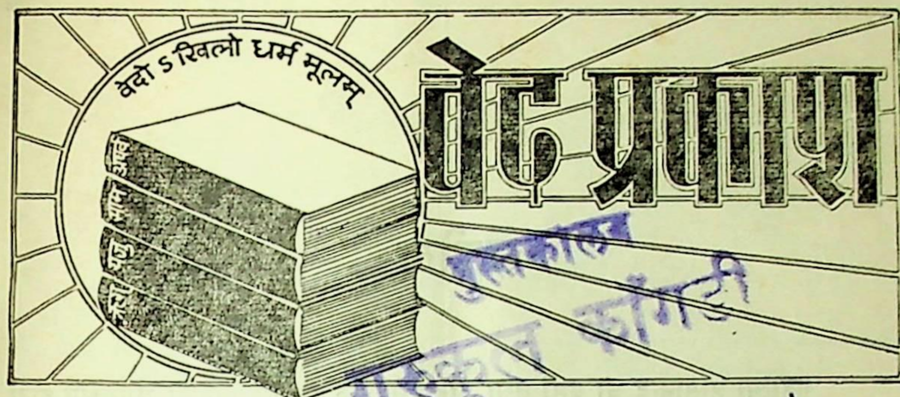
डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



सत्यार्थ सरस्वती क्यों ?

'ऋग् यजुः साम अथर्व' नाम से प्रसिद्ध वेद, सब सत्य विद्याओं का ग्रन्थ है। अनादिकाल से यही समस्त मानवों का **'आदि धर्म पुस्तक'** माना जाता रहा है। यह किसी जाति व देश विशेष का 'मतपुस्तक' नहीं। यह सब भाषाओं की जननी वैदिक संस्कृत भाषा में है।

इनके सार को लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जनमंगल कामना से **'सत्यार्थ प्रकाश'** ग्रन्थ रचा।

इस ग्रन्थ में मानव जीवन के इहलोक में अभ्युदय और परलोक में मोक्ष सुख प्राप्त कराने वाले सब विषयों का उल्लेख है और इससे सर्गादि में दिये वेदज्ञान को आधुनिक ज्ञानविज्ञान के चिन्तन को जोड़ दिया है; उस वेदधर्म की 'नित्यता सारवत्ता तथा सार्वकालिक उपयोगिता' को स्पष्ट कर दिया है। वेद का धर्म, सत्यज्ञानमय है और विना 'देश-काल-जाति-कुल-मत' भेद के, सब जीवों के पूर्ण उत्थान के लिये 'त्रिकाल-उपयोगी' है; यह स्थापना ऋषि दयानन्द ने 'वेदधर्मसार' सत्यार्थ प्रकाश रचकर की।

प्राचीन आर्ष प्रणाली में लिखा होने से यह ग्रन्थ इतना सुवोध और सुगमता से पठनीय नहीं है 'वेद से लेकर—जैमिनीमुनिपर्यन्त रचे मीमांसा शास्त्र' का सारभूत ग्रन्थ होने से, जिसने इन शास्त्रों के विषय न जाने हों, उनके लिये इस ग्रन्थ का सरलता से समझ में आना कठिन है। नित्यपाठ करना हो, तो और भी कठिनता है।

इसलिये मैंने इस उपयोगी ग्रन्थ का इस प्रकार से रूपान्तर कर दिया है कि यह धारावाहिक रूप से सुगमता से पढ़ा जा सके। फिर कई विषयों को जो ऋषि दयानन्द के संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, व्यवहारभानु आदि अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित थे, कहीं-कहीं प्रसंगानुसार जोड़ दिया है; ताकि वह विषय अधिक स्पष्ट हो जावे। कुछ व्याकरण का विषय व मूल संस्कृत के उद्धरण भी कम कर दिये हैं; परन्तु उनकी भाषा (हिन्दी) प्रायः रखी है।

विषयक्रम, रचनाशैली और भाषा, तीनों लगभग वैसे ही रहने दिये हैं; ताकि ऋषि की पवित्रवाणी का रसास्वादन सब जन मूल रूप में ही कर सकें। इस ग्रन्थ के परायण से ऋषि दयानन्द द्वारा किये 'धर्मचक्र परिवर्तन' का रूप एकदम स्पष्ट हो जावेगा।

मेरे इस प्रयास में कुछ त्रुटियाँ व कुछ दोष हो सकते हैं; वे सब विद्वानों के संकेत से अगले संस्करण में दूर कर दिये जावेंगे। **—मदनमोहन विद्यासागर**

अपील

महात्मा हासानन्द जी वर्मा तथा महामना पं० मदन मोहनजी मालवीय द्वारा स्थापित मथुरा-वृन्दावन के बीच स्थित हासानन्द गौशाला आज ४३ वर्षों से गोपालन और गोसम्बर्धन का कार्य निष्ठा से कर रही है। वर्तमान गौशाला में २७० गोवंश है जिसमें पचास के लगभग दुधारू गाय हैं। हरियाणा साड़ों द्वारा हमने हरियाणा नस्ल का विकास किया है और कर रहे हैं। पार्श्ववर्ती क्षेत्रों की गायों को भी अपने साड़ों द्वारा हम निःशुल्क सेवा देते हैं। गोपालन और गोसम्बर्धन की दिशा में इस भाँति किये जा रहे हमारे कार्यों से सन्तुष्ट होकर पशुपालक विभाग, उत्तर प्रदेश गौशाला फेडरेशन तथा सम्बन्धित विभागीय अधिकारी समय-समय पर हमें संस्तुति-पत्र प्रदान करते रहे हैं किन्तु बाधायें सद्कार्यों को भी प्रायः आ घेरती हैं यद्यपि वह अग्नि परीक्षा होती है परन्तु कार्य बाधा से प्रभावित तो होता ही है।

इस वर्ष हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ है। मथुरा की बाढ़ के प्रकोप के समाचार आपने पढ़े और सुने होंगे। इस बाढ़ से खादर की ४० एकड़ की हमारी सारी खेती बर्बाद हो गई है। जिसके एवज में गायों के लिये भूसे का प्रबन्ध करने तथा अन्न की क्षति पूर्ति पर हम पर २००००) से अधिक का अतिरिक्त भार आ पड़ा है। यमुना के सहारे-सहारे ४०० एकड़ भूमि में फैला हमारा चारागाह भी जिसमें न केवल हमारा गोवंश ही वरन् यहाँ की सभी गौशालाओं का तथा आस-पास के गाँवों का भी पशु चरता और विश्राम पाता था, प्रायः दलदल बन गया है। चरकर पेट भरने के लिये भी कोई स्थान बचा ही नहीं है। चारा, जो थोड़ा-बहुत बाजार में मिलता है, बहुत मँहगा हो गया है। फलतः चारे की विषम समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई है। इस विपदा में गौशाला के गोवंश का पालन आप जैसे गो सेवकों के सहयोग पर ही निर्भर करता है।

हमें आशा है कि चारा अथवा धन के रूप में अपना योगदान देकर आप गौमाता का उद्धार करेंगे। आप गौमाता का भला करेंगे तो गौमाता आपका भी भला करेगी।

आपके सहयोग के लिये हम आपके प्रति आभारी होंगे।

मन्त्री

मथुरा-वृन्दावन हासानन्द गोचर भूमि
ट्रस्ट-समिति, मथुरा।

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक ४] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [नवम्बर १९७८

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

विश्व का वैदिक आधार

आचार्य रमेशचन्द्र जी शास्त्री

वेद-व्याख्याता

विश्व के निर्माण से लेकर आज तक संसार के आधार को समझने का प्रयत्न बड़े-बड़े विचारक एवं वैज्ञानिक महानुभाव करते आ रहे हैं। अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार पृथक्-पृथक् सम्मतियाँ इस विषय में उपस्थित की हैं।

हमारे सामने जितने भी लोक-लोकान्तर दृष्ट अथवा अदृष्ट रूप से अवस्थित हैं, उन सभी का आधार अन्तिम रूप से एक ही होना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि पृथिवी तो किसी एक आधार पर स्थित हो, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल या बृहस्पति किसी अन्य आधार पर।

इस प्रश्न को इस प्रकार भी समझा जाता है कि इस समस्त चराचरात्मक जड़-चेतन विश्व का आधार एक-समान होना चाहिए; फिर चाहे वह आधार कुछ भी हो, वह संख्या में एक हो अथवा अनेक।

विगत चार सहस्राब्दियों से जब कि भारत-भूमि में वेद का परम पवित्र ज्ञान प्रायः लुप्त हो चुका था, एवं इसके साथ-साथ भारतीय बुद्धिवाद पर पौराणिकता का कपोलकल्पित पर्दा पड़ चुका था, विश्व के आधार के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक अवैज्ञानिक-अतथ्य धारणाएँ एवं मान्यताएँ संसार के सामने आयीं, जिनपर आज तक अनेक विद्वान् भी विश्वास कर रहे हैं।

जैसा कि प्रायः लोग विश्वास करते हैं,कोई तो इस पृथिवी का आधार शेषनाग को मानते हैं। कोई इस पृथिवी के नीचे भगवान् कच्छप को मानते हैं एवं उनकी कठोर पीठ पर पृथिवी को स्थित मानते हैं, कोई वृषभ को इस पृथिवी का आधार बताते हैं। उनकी मान्यता है कि एक वृषभ के सींग पर यह पृथिवी स्थिर है। उसका जब एक

सींग थक जाता है, तो यह पृथिवी को दूसरे सींग पर बदलता है, उस समय पृथिवी पर भूकम्प इत्यादि की अप्रत्याशित घटनाएँ घटती हैं।

कच्छप की विशाल पीठ पर पृथ्वी को स्थिर मानने वालों की यह मान्यता है कि सृष्टि के आदि में यह महती पृथिवी समुद्र के अनन्त-गर्भ में लीन था, विष्णु भगवान् ने वराहावतार धारण करके अपनी विकराल दष्ट्राओं से पृथिवी को पकड़कर सागर के अथाह सलिल से बाहर निकाला और भगवान् कच्छप की पीठ पर इसे अवस्थित कर दिया।

शेषनाग के फन पर पृथिवी को स्थित मानने वालों का भी विचार कुछ ऐसा ही है कि भगवान् शेषनाग ने स्वयं अवतार लेकर सृष्टि के आदि में इस विस्तृत भूखण्ड को अपने फण पर धारण किया हुआ है। वे शेषनाग सहस्रफण वाले महाशक्तिशाली हैं, वे ही इस संसार के अतुल भार को उठाये हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कल्पनाओं में बहकर विश्व अथवा पृथिवी का आधार खोजने की जिज्ञासा अभी तक भी अशान्त बनी है।

उपरोक्त सब विचार पौराणिक काल की देन हैं और किंवदंतियों के रूप में चलते हुए आज हम तक आ गये हैं। यहाँ इन सब विचारों की परीक्षा करने का अवसर नहीं है, फिर आज के वैज्ञानिक युग में तो इनका अथवा इनकी परीक्षा का कोई महत्त्व ही नहीं है। इसलिए हम भी इनकी विशेष चर्चा न करके इस विश्व का आधार खोजने का प्रयत्न करने में ही अपना समय लगाना चाहते हैं।

हम एक बात इस सम्बन्ध में और बता देना चाहते हैं। कतिपय प्राचीन विचारकों का अभिमत है कि यह आकाश अनन्त है, एवं इस अनन्त आकाश में यह पृथिवी अपनी परिधि में बराबर नीचे को गिरती चली जा रही है। क्योंकि आकाश अनन्त है, इसलिए पृथिवी के कहीं पर गिरने अथवा टकराने का कोई भय ही नहीं है।

उपर्युक्त धारणा वाले विचारक भी सम्भवतः किसी सही निर्णय पर पहुंचे बिना ही बीच में रह गये। यदि वास्तव में पृथिवी नीचे को गिरती चली जा रही है, तो हम जो पत्थर अथवा गेंद आकाश में फेंकते हैं, वे कभी पृथ्वी पर आ ही न सकेंगे। पृथिवी से ऊपर उड़ने वाले पक्षी अथवा वायुयान कभी पृथिवी पर पहुँचेंगे ही नहीं। यह एक साधारण-सी बात है। इस कारण यह मान्यता भी कोई ठोस आधार नहीं रखती।

हमारा यह प्रश्न कि पृथिवी का आधार क्या है, अभी तक अपने स्थान पर ही खड़ा है। उपर्युक्त किंवदन्तियों, ग़लत धारणाओं अथवा पौराणिक गाथा-विश्वासों से इस प्रश्न का समाधान नहीं किया जा सकता।

फिर हम इस प्रश्न का समाधान किस प्रकार करें? प्रश्न वास्तव में अत्यन्त गम्भीर है। आखिरकार इस विश्व का नियन्ता एवं धारणकर्ता कौन है? एवं वह किस प्रकार इसे धारण किये है, इत्यादि प्रश्न हमारे मस्तिष्क में तो घूम ही रहे हैं।

इस स्थिति में हमारे पास जो अत्यन्त प्राचीन साहित्य, अथवा धर्मग्रन्थ, अथवा ईश्वरीय ज्ञान के रूप में धरोहर है, वह वेद है। हमारे उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान यदि वेद में मिल सके, तो वह प्रामाणिक माना जाएगा।

जहाँ तक वैदिक आस्तिक जगत् का प्रश्न है, वेदों को स्वत:प्रमाण अथवा परम प्रमाण माना जाता है।

आधुनिक युग के सबसे महान् विद्वान्, वेदों के मर्मज्ञ श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती जब यह घोषणा करते हैं कि—

"वेद सब विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है।"

ऐसी अवस्था में वेद की स्वत:प्रामाणिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।

वेद ही ज्ञान-विज्ञान का महान् भण्डार है, इसीलिए श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने लिखा है—

श्रुतिश्च नः प्रमाणमतीन्द्रियार्थ-विज्ञानोत्पत्तौ" । वे० द० शां० भा० २।३।१।।

अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों के बोध एवं विज्ञान की उत्पत्ति में वेद को ही हमें प्रमाण मानना चाहिए।

अब हमें यही देखना चाहिए कि इस संसार अथवा चराचरात्मक जगत् के आधार के प्रश्न को वेद किस प्रकार हल करता है।

अथर्ववेद में एक सूक्त आता है जिसका नाम पृथिवी-सूक्त है। उसके प्रथम मन्त्र पर दृष्टि डालें।

सत्यं बृहत् ऋत मुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी उरुलोकं पृथिवी नः कृणोतु ।। १२ । १ ।।

इस वेदमन्त्र के प्रथम भाग में पृथिवी को स्थिर करने वाले, या यों कहिये कि इस चर एवं अचर जगत् को ही अवस्थित करने वाले कतिपय तत्त्वों का निर्देश किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

बृहत् सत्यम् । उग्रं ऋतम् । दीक्षा । तपः । ब्रह्म । यज्ञः ।

(१) सत्य (२) ऋत (३) दीक्षा (४) तपः (५) ब्रह्म (६) यज्ञ, ये छः तत्त्व वस्तुतः इस पृथिवी, जगत्, विश्व, संसार, कुछ भी कहिए—सबके धारण करने वाले हैं।

इस वेदमन्त्र के ये शब्द अत्यन्त सीधे एवं सरल प्रतीत होते हैं—किसी प्रकार का रहस्यपूर्ण आडम्बर इन शब्दों में प्रतीत नहीं होता।

अब हम आगे के लेख में इन छः तत्त्वों में से क्रमशः एक-एक की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

१. सत्यम्-बृहत्

पृथिवी को धारण करने वाले पदार्थों में सर्वप्रथम नाम "सत्य" का लिया गया है और बृहत् को उसका विशेषण बनाया है, बृहत् शब्द का अर्थ है महान्-बड़ा, तो सत्य वह वस्तु है जो महान् है, वह कोई छोटी-मोटी वस्तु नहीं है।

अब प्रश्न है कि सत्य है क्या? जब तक हम सत्य के स्वरूप का तात्त्विक विवेचन नहीं करेंगे, उसकी धारणा शक्ति को नहीं पहचान सकेंगे।

सत्य शब्द में जो मूल अर्थ है वह "सत्" इस अंश का है। इस सत् शब्द में भी मूलतः जो अर्थ है वह "अस् भुवि" इस धातु का है, इसी कारण इस शब्द की व्याकरण-व्युत्पत्ति "अस्तीति सत्" इस प्रकार की जाती है—अर्थात् जिस वस्तु की सत्ता हो उसे "सत्" कहते हैं। सत् वस्तु का भाव सत्य अथवा सत्ता कहलाती है। इससे पता चलता है कि सत्य नाम वस्तु की सत्ता या अस्तित्व का है। इस स्थिति में प्रत्येक छोटे-से-छोटे और महान् पदार्थ का भी अस्तित्व मानना पड़ेगा और यह अस्तित्व, सत्ता या सत्य ही पदार्थों का धारणकर्ता है।

निम्नलिखित कतिपय उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी—

मान लीजिए, आपके पास एक मेज़ पर एक छोटी-सी दवात रखी है। अब आप विचार कीजिए कि यह दवात मेज़ पर क्यों स्थित है जब कि वायु का सहस्रों मन दबाव उस पर पड़ रहा है, सूर्य की लाखों टन प्रकाश-शक्ति उसके चारों ओर फैल रही है, वर्षा ऋतु में चारों ओर जल या तूफ़ान उठ रहा है, अनन्त आकाश उसके सिर पर है, फिर यह छोटी-सी दवात किस प्रकार अपने को स्थित किये है। मानना पड़ेगा कि इसका कोई अपना अस्तित्व या सत्ता है; उसी के बल पर यह अवस्थित है।

पृथिवी पर अरबों की संख्या में छोटे-छोटे क्षुप खड़े हैं, जो आँधी-तूफ़ान एवं झञ्झावातों में अपने को स्थित रखने में अपने लघु सत्व के अनुसार कदापि समर्थ नहीं हैं, परन्तु फिर भी वे सूर्य की गरमी, वर्षा की झड़ी और आँधी के तूफ़ान को अपने सिर पर झेलकर अवस्थित हैं। उनकी कोई सत्ता है, तभी तो वे इस प्रकार खड़े हैं!

यह तो हुई अचेतन या अचर जगत् की बात। चर अथवा चेतन जगत् का भी यही हाल है—एक छोटी-सी पिपीलिका या एक उत्पन्न छोटा पतंगा अथवा एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु भी अपना जीवन धारण किये फिर रहा है। क्यों? इसीलिए कि उसकी अपनी एक सत्ता है, जिसके बल पर वह अनेक तूफ़ानों के मध्य में खड़ा होकर अपनी जीवन-यात्रा को चला रहा है।

इस विवेचन से हमें यह तो पता चलता है कि प्रत्येक अचर एवं चर पदार्थ अपने अस्तित्व से ही अवस्थित हैं। यदि यह सत्ता समाप्त हो जावे, तो पदार्थ नहीं रह सकता। धूल का एक अति लघु कण भी इसी की शक्ति पर अपने को स्थित किये है। एक तृण भी जंगलों में इससे जीवित खड़ा रहता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, तूफ़ान, आँधी, झञ्झावात, सूर्य का प्रखर ताप आदि उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

जंगलों में उगने वाली घास पर कितनी बार अग्नि ने आक्रमण किया, कितनी बार बाढ़ों का प्रकोप हुआ, पर क्या वह नष्ट हो सकी? खेतों में उगने वाले छोटे-छोटे क्षुपों पर कितनी बार किसान ने हल चलाये, कितनी बार उनको उखाड़ कर फेंका गया, पर क्या वे नष्ट हो सके? यह सब इसी सत्य का प्रसाद है। सत्य अमिट है, इसलिए अस्तित्ववाली कोई भी वस्तु मिट नहीं सकती।

जिस प्रकार एक लघु-से-लघु अणु अपनी सत्ता से अवस्थित है, उसी प्रकार एक महान्-से-महान् पदार्थ भी अपनी ही सत्ता से अवस्थित है। यह पृथिवी, यह सूर्य,

यह चन्द्रमा, ये आकाश में चमकने वाले करोड़ों-अरबों नक्षत्र, या यों कहना चाहिए यह समस्त ब्रह्माण्ड ही अपनी सत्ता से स्वयं स्थित है। इसीलिए सत्य को महान् कहा गया है, एवं वेद-मन्त्र में उसका विशेषण दिया गया है "बृहत्"।

यह सत्य छोटा नहीं है, "बृहत्" है—यह बढ़ता चला जाता है। "बृहि वृद्धौ", सत्य का आश्रय लेने वाला हर समय अपनी वृद्धि करता है, वह कभी घटता नहीं।

निरुक्तकार महर्षि यास्क ने सत्य शब्द का एक बड़ा ही निराला अर्थ किया है—

"सत्सु तायते इति सत्यम्"

सत्य वह वस्तु है जिसका विस्तार सत् अर्थात् अस्तित्व वाले पदार्थों में होता है। यह विस्तृत होता, फैलता चला जाता है, छोटा नहीं होता। सत्य की प्रतिष्ठा बढ़ती चली जाती है, वह घटती नहीं। क्या, जो सत्य पृथिवी का धारण करने वाला है, इस चराचर जगत् का धारणकर्ता है, वह कभी छोटा हो सकता है? वह इस विश्व से भी महान् है, क्योंकि वह आधार है; यह विश्व तो उसका आधेयमात्र है, तो उसके सम्मुख यह तो छोटा होगा ही।

वेद तो कहता है—

सत्येनोत्तभिता भूमिः ॥ अ० १४। १। १॥

सत्य ने इस भूमि एवं आकाश को इस प्रकार उठाया हुआ है, जैसे एक बालक कन्दुक को हाथ में उठाये फिरता है। यदि पृथिवी एवं आकाश इस सत्य का, सत्ता का, अस्तित्व का परित्याग कर दें, तो एक क्षण के वास्ते भी ये ठहर नहीं सकते।

"सत्सु तायते" का दूसरा अर्थ और भी है। सत्य की प्रतिष्ठा सत् पुरुषों में होती है, श्रेष्ठ पुरुषों में सत्य ही प्रतिष्ठित रहता है, असत्य की प्रतिष्ठा वहाँ नहीं होती। जितने भी सत्पुरुष, सन्त, महात्मा इस विश्व में हुए हैं, उन्होंने सदा सत्य की ही प्रतिष्ठा की है, असत्य की कदापि नहीं।

राजा हरिश्चन्द्र, महर्षि वशिष्ठ, राजा दिलीप, राजा दशरथ, भगवान् राम, योगिराज श्री कृष्ण, महर्षि सुकरात, महात्मा गैलीलियो, महात्मा गौतम बुद्ध, स्वामी शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी, ये सभी सत्य के प्रतिष्ठापक हुए हैं। सत्य के वास्ते ही ये ज़हर के प्याले अमृत समझ कर पी गये, छाती में गोलियाँ खा गये, फाँसी के तख्ते पर झूल गये, परन्तु इन्होंने सत्य का मार्ग कभी नहीं छोड़ा। सत्य का मार्ग ही तो देवयान-मार्ग कहलाता है:

सत्येन पन्था विततो देवयानः

अर्थात् इस देवयान मार्ग के द्वारा सत्य का आचरण करने वाले मुक्त होते हैं। यह सत्य ही परमधर्म है—

नहि सत्यात्परो धर्मः

इससे ऊपर कोई अन्य धर्म नहीं है। सत्य का आचरण करने वाला व्यक्ति महान् से महत्तर और महत्तर से महत्तम बन जाता है, वह उत् से उत्तर ज्योति को प्राप्त करता है और उत्तर से उत्तम ज्योति को पहुंच जाता है।

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवंदेवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।। ऋक्० १।५०।१० ।।

सत्य का पालन करने वाला अपने-आपको अन्धकार से ऊपर उठा लेता है तो 'उत्' बन जाता है, जब वह स्वः अर्थात् आनन्द को प्राप्त होता है, तो 'उत्तर' बन जाता है, परन्तु जब वह दिव्यजगत् के मध्य रहने वाली सर्वतो दिव्य वस्तु को प्राप्त होता है, जिस वस्तु का प्रकाश सूर्य से भी महान् है, तब वह व्यक्ति 'उत्तम' बन जाता है।

उत्, उत्तर और उत्तम ये तीनों उसी दिव्य ज्योति के भेद हैं, जिसे सत्य द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस ज्योति को प्राप्त करते हुए मानव भी अपने-आपको उत्, उत्तर और उत्तम बना लेता है। मानव की यह उत्तमावस्था ही उसकी तुरीय-अवस्था है, मोक्षधाम है।

यही इस सत्य का आध्यात्मिक विवेचन है। इसी सत्य के द्वारा जीवात्मा का अस्तित्व बढ़ता चला जाता है। यह सत्य जीवात्मा को महान् बनाता चला जाता है, बृहत् बना देता है। इसीलिए सत्याचरण करने वाले का प्रताप कोई सहन नहीं कर सकता।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सत्य चर एवं अचर विश्व का धारणकर्ता है। वह एक लघु-से-लघु एवं महान्-से-महान् दिव्य शक्ति है, जो विश्व के समस्त जड़-चेतन पदार्थों में सन्निहित है। जिस पदार्थ का सत्य जब तक बना रहता है, वह पदार्थ तब तक अपने अस्तित्व को बनाये रखता है। पदार्थ का सत्य समाप्त होते ही पदार्थ स्वयं समाप्त हो जाता है।

वेदों में अनेक स्थानों पर इस सत्य की महती महिमा का विस्तार भरा पड़ा है, स्थानाभाव से उस समस्त महिमा का वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

सत्यनिष्ठा भारत का प्राचीन आदर्श है। भारतीय मानव सत्य के प्रति अपने प्राणों का मोह तुच्छ समझता है। उसका यह आदर्श वाक्य आज समस्त विश्व को एक महान् सन्देश देता है—

सत्यमेव जयते नानृतम् ।

सत्यम् एव जयते = सत्य की ही विजय होती है। यहाँ एवं शब्द ही हमारा अन्तिम आदर्श है। इसका तात्पर्य यही है कि हम सत्य के लिए ही जीते हैं, असत्य के लिए नहीं।

इसी कारण भारत के मानव देवता कहलाते हैं। सत्य का आचरण करने वाले देवता होते हैं। देवत्व प्राप्त करने के लिए सत्य में प्रतिष्ठित होना परम-आवश्यक है।

इसीलिए शतपथ ब्राह्मणकार ने लिखा है—

सत्यं वै देवाः अनृतं मनुष्याः ।। १।१।१।।

व्रतबन्धन मन्त्र में—

इदम्, अहम् अनृतात्, सत्यम्, उपैमि

मानवता से देवत्व की ओर अग्रसर होने के लिए अनृत को त्यागकर सत्य की ओर बढ़ना अथवा सत्य को प्राप्त करना चरम लक्ष्य होना चाहिए।

सत्य की प्राप्ति ही मनुष्य का चरमलक्ष्य है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। यजु० ।।

व्रत, दीक्षा एवं श्रद्धा ये तीनों उत्तरोत्तर एक-दूसरे का कारण बनते हुए अन्त में सत्य में ही परिनिष्ठित होते हैं। यज्ञ, नियम, दान, तप, व्रत, यम सबका एकमात्र लक्ष्य है सत्य—चिरन्तन सत्य की प्राप्ति, जिस पर यह सारा संसार स्थिर है।

सत्य की जितनी महिमा गाई जाए उतनी ही कम है। सत्यवादी का पक्ष भौतिक बल के अभाव में भी सबल हो जाता है। यही कारण है कि रावण के सामने राम का पक्ष एवं दुर्योधन के सामने युधिष्ठिर का पक्ष बलवान् रहा। सत्य के बल के सामने सारी भौतिक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। वे एक के बाद एक बिखरती दिखाई देती हैं। प्रह्लाद की क्या शक्ति थी कि वह अपने सम्राट् पिता की शक्ति के सामने खड़ा रह सकता, पर सत्य ने उसे खड़ा कर दिया। कंस का संहार करते समय युवा कृष्ण में जो तेज था, वह इसी सत्य का ही तो था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का सिर उड़ाते समय कृष्ण में यही सत्य जागृत हो गया था। यह ठीक है कि हमें कुछ समय के लिए संसार में असत्य की विजय एवं सत्य की पराजय दिखाई देती है, परन्तु सत्य का अन्तिम परिणाम अपनी पराजय को भी जय में परिवर्तित कर देता है। सत्य के प्रतिष्ठाताओं ने ही संसार का मार्ग-प्रदर्शन किया है। वे अपने यशः-शरीर से आज भी विश्व में जीवित प्रतीत होते हैं। यदि सत्य की इतनी प्रतिष्ठा न होती, तो कौन सत्य पर बलिदान होता ? सत्य संसार का सञ्चालक है, असत्य उसका विनाशक है। सत्य मुक्तिदाता है, असत्य बन्धनकारक। सत्य इस विश्व का धर्ता है, असत्य इसका हर्ता है। इसी कारण महर्षि दयानन्द ने लिखा कि

"सत्य को ग्रहण करने एवं असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।"

महर्षि का उपर्युक्त वाक्य भारतीय वाङ्मय का महावाक्य है।

२. ऋतम् उग्रम्

इस विश्व के आधार के सम्बन्ध में जिस दूसरे तत्त्व का नाम लिया गया है, उसे "ऋत" कहा गया है। वेदों में इसकी विशेष व्याख्या की गयी है। स्थान-स्थान पर इसकी महिमा का वर्णन भरा पड़ा है। अब प्रश्न उठता है, ऋत क्या है और इसकी इतनी महिमा क्यों गाई गयी है। ऋत के भिन्न-भिन्न अर्थ किये गये हैं। यहाँ हमें यह देखना है कि ऋत शब्द का मूल धात्वर्थ क्या है ? ऋत शब्द "ऋ गतिप्रापणयोः" इस धातु से क्त प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। इस प्रकार ऋत शब्द में धात्वर्थ के अनुसार गति एवं प्रापण दो अर्थ हैं। गति का बड़ा विशेष स्थान है। शब्द-शास्त्र एवं शब्दार्थ-विज्ञान के वक्ताओं ने गति के बड़े रहस्य उपस्थित किये हैं। संस्कृत-व्याकरण के अनुसार इसके तीन अर्थ विशेष प्रसिद्ध हैं : (१) ज्ञान (२) गमन एवं (३) प्राप्ति। समस्त ज्ञान एक गति-विशेष के अन्तर्गत हो रहा है। गमन एक कर्म-विशेष है, प्राप्ति एक फल-विशेष। इस धात्वर्थ के विवरण से ऋत शब्द के अर्थों पर कुछ प्रकाश

पड़ सकता है। समस्त ज्ञान ऋत के अन्दर आता है। समस्त कर्म ऋत के अन्दर आते हैं, और प्राप्तियाँ (फल) ऋत के अन्दर आते हैं। इस प्रकार ऋत वह तत्त्व है, जिसका विस्तार विश्वव्यापी है। फिर यदि यह विश्व का नियामक एवं आधार हो तो आश्चर्य की क्या बात है? ऋत वह शक्ति है, जिसकी सृष्टि परमात्मा ने सर्वप्रथम की—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ॥ ऋ० १०।१९०।१॥

उस प्रकाशस्वरूप तपःस्वरूप परमात्मा से ऋत एवं सत्य नामक दो तत्त्व सर्वप्रथम प्रकट हुए।

सत्य नाम जहाँ अस्तित्व का है, वहाँ ऋत का धात्वर्थ है ज्ञान, गमन एवं प्राप्ति। ज्ञानपूर्वक जितने भी कार्य हैं, वे सब ऋत कहलाते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति एवं धारण में यही ज्ञान ऋत रूप से अन्तर्निहित है। ज्ञानपूर्वक गमन, अर्थात् कर्म करते हुए प्राप्ति, अर्थात् फल तक पहुँचना ऋत का समग्र धात्वर्थ होता है। यह समस्त विश्व किसी ज्ञानयुक्त व्यक्तित्व की रचना है, ऐसा इसे देखने तथा परखने से पता चलता है। विश्व का अस्तित्व ऋत के साथ दिखाई दे रहा है। 'ज्ञानपूर्वक गमन' अर्थात् नियमबद्ध-नियमित व्यवस्था के अन्तर्गत यह सब कार्य चल रहा है। यह नियमबद्धता, व्यवस्था, नियन्त्रण इस पृथ्वी, इस समस्त चराचरात्मक विश्व को धारण किये हुए है।

यदि हम इस विश्व में चारों ओर अपनी दृष्टि फैलाएँ, तो हम यहाँ के समस्त कार्यकलापों को किसी नियम के अन्तर्गत चलता हुआ पाएँगे। विश्व के सर्जन का कोई कार्य हमें अनियमित नहीं दिखाई देगा। यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि किसी भी संस्था, समाज, संघ या वस्तु के निर्माण से पूर्व उसके लिए नियमों की सत्ता आवश्यक है। इसी प्रकार सृष्टि के निर्माण से पहले भी उसके निर्माण-विषयक नियमों का अस्तित्व पहले हुआ। यही नियम 'वेदज्ञान' नाम से विश्व में प्रसिद्ध है। वेदों में इन्हीं नियमों की विस्तार से व्याख्या की गयी है। क्या इस विश्वचक्र का परिभ्रमण बिना किसी नियम के सम्भव है? जब एक छोटा-सा घर भी बिना पारिवारिक नियमों के नहीं चल सकता, तो यह विशाल ब्रह्माण्ड किस प्रकार नियमों के बिना संचालित हो सकता है! यहाँ प्रत्येक कार्य में नियमबद्धता है। समय पर सूर्योदय होता है, समय पर अस्त होता है। दिन के बाद रात्रि, रात्रि के पश्चात् दिन। सागर अपने नियम में स्थिर है, पृथिवी अपने नियमों में आबद्ध है, वायु अपने नियम से बह रहा है, नदियाँ अपने नियम से भाग रही हैं, फल-फूल अपने नियम से उत्पन्न होते हैं, ओषधियाँ अपने नियम से रसवती होती हैं। ऋतु-परिवर्तन के साथ कितना सुव्यवस्थित नियम कार्य कर रहा है? गरमी के बाद वर्षा, वर्षा के बाद सरदी। इस प्रकार चारों तरफ दृष्टि डालने से, सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओं का निरीक्षण करने पर सर्वत्र इसी नियम का साम्राज्य दिखाई दे रहा है। इसी नियमन व सुव्यवस्था का नाम ही ऋत है। इसी ऋत के साम्राज्य के कारण इस सृष्टि का समस्त कार्य अबाध गति से करोड़ों वर्षों से चला आ रहा है।

यहाँ हम वेदों के कुछ उद्धरण इस 'महतो महीयान्' ऋत के विषय में अपने

पाठकों के लाभार्थ लिख देना चाहते हैं। ऋग्वेद १।१०५ सूक्त पर दृष्टि डालिए। प्रश्न किया गया है, ऋत क्या है और अनृत क्या है ?

कद् व ऋतं कदनृतम् ॥५॥

कद् व ऋतस्य धर्णसि ॥६॥

इन प्रश्नों के उपरान्त मन्त्र १२ में—

ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यः

ऋत एवं सत्य का कितना सुन्दर वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, जिसे पढ़ कर मन-मयूर मस्त हो उठता है !

आगे चलकर ६।१०८ सूक्त में ऋत के सम्बन्ध में और भी स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की गयी है—

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥८॥

इस ऋत को सहस्रधार कहा गया है, जो कि इसकी उग्रता का द्योतक है। यह सहस्रधार होने से ही उग्र कहा जाता है। सकल देवताओं में यही ऋत कार्य करता दिखाई दे रहा है। जहाँ यह उग्र है, वहाँ यह पयोमुख भी है—"ऋतजात" यह समस्त कार्य-कलाप इस ऋत के द्वारा ही हो रहा है। इसी ऋत के कारण विश्व में सुव्यवस्था है, प्रतिष्ठा है और नियमन है। इसी के कारण वैषम्य के स्थान पर साम्य का, अशान्ति के स्थान पर शान्ति का, अन्धकार के स्थान पर प्रकाश का साम्राज्य फैला हुआ है। यह समस्त कार्य-प्रपञ्च इसी ऋत के कारण प्रपञ्चित हो रहा है। यही महान् देव है।

इस ऋत की उत्पत्ति विश्व-कारणभूत ब्रह्म से हुई है। इसका वर्णन वेदों में भी स्थान-स्थान पर किया गया है—

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्य दुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ अथर्व० ११।७।१७॥

ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रम, धर्म, कर्म, भूत, भविष्यत्, वीर्य, लक्ष्मी, बल ये समस्त वस्तुएँ उसी 'उच्छिष्ट' ब्रह्म के आश्रय में स्थित हैं।

वेद में एक अन्य स्थान पर ऋत की महिमा का गान करते हुए उसे काव्य एवं कवियों की वाणीं का रक्षक बताया है।

पतंगो वाचं मनसा विभर्ति तां गन्धर्वोऽवदत् गर्भे अन्तः ।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो निपान्ति ॥

ऋ० १०।१७७।२॥

यह पतंग, जीवात्मा मन के द्वारा वाणी का धारण करता है। यह गन्धर्व, प्राण अन्दर ही अन्दर उसे बोल रहा है। उस परम तेजस्विनी वाणी को कवि ऋत के स्थान में सुरक्षित कर रहे हैं। यह समस्त विश्व मानो एक कवि का काव्य है, जो ऋत में सुरक्षित रहता है। इसी ऋत के कारण यह काव्य कभी नहीं मरता।

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति । अ० १०।३।३२

इस ऋत को विश्व के साम्राज्यों का धारणकर्ता भी कहा गया है। जो राजा 'ऋतवान्' होते हैं, वे ही साम्राज्यों के स्वामी बनते हैं—

ऋतावाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।

धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः । ऋ० ८।२४।८।।

ऋत अर्थात् सुव्यवस्था करने वाले (ऋतावाना) राजा श्रेष्ठ कर्म करते हुए साम्राज्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। व्रतों को धारण करने वाले, क्षात्र धर्म से युक्त क्षत्रिय ही क्षात्र-तेज को प्राप्त करते हैं। उपर्युक्त मन्त्र से पता चलता है कि यह ऋत ही राजा में प्रविष्ट हो कर साम्राज्यों की व्यवस्था करता है। साम्राज्यों की व्यवस्था विना नियमों के नहीं हो सकती। ऋत का क्या ही मनोरम वर्णन किया गया है!

ऋत का पालन करने वाले राजा अपने कीर्ति-शरीर को अक्षय बना देते हैं। उनका वर्चस्व श्रेष्ठतम हो जाता है—

ताहि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।

ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जने जने ।। ऋ० ५।६५।२।।

'ऋतावाना जने जने' जन-जन में ऋत की अभिवृद्धि करने वाले राजा ही वास्तव में 'सत्पती' कहलाते हैं। अन्तर्यामी प्रभु को राजा कहा जाता है, क्योंकि वह इसी ऋत के द्वारा अणु-अणु के भीतर सुव्यवस्था का संचारण कर रहा है, जिसके कारण यह जगत्-प्रपञ्च अनित्य होते हुए भी नित्य नियमित के समान प्रतीत होता है।

वेदों में राज्य-सभा, राज्य-सञ्चालन, राजा एवं राज्य-धर्म के साथ प्रायः ऋत का प्रयोग किया गया है। श्रेष्ठ नरपुंगवों को "ऋतजाता, ऋतावृध, ऋतावान, ऋतसाप" इत्यादि शब्दों से पुकारा गया है। इससे प्रतीत होता है कि वेदों में ऋत की कितनी महिमा गायी गयी है। यह ऋत बड़ा उग्र है। उग्र का अर्थ है कठोर। जो राजा अपने राज्य में इस ऋत का निर्माण करते हैं, समय आने पर यह उनको भी नहीं छोड़ता। कानून बनाने वाले स्वयं उस कानून से बँधते हैं। ऐसा नहीं होता कि कानून के निर्माता स्वयं उन कानूनों से न बन्धें। कानून के प्रतिष्ठाता स्वयं कानून का भंग नहीं कर सकते। कानून बनाते समय वे स्वतन्त्र हैं, पर उसके बनने के पश्चात् वे स्वयं उसमें परतन्त्र हो जाते हैं। शासक स्वयं भी उन्हीं नियमों से शासित होते हैं, जो प्रजा के लिए बनाते हैं। बस, यही कारण है कि वेद ने इस ऋत को उग्र कहा है। इसी उग्रता के कारण संसार में ऋत का इतना वर्चस्व स्थापित हो सका है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती, वह अपने नियमों का भंग करने वालों को नियमानुसार दण्ड देती ही है। प्रकृति की इस नियामिका की शक्ति नाम ही ऋत है। इसी कारण यह ऋत इस भूमि, अन्तरिक्ष, विश्व, जगत्, सब का आधार माना जाता है। क्योंकि इसके बिना किसी भी वस्तु का अपने स्वरूप में अवस्थित रहना सम्भव नहीं है। इस कारण यह ऋत नियामक होने से इस विश्व का धारणकर्ता है।

३. दीक्षा

दीक्षा का अर्थ है किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए मन में दृढ़-संकल्पपूर्वक कटिबद्ध होकर काम करते जाना एवं कार्य करने से पूर्व उस कार्य की सम्पूर्ति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करना। जब कोई व्यक्ति किसी शुभ कार्य में दीक्षित हो जाता है, तब वह उसकी पूर्ति के वास्ते सतत प्रयत्न करता है। उसका एक ही ध्येय हो जाता है कि "**कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्**" अर्थात् या तो इस कार्य को सिद्ध करूँ या अपना शरीर-त्याग कर दूँ। यही दृढ़ एवं बलवती इच्छा-शक्ति वास्तव में बड़े-बड़े राष्ट्रों एवं समाजों को चलाती है। समस्त चर-अचर संसार इसी दीक्षा के सहारे चल रहा है। सृष्टि के आदि में पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र इत्यादि ग्रह-उपग्रह अपने-अपने कार्यों में दीक्षित होकर एवं आज तक करोड़ों वर्ष व्यतीत होने पर भी इस विश्व के संचालन में नितान्त प्रमादरहित होकर इसका संचालन करते चले जाते हैं। राष्ट्रों के महान् से महान् नेता भी जब राष्ट्रों की बागडोर अपने हाथों में सँभालते हैं, तब उन्हें भी राष्ट्र की रक्षा, राष्ट्र का संचालन, राष्ट्र का परिपालन करने से पूर्व राष्ट्रपति-पद, प्रधानमन्त्री-पद, राज्यपाल-पद एवं अपने-अपने अन्य पदों की आसन्दिका पर बैठने से पूर्व, दीक्षा ग्रहण करनी पड़ती है, जिसका आशय यह होता है कि वे अपने-अपने पदों पर न्यायानुसार बैठकर प्रजा का पालन, संरक्षण एवं वर्धन करेंगे। वे राष्ट्र के प्रति कभी द्रोह नहीं करेंगे। अपने पद का अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए उपयोग नहीं करेंगे। जब तक ये राष्ट्रकर्मी पुरुष अपना कार्य अपनी दीक्षा के अनुसार करते रहते हैं, राष्ट्र की अभिवृद्धि होती है, उसका बल एवं तेज बढ़ता है। वह राष्ट्र गौरव में, ज्ञान में, गुणों में सर्वोच्च पद प्राप्त करता है। उसी राष्ट्र को भद्र, अर्थात् अभय-निर्भयता एवं समस्त कल्याणकारी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। वेद कहता है—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपोदीक्षामुप निषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ।। अ० १९।४१।१।।

समस्त सुखों का लाभ करने वाले ऋषिगण जब भद्र—कल्याण एवं निर्भयता—की प्राप्ति की इच्छा करते हैं, तब सबसे प्रथम तप एवं दीक्षा का अनुष्ठान करते हैं। इस तप एवं दीक्षा के अनुष्ठान के पश्चात् ही राष्ट्र की अभिवृद्धि होती है, बल एवं ओज बढ़ता है। वनों में जाकर तप एवं दीक्षा ग्रहण करने वाले ऋषियों को संसार के समस्त दिव्य गुण, दिव्य शक्तियाँ एवं दिव्य पुरुष आकर घेर लेते हैं।

यह है दीक्षा का महत्त्व, जिसे वेद उद्घोषित कर रहा है। ऋषिगण दीक्षा इसी वास्ते ग्रहण करते हैं, जिससे राष्ट्र का तेज बढ़े, ओज बढ़े एवं बल बढ़े। जब तक किसी राष्ट्र को इस प्रकार के दीक्षित ऋषि नहीं मिलते, तब तक वह राष्ट्र कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता। राष्ट्र के शासक राज्य के मद में अन्धे हो सकते हैं, एवं कभी भी अपने कर्तव्य को भुलाकर राष्ट्र की नौका को मझधार में डूबने के वास्ते छोड़ सकतेहैं; परन्तु जो ऋषि हैं, द्रष्टा हैं, वे यह कदापि नहीं कर सकते। उन्हें सदा-सर्वदा

एक ही चिन्ता रहती है कि किस प्रकार उनका राष्ट्र सुरक्षित रहकर अपने बल एवं गौरव को बढ़ाता रहे। रामराज्य के प्रतिष्ठिता महामुनि वसिष्ठ अपनी समस्त इन्द्रियों का दमन करके इसीलिए राज्य का गौरव बढ़ाने के वास्ते रघुकुल के गुरु बनकर बैठे थे। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज्य काहू नहीं व्यापा॥

इस महान् उद्घोष का मूल कारण महात्मा वशिष्ठ का वह गूढ़ एवं विशुद्ध ज्ञान था, जिसने राम को इस प्रकार का राज्य बनाने की अन्तर्दृष्टि प्रदान की थी। रघुकुल की प्रतिष्ठा के एकमात्र मूल कारण महामनस्वी महर्षि वसिष्ठ थे, जो भीषण-से-भीषण विपत्ति में अयोध्या को छोड़कर बाहर नहीं गए। इसी प्रकार विश्व के एकमात्र विदेह राजा, मिथिलाधिपति जनक की प्रतिष्ठा का मूल-मन्त्र महर्षि याज्ञवल्क्य की दीक्षा एवं तप से पवित्र उपदेशात्मक वाणी में छिपा हुआ है। महाभारत के संहारकारी संग्राम के पश्चात् इस विध्वस्त राष्ट्र का निर्माण करने में राजा युधिष्ठिर को जो बल मिला था, वह योगिराज श्रीकृष्ण, महर्षि वेदव्यास एवं पुरोहित धौम्य के अमर वचनों में था न कि अर्जुन के गाण्डीव में, भीम की गदा में या युधिष्ठिर के रथ में। चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्राट्-पद महाप्रचेता, महामात्य, महाराजनीतिज्ञ महात्मा चाणक्य के तप एवं त्याग-दीक्षा पर टिका हुआ था, न कि सम्राट् की सेना के बल पर। इसी चाणक्य ने राज्य-शासकों को भविष्य में चेतावनी देते हुए लिखा है—

सुखस्य मूलं धर्मः
धर्मस्य मूलमर्थः
अर्थस्य मूलं राज्यम्
राज्यस्य मूलमिन्द्रियजयः ॥ चाणक्य अर्थशास्त्र ॥

महामात्य चाणक्य के उपर्युक्त सूत्र आज दो सहस्र वर्ष के पश्चात् भी विश्व के राष्ट्र-शासकों को कड़ी चेतावनी दे रहे हैं। **राज्यस्य मूलमिन्द्रियजयः**—इस अन्तिम सूत्र में आचार्य ने यह स्पष्ट घोषणा की है कि राज-शासकों को इन्द्रिय-जय के अनुष्ठान में दीक्षित होना चाहिए। इसी प्रकार भारत के वर्तमान शासकों का गौरव भी सत्य एवं अहिंसा व्रत की महती दीक्षा ग्रहण करने वाले महात्मा गांधी के अमर सन्देशों में अन्तर्निहित है। भारत के वर्तमान शासक उस विरल तपस्वी, त्यागी एवं कठोर व्रत में दीक्षित महात्मा का नाम लेकर ही भारतमाता की गौरवगरिमा को ऊपर उठाए हुए हैं।

जिन राष्ट्र-शासकों ने अपनी प्रजा से संरक्षण के प्रति ग्रहण की गयी इस दीक्षा का जब कभी परित्याग किया है, तभी प्रजा की अमर शक्ति ने उनके कठोर-से-कठोर शासन को उखाड़कर ध्वस्त कर दिया है। रूस का ज़ार एवं कश्मीर का शैख अब्दुल्ला इसी कोटि में आते हैं। हिरण्यकश्यप, रावण, कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, दुर्योधन—ये सब इसी श्रेणी के शासक हैं, जिन्होंने प्रजा के प्रति की गयी अपनी प्रतिज्ञा को अपने स्वार्थों के लिए निःशंक होकर तोड़ा था।

महाकवि कालिदास ने लिखा है—

"राजा प्रकृतिरजंनात्" राजा वह है जो प्रजा का रंजन करे। प्रजा का रंजन ही उसकी दीक्षा है। इस दीक्षा को तोड़ते ही राजा की राज-सत्ता समाप्त हो जाती है।

अथर्ववेद १५।८।३। में

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत।

वह रंजन, प्रेम करने लगा, उसके बाद ही राजा बना।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह तो निश्चय हो ही जाता है कि दीक्षा स्वयं इस विश्व का एक आधार है। यह जड़ एवं चेतन दोनों प्रकार के जंगत् के मूल में काम करती है। यदि यह दृश्यमान जड़ जगत् अपनी दीक्षा का परित्याग कर दे, तो क्या यह विश्व स्थिर रह सकेगा ? यदि अग्नि अपनी व्रतदीक्षा को त्याग दे, तो जहाँ उसका स्वयं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है वहाँ इस विश्व का, इस भूमि का धारण भी अस्तव्यस्त हो जाता है। यह अग्नि ही भूलोक पर स्थित होकर इस पृथ्वी का, इस विश्व का धारणकर्त्ता बना है। जब से यह अपने इस कठोर कर्म में दीक्षित हुआ है, इसने अपनी दीक्षा का त्याग नहीं किया। इसी प्रकार वायु निरन्तर अपनी दीक्षा के अनुसार गमनशील—वा गतिगन्धनयोः; वातीति वायुः—होकर बह रहा है। जलतत्त्व नदियों, तड़ागों, कुओं, बावड़ियों एवं सागरों में स्थिर होकर अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है। इसी प्रकार यह विशाल पृथिवी भी अपने धारणरूप कठोर कर्म में दीक्षित होकर नभोमण्डल में अधर होकर लटकती है, न नीचे को गिरती है न ऊपर को खिचती है। इस प्रकार इस विश्व का यह समस्त लोकतन्त्र दीक्षा के प्रभाव से बिना कहीं एक क्षण के लिए रुके, निरन्तर चलता जा रहा है। इस कारण यह दीक्षा इस जगत् की धारिका शक्ति है। इसके कारण ही विश्व का यह विशाल प्रपंच अपने-अपने कर्मों में दीक्षित होकर संसार को चला रहा है।

राष्ट्र, समाज, संघ, शासन एवं अन्य सहयोगी तत्त्व इस दीक्षा के व्रत का पालन करके ही इस विश्व के नियामक बन रहे हैं। यही कारण है वेदों में स्थान-स्थान पर दीक्षा का महत्त्व प्रदर्शित दिया गया है।

४. तपः

तप के सम्बन्ध में विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। तप का धात्वर्थ है, तपन या तपना। संसार में इस तप का प्रभाव सर्वत्र दिखाई दे रहा है। सूर्य तो इस द्युलोक में तप ही रहा है। इसी एक ग्रह के तप के कारण यह समस्त सौर-जगत् जीवनी शक्ति प्राप्त कर रहा है। इसी तप के कारण यह सूर्य भी इस चराचरात्मक विश्व का आत्मा बना हुआ है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

वेद कितने वैज्ञानिक शब्दों में सूर्य का वर्णन कर रहा है ! सूर्य भगवान् के इस तप के कारण ही यह सौरमण्डल जीवन से ओत-प्रोत है। इसी कारण सूर्य का जगदात्मत्व सिद्ध होता है। इसी तप के कारण सूर्य को परमात्मा का चक्षु कहा जाता है। यही इस

कालचक्र का संचालक माना जाता है। इसी के तप के कारण दिन-रात का चक्र चल रहा है। ऋतु-परिवर्तन का मूल कारण भी यही सूर्य है। यही पृथिवी पर जीवन-शक्ति का स्रोत बहा रहा है। सूर्य का यह तप कितना महान् है, इसका कुछ वैज्ञानिक वर्णन भी जानना आवश्यक है।

वर्तमान नवीन विज्ञानवेत्ता सूर्य का स्थिर मानते हैं। इसमें कुछ भारतीय प्राचीन ज्योतिष्शास्त्रवेत्ता भी सम्मिलित हैं। सूर्य स्थिर हो या चलता हो, वह ब्रह्माण्ड का सबसे महान् तपन-शील ग्रह है। इसका तेज सर्वतो महान् है। वैज्ञानिकों के अन्वेषण ने इस बात को सिद्ध किया है कि वर्तमान आकाशीय पिण्डों में सूर्य सबसे बड़ा पिण्ड है। यह हमारी इस पृथिवी से नौ करोड़ तीस लाख मील दूर है, फिर भी इसका ताप एवं प्रकाश हमारी पृथिवी तक ८ मिनट १८ सेकण्ड में आ जाता है। इसकी गोलाई का व्यास ८ लाख ६६ हजार ५०० मील है। सूर्य का यह व्यास हमारी इस महती पृथिवी के व्यास से एक सौ साढ़े नौ गुना बड़ा है। यदि हम १० लाख पृथिवियों को किसी एक स्थान पर जोड़ दे, तो वे सूर्य के बराबर होंगी। हमारी इस पृथिवी का व्यास भी १९ करोड़ मील का है। सूर्य में पृथ्वी के समान रजःकण नहीं है। यदि तीन लाख बत्तीस हजार पृथिवियों को तोला जाए, तो उनका तोल सूर्य के बराबर हो जाएगा, जब कि वर्तमान विज्ञान के अनुसार पृथिवी का भार—१६०००००००००-०००००००, २००० मन है। यदि हम पृथिवी के इस भार को १ सेर मानकर चलें, तो उसी पैमाने से सूर्य का भार ८००० मन हो जाएगा।

इस सौरमण्डल में सूर्य जिस प्रकाश को विकीर्ण कर रहा है, वह शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी से साठ लाख गुना ज्यादा है। यह चन्द्रमा भी तो इसी सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहा है।

अब थोड़ा सूर्य से निकलने वाले प्रकाश एवं ताप का वर्णन भी जान लेना चाहिए—

यह सूर्य जितना प्रकाश निकाल रहा है, उसका २२० करोड़वाँ भाग ही पृथिवी पर पहुँच पाता है। सूर्य के चारों ओर भी हमारी इस पृथिवी की तरह वायुमण्डल का एक महान् चक्र चल रहा है। सूर्य के प्रकाश को पृथिवी पर आने में यही वायुमण्डल बाधा पहुँचाता है। यदि सूर्य के चारों ओर का यह वायुचक्र नष्ट हो जाए, तो सूर्य का जितना प्रकाश पृथिवी पर इस समय पहुँचता है, उससे तीन गुना अधिक प्रकाश यहाँ आने लगे, जिससे पृथिवी के समस्त पदार्थों के रूप-रंग में भी भिन्नता आ जाए, और सारे पदार्थों का रंग भूरा हो जाए।

सूर्य के ताप का अनुमान लगाना सरल नहीं है। हमारे वर्तमान विज्ञान के माप-तोल में अभी इतनी महती संख्याओं का प्रवेश नहीं हो पाया है, जिनसे सूर्यसदृश महाशक्तिशाली ग्रह के ताप की माप-तोल की जा सके। फिर भी जो कुछ अभी तक जाना गया है, उसकी जानकारी भी बड़ी आश्चर्यपूर्ण है। एक सेकण्ड में सूर्य का जितना ताप हमारी इस पृथिवी पर गिर रहा है, उस ताप के द्वारा छः करोड़ टन ठण्डा पानी एक सौ डिग्री तक गरम किया जा सकता है।

सूर्य के इस तप के कारण ही उसे वेद ने देवता शब्द से याद किया है—

सूर्यो देवता ।। यजुर्वेद ।।

यह वास्तव में ही महान् देव है । इस विश्व-रचना का यह अपने महान् तप के कारण अधिष्ठाता बना हुआ है ।

सूर्य का यह तप सृष्टि के आदि से चला आ रहा है, और अन्त तक इसी रूप में चलता रहेगा । वर्तमान के कतिपय वैज्ञानिकों ने यह भी विचार प्रकट किये हैं कि सूर्य की गरमी १ करोड़ वर्ष में समाप्त हो जाएगी, परन्तु इस प्रकार की कल्पना में कोई तथ्य नहीं है । सूर्य में प्रज्वलित होनेवाले कणों की गति इस प्रकार की है कि उसका ताप कभी भी समाप्त नहीं हो सकेगा ।

वेदों में सूर्य सम्बन्धी वर्णन बड़े अद्भुत हैं—

विमानऽएष दिवो मध्यऽआस्त आपप्रिवान् रोदसीऽअन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ।। यजु० १७।५९।।

द्युलोक के मध्य में मानो विश्व का माप करता हुआ यह सूर्य द्युलोक, अन्तरिक्षलोक एवं पृथिवीलोक को अपने प्रकाश एवं ताप से पूर्ण कर रहा है । यह सूर्य 'विश्वाची' समस्त विश्व को गति देनेवाला, 'घृताची' इन क्षरणशील तत्त्वों को भी गति देनेवाला पूर्व तथा अपर को प्रकाशित कर रहा है ।

तप के प्रसंग में सूर्य के स्वरूप का वर्णन इसीलिए यहाँ किया गया है कि सूर्य के तप के कारण किस प्रकार विश्व का धारण हो रहा है और वह तप कितना महान् है, जाना जा सके । राष्ट्रों, राज्यों, साम्राज्यों, समाजों एवं संघों को भी यही तप धारण करता है । तप करने वाले का व्यक्तित्व दूसरों से दुःसह हो जाता है । तपस्वी के सामने सभी नतमस्तक हो जाते हैं । यही तप की प्रतिष्ठा है । राष्ट्र अथवा समाज में एक ही तपस्वी व्यक्ति कितना महान् कार्य कर सकता है, इसका अनुमान कुछ तपस्वियों के जीवनों से ही लगाया जा सकता है ।

परमात्मा ने भी मानो सर्जन से पूर्व तप तपा था—

न तपोऽतप्यत

अथर्ववेद के काण्ड २ सूक्त १९ से २३ तक इस तप का प्रभाव बताया गया है—

अग्ने यत्त तपः, तेन तं प्रति तप
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।
वायो यत्ते तपः, तेन तं प्रति तप यो० ।
सूर्य यत्ते तपः, तेन तं प्रति तप यो० ।।
चन्द्र यत्ते तपः, तेन तं प्रति तप यो० ।
आपो यद्वः तपः, तेन तं प्रति तपत यो०।।

इन उपर्युक्त मन्त्र-भागों से पता चलता है कि इस विश्व में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, जल—ये सब किसी-न-किसी प्रकार का तप कर रहे हैं, जिससे यह जगत् चल रहा है । इसी कारण वेद में इन विश्व के धारण करने वाले तत्त्वों में तप को भी स्थान दिया है । वास्तव में तप की महिमा के कारण ही यह संसार अस्थिर होकर भी स्थिर-सा प्रतीत हो रहा है ।

५. ब्रह्म

ब्रह्म शब्द की सिद्धि 'वृहि वृद्धौ' इस धातु से होती है। ब्रह्म शब्द यौगिक एवं योगरूढ़ि दोनों प्रकार के अर्थ रखता है। भारतीय संस्कृत वाङ्मय में यह शब्द अपने वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ के अनुसार अनेक अर्थों का बोधक है। जैसे ईश्वर, वेद, ज्ञान, वीर्य इत्यादि अर्थ इस ब्रह्म शब्द से जाने जाते हैं, इसी प्रकार प्रकरणानुसार यह शब्द अनेक अर्थों का बोधक होता है। प्रस्तुत प्रकरण में हम इसके ईश्वर एवं वेद इन्हीं दो अर्थों पर प्रसंगत: विचार करेंगे।

वेदों में ब्रह्म शब्द का मुख्य अर्थ तो ईश्वर ही है। जहाँ-जहाँ ब्रह्म का वर्णन आता है, वहाँ प्राय: ईश्वर से ही तात्पर्य लिया जाता है। वास्तव में यह ब्रह्म, ईश्वर इस समस्त भूत-प्रपंच का धारणकर्त्ता है। यहाँ हम ब्रह्म के अस्तित्व की संक्षिप्त विवेचना कर देना चाहते हैं।

वैदिक वाङ्मय में ब्रह्म को सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का कर्त्ता बताया गया है। भारतीय-दर्शन इस सम्बन्ध में बड़ा ही तर्कपूर्ण विवेचन प्रस्तुत करते हैं। हम उन सभी तर्कों को यहाँ उपस्थित न करके उनमें से कतिपय मुख्य-मुख्य तर्कों को संक्षेप में लिख देना चाहते हैं, यह भी 'न्याय कुसुमांजलि' के प्रसिद्धकर्त्ता श्री पण्डित उदयनाचार्य के शब्दों में। इन महापण्डित ने दर्शनों का मन्थन करके ईश्वर-सिद्धि सम्बन्धी समस्त तर्कों को एक श्लोक में निबद्ध किया है—

कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्या-विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ।। ५। १ ।।

१. कार्यात् —

यह जगत् कार्य है। इसके समस्त पदार्थ परमाणु से जन्य, अवयवयुक्त एवं अवान्तर-महत्त्व से विशिष्ट हैं। कार्य के लिए कर्त्ता की सत्ता अत्यन्त आवश्यक है। नैयायिकों का यह अनुमान तो प्रसिद्ध ही है—

सृष्ट्यादि सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्।

इस सृष्टि-प्रपंच का कोई-न-कोई कर्त्ता अवश्य है। जिस प्रकार घट के लिए कुम्भकार की सत्ता मानना अत्यावश्यक है, उसी प्रकार सृष्टि का भी कर्त्ता चाहिए और वह कर्त्ता चेतन होना चाहिए, क्योंकि किसी जड़-कर्त्ता की सम्भावना नहीं की जा सकती।

न्याय-शास्त्र की ईश्वर-सिद्धि की यह पद्धति अत्यन्त सराहनीय है। हम यहाँ इस उपर्युक्त अनुमान-प्रमाण की सिद्धि के सम्बन्ध में कुछ लिखना नहीं चाहते, वह एक स्वतन्त्र विषय है। यहाँ इतना ही अपेक्षित है कि घट के दृष्टान्त से कार्यत्वाद् हेतु के कारण इस सृष्टि के किसी कर्त्ता की सिद्धि होती है।

२. आयोजनात् —

यह समस्त प्रपंच परमाणु-संयोग से बना है। परमाणु इस भूत-समूह का वह अन्तिम भाग है, जिसके फिर टुकड़े नहीं किये जा सकते। वह परमाणु जड़ है।

प्रलयावस्था में भौतिक तत्त्व परमाणुरूप हो जाते हैं। पुनःसर्जन के समय दो परमाणुओं के संयोग से एक द्व्यणुक की उत्पत्ति होती है, परन्तु ये जड़ परमाणु स्वयं संयुक्त होने की शक्ति नहीं रखते। अतः इस आयोजन के वास्ते किसी आयोजक चेतन शक्ति की आवश्यकता है।

३. धृत्यादे—

प्रत्येक पदार्थ को धारण करने वाला कोई चाहिए। यदि इस संसार का धारक किसी को न माना जाए, तो यह गिर जाए। क्योंकि यह संसार धारण किया हुआ दिखाई दे रहा है, अतः इसका कोई-न-कोई धर्त्ता अवश्य है। फिर इस उत्पन्न सृष्टि का विनाश भी अवश्यंभावी है, अतः इसका विनाशकर्त्ता भी होना चाहिए। सृष्टि के जड़ पदार्थ न तो धर्ता हो सकते हैं और न हर्ता हो सकते हैं। ये दोनों गुण किसी चेतन-शक्ति में ही होंगे, अतः इनका आश्रय कोई चेतन ही होना चाहिए।

४. पदात्—

यह विश्व एक अत्यन्त कलात्मक रचना है। यहाँ का कोई भी कार्य सर्जन-कला से रहित नहीं है। लघु-से-लघु जीवाणु भी एक कला का उदाहरण है। छोटे-से-छोटा पत्ता भी किसी कला की ओर निर्देश कर रहा है। हम संसार में देखते हैं कि किसी भी कलात्मक सर्जन के वास्ते ज्ञानवान् व्यक्ति चाहिए। जैसे वस्त्र-निर्माण, गृह-निर्माण, वस्तुनिर्माण इत्यादि कार्यों के लिए चेतन निर्माण-कर्त्ता चाहिए, उसी प्रकार इस कलात्मक विश्व के लिए भी एक ज्ञानी कर्त्ता चाहिए।

५. प्रत्ययत्—

अल्पज्ञ जीव को सर्ग के प्रारम्भ में किसी ज्ञान की आवश्यकता है। बिना ज्ञान के वह उन्नति नहीं कर सकता। वेद स्वतःप्रमाण हैं। उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं होती—"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" वेदों की वाक्य-परम्परा ज्ञानपूर्वक है। वेदों की इस स्वतःप्रामाणिकता के लिए कोई सर्वज्ञ आधार चाहिए। ईश्वर वेदज्ञान का प्रतिष्ठापक है। अतः उसकी सत्ता नितान्त आवश्यक है। यदि वेदज्ञान-प्रदाता ईश्वर को न माना जाए, तो वेदों की स्वतःप्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती।

६. श्रुते—

श्रुति, (वेद) स्पष्ट शब्दों में ईश्वर के अस्तित्व की घोषणा कर रहा है। वेदों के अनेक मन्त्र ईश्वर-सत्ता के प्रतिपादक हैं, जिनको हम आगे के प्रकरण में उद्धृत करेंगे।

७. वाक्यात् :—

जिस प्रकार रामायण, महाभारत आदि वाक्यभूत ग्रन्थों का कोई-न-कोई रचयिता अवश्य है, उसी प्रकार वाक्य-संघटित वेदों का कोई-न-कोई प्रदाता अवश्यमेव होना चाहिए।

८. संख्या-विशेषात्—

दो परमाणुओं को मिलाकर एक द्व्यणुक बनता है। इस द्व्यणुक में एक प्रकार का परिमाण उत्पन्न हो जाता है। अब यह परिमाण कहाँ से आया, इस प्रकार की

शंका हमारे सामने उपस्थित होती है। नैयायिक लोग परमाणु के परिमाण से द्व्यणुक के परिमाण की उत्पत्ति नहीं मानते। यदि परमाणु के परिमाण से द्व्यणुक के परिमाण की उत्पत्ति मानी जाए, तो परमाणु का परिमाण अणु, अल्प होने के कारण उससे उत्पन्न द्व्यणुक का परिमाण भी अल्प होगा। इस प्रकार महापरिमाण की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। इस कारण द्व्यणुक में परिमाण की उत्पत्ति परमाणु के परिमाण से न होकर परमाणुगत द्वित्व संख्या से होती है, और यह द्वित्व संख्या किसी अपेक्षा-बुद्धि से उत्पन्न होती है। इस अपेक्षा-बुद्धि का जनक कोई चेतन अवश्य होना चाहिए। इस युक्ति के कारण द्व्यणुकों में संख्या की उत्पत्ति किसी चैतन्य एवं ज्ञान-विशिष्ट ईश्वर की सत्ता को सिद्ध कर रही है।

इस उपर्युक्त विवेचना से यह तो पता चलता है कि इस समस्त विश्व-प्रपञ्च का कर्ता-धर्ता एवं हर्ता एक ईश्वर, जिसे वेद की भाषा में ब्रह्म कहा गया है, अवश्य है। अब हम प्रमाण-पक्ष की ओर यदि दृष्टिपात करें, तो इस जगत् के धारण के सम्बन्ध में वेदों एवं शास्त्रों में प्रमाण-परम्परा उपस्थित की गयी है।

ज्योतिष्-शास्त्र में जगत् के धारण के सम्बन्ध में विचार करते हुए 'सूर्य-सिद्धान्त' के रचयिता ने कितने स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥

यह समस्त दृश्यमान भूगोल आकाश में ब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति से स्थित हो रहा है।

उपनिषदों में स्थान-स्थान पर ब्रह्म को ही इस सृष्टि का कर्ता, धर्ता और हर्ता घोषित किया गया है—

१. कर्ता—**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**
२. धर्ता—**यतो जातानि जीवन्ति**
३. हर्ता—**यत् प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति॥** तैत्ति० उ० १।१॥

छान्दोग्य उपनिषद् में :

तज्जलानिति शान्त उपासीत॥ छा० ३।१४।१॥

इस वाक्य के द्वारा भी ब्रह्म को ही इस जगत्-प्रपञ्च का मूल कारण बताया गया है।

"तज्जलान्" इस एक शब्द में ब्रह्म को कर्ता, हर्ता, धर्ता बताया गया है।

१. **कर्ता-तज्ज**—यह जगत् निमित्त कारण ब्रह्म से उत्पन्न होता है।
२. **हर्ता-तल्ल**—इसका निमित्त कारणभूत ब्रह्म से लय होता है।
३. **धर्ता-तदन्**—ब्रह्म के कारण ही यह श्वास लेता है।

वेदों में तो ब्रह्म की इस धारणात्मिका शक्ति का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है—

विस्तारभय के कारण संक्षेप में ही कुछ मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं :

१. **स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्॥** ऋ० १०।१२१।१॥

२. तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपम्
तत्संभूय भवत्येकमेव ।। अ० १०।८।११।।
३. यस्मिन् स्तब्ध्वा प्रजापतिः ।
लोकान् सर्वान् अधारयत् ।। १०।७।७।।
४. यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं
द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो
वातस्तिष्ठन्त्यार्पिता
स्कंभ तं ब्रूहि कतमः
स्विदेव सः ।। अ० १०।७।१२।।
५. स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी
उभे इमे, स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षड् र्वीः
स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमाविवेश ।। अ० १०।७।३५।।
६. यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं
यश्चाधितिष्ठति।। अ० १०।८।१।।
७. स्कम्भेनेमे धिष्टभिते
द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठत,
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् ।
यत्प्राणन्निमिषच्च यत् ।। अ० १०।८।२।।
८. त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे—
वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुतः ।। ऋ० ५।७।५।।
९. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा—
येन स्व स्तभितं येन नाकः ।। ऋ० १०।१२१।५।।
१०. स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः—
स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्ष—
मिन्द्रे सर्वसमाहितम् ।। अ० १०।७।२९।।

उपर्युक्त वेद-मन्त्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह परमात्मा इस विश्व का धारणकर्ता है। इन मन्त्रों में दाधार, आधारयत्, स्तब्ध्वा, अध्याहिता, स्कम्भः, अधितिष्ठति, तिष्ठतः, दधासि, स्तभितम्, आहितम्—ये सभी शब्द उस दिव्य प्रभु की धारणात्मिका शक्ति का निर्देश कर रहे हैं। ईश्वर को इस विश्व का आधार सिद्ध करने के लिए अब अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं।

पाठकों की सरलता के लिए क्रमानुसार अर्थ भी दिया जाता है :

१. उस प्रभु ने इस पृथिवी एवं द्युलोक को धारण किया है।
२. वह इस पृथिवी और इस समस्त रूपात्मक विश्व को धारण कर रहा है। वह

ब्रह्म सबके साथ मिलकर एक ही हो रहा है, अर्थात् नाना नामरूपात्मक विश्व में वह अकेला एकरूप से वर्तमान है।

३. जिसमें रहकर प्रजापति समस्त लोकों को स्तम्भन करके धारण किया करता है।

४. जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक रहते हैं। जिसमें अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु ये देवता अर्पित हैं, वही सबका आधार-स्तम्भ है, और वही आनन्दमय है, उसको तू कह!

५. सबके आधार-स्तम्भ ईश्वर ने इन दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक को धारण किया है। वही स्तम्भ इस महान् अन्तरिक्ष को धारण किये है। वही विस्तृत छह दिशाओं को धारण कर रहा है। यह समस्त ब्रह्माण्ड उसी ब्रह्म के भीतर मानो प्रविष्ट हो रहा है।

६. जो प्रभु भूत, भविष्यत्कालीन समस्त विश्व का अधिष्ठान है।

७. यह द्युलोक एवं भूलोक उस सर्वाधार से धारण किये जाने के कारण ही ठहरे हुए हैं। प्राण वाले एवं गतिमान् पदार्थ उसी स्तम्भ अर्थात् प्रभु के आधार से सत्ता वाले हैं।

८. हे प्रशंसनीय तेजोमय देव! तू समस्त विश्व को रूप देने वाला, प्रत्येक पदार्थ के अन्दर पूर्व से ही आयु, बल आदि को धारण कर रहा है।

९. जिसने तेजस्वी द्युलोक और दृढ़ पृथिवी को धारण किया है। जिसने प्रकाश एवं दुःखरहित आनन्द को धारण किया है।

१०. उस आधार-स्तम्भ परमात्मा में सब लोक, सब तप, सब ऋत ठहरे हैं। हे सर्वाधार! मैं तुझे प्रत्यक्ष जानता हूँ कि तू ऐश्वर्यशाली है, तुझमें ही यह विश्व प्रतिष्ठित है।

ब्रह्म का एक अर्थ वेद अथवा ज्ञान भी है। ज्ञान तो इस विश्व का प्राण ही है। आप किसी रूप से ऐसे विश्व की कल्पना करके सोचिए, जहाँ ज्ञान का लवलेश भी न हो, फिर आपको पता चलेगा कि ज्ञान की प्रतिष्ठा क्या है।

६. यज्ञ

विश्व के धारणकर्ताओं में यज्ञ का भी नाम लिया गया है। इससे यह तो सरलता से ज्ञात हो ही जाता है कि यह यज्ञ इस सृष्टि, समाज एवं राष्ट्रों का धारण करने वाला है। वास्तव में है भी ऐसा ही।

यज्ञ शब्द जिस मूल धातु से बना है, उसके अर्थों का निश्चय करते हुए, 'यज' **देवपूजासंगतिकरणदानेषु**" यह लिखा गया है। यज् धातु के तीन अर्थ मुख्य हैं। (१) देवताओं की पूजा। (२) संगतिकरण (३) दान। अब हमें देखना यह है कि ये तीन बातें इस विश्व को धारण करने में कहाँ तक समर्थ है?

१. देवपूजा :

देवपूजा दो प्रकार की है, क्योंकि देवता दो प्रकार के हैं, जड़ और चेतन। जड़ देवताओं की पूजा का प्रकार अलग है और चेतन देवों की पूजा का प्रकार अलग है। मान लीजिए, जल जड देवता है, तो इसकी पूजा किस प्रकार की जाए ? जल-स्थानों को स्वच्छ रखना, उनमें थूकना नहीं, उनके किनारों पर गन्दगी न करना, कुआँ, वापी, तड़ाग, नदी ये सभी इस जलदेवता के निवासस्थान हैं। इनकी पवित्रता को सुरक्षित रखना हमारा कर्त्तव्य है। यदि हम इन स्थानों को अपवित्र करेंगे, तो इससे समाज के स्वास्थ्य को हानि पहुँचेगी, जिससे प्राणियों का विनाश होगा।

भारत की राजधानी दिल्ली में वहाँ के जल-कल-व्यवस्थापकों की लापरवाही से कई दिनों तक दिल्ली की जनता दिल्ली के गन्दे नाले का जल पीती रही। परिणाम यह हुआ कि वहाँ की जनता में पीलिया की बीमारी फैल गयी। कितने ही व्यक्तियों का प्राणान्त हो गया। डॉक्टरों द्वारा जल की जाँच करने पर पता चला कि यह जल गन्दे नाले का है। तब उसकी व्यवस्था की गयी।

जिस समय एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करता है, उस समय शत्रुराष्ट्र कुओं में, तालाबों में विष मिला देते हैं। इससे जल का उपयोग करनेवाली सेनाएँ भयंकर रोगों से आक्रान्त हो जाती हैं। इसी प्रकार अन्य दिव्यगुण सम्पन्न जड़ पदार्थों के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए।

चेतन देवता ईश्वर, माता-पिता, आचार्य, अतिथि, विद्वान्, उपदेष्टा, संन्यासी, वानप्रस्थ आदि कहलाते हैं। यहाँ इनकी पृथक्-पृथक् पूजा-पद्धति का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं। मानव-जाति का समस्त संघ इन्हीं चेतनदेवों की प्रतिष्ठा पर शान्ति से अपना जीवन-यापन कर सकता है। जिस समाज में इन देवताओं की पूजा-प्रतिष्ठा होगी, वह समाज सदा उन्नति-पथ पर अग्रसर होता रहेगा।

२. संगतिकरण :

इस शब्द का अर्थ है संगम, मेलमिलाप। यज्ञों के द्वारा समस्त प्राणियों का संगम होता है। प्राणियों में प्रेम की भावना बढ़ती है। यह सारी सृष्टि एक संगम ही तो है, जो कि जड़ एवं चेतन तत्त्वों से मिलकर बनी है। यदि विश्व में यह संगतिकरण की भावना न हो तो यह स्थान नरक बन जाए। यह संगम ही है, जो इस सृष्टि को स्वर्ग बना रहा है। जहाँ पर असंगति हो जाती है, वहाँ विद्वेष की ज्वालाएँ भड़क उठती हैं। सारे संसार की शान्ति एक क्षण में भंग होकर समाज समर की आग में जलने लगता है। इसीलिए संगतिकरण का यह यज्ञ सब स्थानों पर सब कालों में चलता रहना चाहिए।

दान :

दान का अर्थ है त्याग। जब तक त्याग की भावना बनी रहेगी तब तक संसार के सभी कार्य सुचारु रूप से चलते रहेंगे। इस ब्रह्माण्ड के जितने पदार्थ हैं, सभी त्याग कर रहे हैं। सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, समुद्र, नदी, नक्षत्र, वायु, अग्नि, वृक्ष, ये सभी त्याग के

प्रतिरूप हैं। इनकी यह त्याग-वृत्ति ही विश्व का सामंजस्य निर्माण करती है। मानव में त्याग की भावना समाप्त होते ही मानव दानव बन जाता है और ऐसा दानव समाज के हित के लिए घातक होता है। हम सूर्य के दान के महत्त्व को तब समझते हैं जब कि वर्षा ऋतु में सप्ताहों तक सूर्योदय नहीं होता और हमारे जीवन में अस्तव्यस्तता आ जाती है। वर्षा न होने पर पृथिवी जब अन्न का दान नहीं करती है तब हमें पृथिवी के इस महादान का महत्त्व समझ में आता है। वृक्ष के दान का वर्णन तो वही व्यक्ति कर सकता है, जो ज्येष्ठ की गरम लू में चलता हुआ, थककर किसी मार्ग के सघन वृक्ष की छाया में दो घड़ी विश्राम पाकर फिर हराभरा हो जाता है।

हमारे किये हुए एक मुट्ठी अन्नदान की श्रेष्ठता कई दिनों का भूखा भिखारी ही जान सकता है। वास्तव में यह विश्व यज्ञ की इस दान-भावना पर ही चल रहा है। यदि यहाँ से दान की यह भावना समाप्त हो जाए, तो फिर इस संसार का जीवन चलना असम्भव बन जाए।

इस प्रकार के विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस विश्व के धारण करने में यज्ञ एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। श्रीकृष्णचन्द्र जी गीता में कहते हैं (गीता के तीसरे अध्याय का यह यज्ञीय प्रकरण यज्ञ के स्वरूप को समझने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है)।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥३।१०॥

प्रजापति ने प्रजाओं को इस यज्ञ के साथ उत्पन्न किया और यह आदेश दिया कि हे प्रजाओ! इस यज्ञ से उत्पादन बढ़ाओ। यह यज्ञ तुम्हारी समस्त कामनाओं की पूर्ति करेगा।

यज्ञ के लिए जो कर्म किये जाते हैं, उनसे बन्धन नहीं होता—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय, मुक्तसंगः समाचर ॥३।९॥

यज्ञ द्वारा किस प्रकार विश्व का कल्याण होता है? इस सम्बन्ध में श्री कृष्ण जी कहते हैं—

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥३।११॥

इस यज्ञ के द्वारा अग्नि, वायु, जल इत्यादि देवताओं का संस्कार करो। वे सुसंस्कृत शुद्ध देवता तुमको बढ़ाएंगे। इस प्रकार यह कल्याणकारी पारस्परिक सहयोग विश्व को श्रेय प्राप्त करा देगा।

आगे चलकर महाराज इस विश्वचक्र को यज्ञचक्र से ही चलता हुआ बताते हैं—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥३।१४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥३।१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।।३।१६।।

ये सभी श्लोक अत्यन्त सरल भाषा में बताते हैं, कि भूतों के जीवन का मूल कारण अन्न है। अन्न का कारण वृष्टि है, वृष्टि यज्ञ द्वारा होती है, यज्ञ कर्म से होता है, कर्म वेद से और वेद अविनाशी अक्षर से प्रकट हुए हैं, इसलिए वेदज्ञान सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित है, अर्थात् वेद के विधान के अनुसार किये गये यज्ञ हम भूतमात्र के धारण करने वाले बनते हैं।

इस यज्ञचक्र पर जो नहीं चलता है, उसका जीवन पाप है और वह व्यर्थ ही जीता है।

वेदों में विशेषकर यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत विस्तार के साथ विचार व्यक्त किये गये हैं। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में यज्ञ को इस विश्व का श्रेष्ठतम कर्म कहकर पुकारा गया है—

श्रेष्ठतमाय कर्मणे । यजु० १ । १ ।।

शतपथकार ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है :

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ।

यज्ञ इस विश्व का श्रेष्ठतम कर्म है। यह ब्रह्माण्ड एक विशाल यज्ञ का ही अधिष्ठान है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रखर किरणों से यह पृथिवी मानो तप्त अग्निकुण्ड बन जाती है। चारों दिशाएँ भयानक गर्मी से जलने लगती हैं। पृथिवी का कण-कण अग्नि की ज्वाला उगलता है। पृथिवी पर चरने वाले समस्त जीवजन्तु इस गरमी के कारण संतप्त हैं। आषाढ़ का मास आया, वर्षा ऋतु प्रारम्भ हुई, सूर्य भगवान् मानो इस सौरजगत् के होते हैं। इन्हीं के द्वारा इस पृथिवी पर अन्तरिक्ष से जलधाराएँ गिरने लगीं, ये ही मानो घृत की आहुतियाँ हैं, हमारे देखते-देखते पृथिवी के समस्त प्राणी आनन्द-विभोर हो उठे। किसान उछलने लगे। पक्षी नृत्य करने लगे। मयूर मस्त होकर केकारव में प्रभु को धन्यवाद देने लगे। पृथिवी शस्यश्यामला हो गयी। पशुओं को पेट भरकर हरिततृण मिलने लगे। चारों ओर हरियाली ही हरियाली छा गयी। पृथिवी माता की गोदी मानो हरी-भरी हो गयी। ओषधियाँ उगने लगीं, धान्य के छोटे-छोटे पौधे लहलहाने लगे। सारा संसार मानो बदल गया, चारों तरफ प्रसव-ही-प्रसव दिखाई देने लगा। महाराज श्री कृष्ण की उक्ति—

अनेन प्रसविष्यध्वम् ।

मानो साकार रूप धारण करके सामने आ गयी। मनुष्य को वर्षा होते ही सर्वस्व मिल गया, इसीलिए तो भगवान् ने वेद में यज्ञ की महिमा का गान किया है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन,
कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् ।

हे मानव ! तू क्या चाहता है ? जो चाहता है वह सब यज्ञ से प्राप्त कर ! यह यज्ञ तेरी समस्त शुभकामनाओं को पूर्ण करेगा।

यज्ञ को वेद में भद्र कहा गया है :

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः । ऋ० १ । ८९ । १ ॥

कल्याणकारी यज्ञ हमें चारों ओर से आकर घेरे रहें। यज्ञ को भद्र कहकर वेद ने उसका कल्याणकारी स्वरूप उपस्थित किया है। यज्ञ से समस्त विश्व का कल्याण होता है। चराचर जगत् इस यज्ञ से जीवन प्राप्त करता है। इसी कारण प्रभु को भी वेद ने यज्ञ कहा है। कहाँ तक कहा जाए, यज्ञ की महिमा से सारा वैदिक वाङ्मय भरा पड़ा है। यह यज्ञ इस विश्व का सर्वश्रेष्ठ कर्म होने के कारण प्राणिमात्र का कल्याणकर्ता है।

उपसंहार

इस उपर्युक्त विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वास्तव में इस विश्व को जिन तत्त्वों ने धारण किया है, वे उपरिनिर्दिष्ट मन्त्र में बतलाये गये हैं। वेद वस्तुतः हमारे मन के सन्देहों को मिटाने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। अत्यन्त सरल शब्दों में किस प्रकार वेद इस महान् विश्व की विवेचना करते हैं, यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	८.००
घोर घने जंगल में	८.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु-दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र (उर्दू)	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४५.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेद शतकम्	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र)	१५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका-समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

कुछ नई पुस्तकें

सामवेद सूक्तिसुधा	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका एक सरल अध्ययन	प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००
वेद भगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल एम० ए०	६.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
दिव्य दयानन्द	,,	३.००
चतुर्वेद शतकम्	,,	८.००
कर्त्तव्यदर्पण	म० नारायण स्वामी	४.००
गीत भण्डार	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	४.००
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द २५.००

सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण) १०१.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

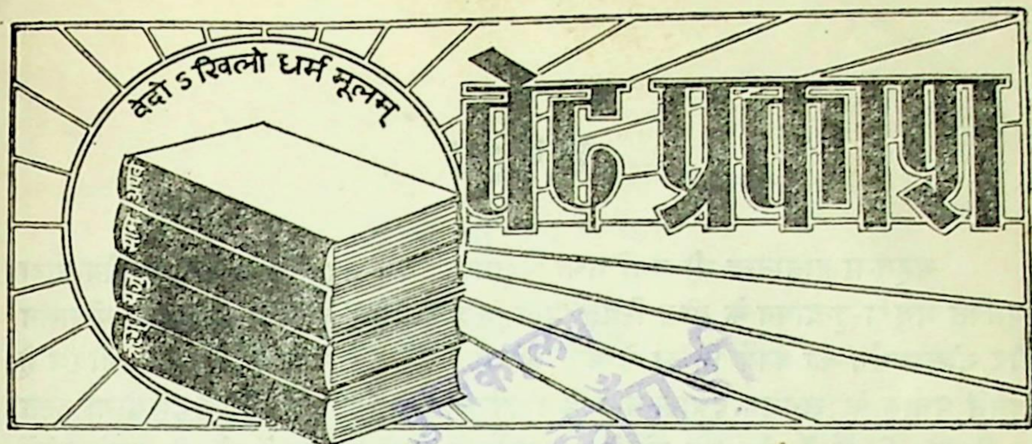
डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



स्वामी धर्मानन्द जी भी चल बसे

आर्यजगत् के गौरव, ऋग्वेद एवं सामवेद के आङ्गल भाषा में भाष्य करनेवाले, गुरुकुल कांगड़ी के आरम्भिक और मेधावी स्नातक, आश्रम-मर्यादा के पालक, वेद-सम्बन्धी दर्जनों ग्रन्थों के लेखक स्वामी धर्मानन्द जी महाराज का ८.११.७८ को प्रातः हृदय-गति अवरुद्ध होने से देहान्त हो गया। आपके निधन से आर्यजगत् की महती क्षति हुई है। आर्यजगत् की पुरानी पीढ़ी के विद्वान् जा रहे हैं। दो-चार शेष हैं। नये विद्वान् आ नहीं रहे हैं। कारण, अब आर्यसमाज को विद्वानों की आवश्यकता नहीं है। आज आवश्यकता एम० पी० और मिनिस्टरों की है। आर्यसमाज के सम्मेलनों में उन्हीं का बोलबाला रहता है। क्या आर्यजगत् के कर्णधार सोचेंगे? स्वामी जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी उनके वेदभाष्य और अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित कराना तथा सिद्धान्तविहीन, मांस और अण्डे खानेवाले, शराब पीनेवाले भ्रष्ट लोगों से महर्षि दयानन्द की पवित्र वेदि की सुरक्षा करके विद्वानों का सत्कार करना।

—जगदीश्वरानन्द

अपील

महात्मा हासानन्द जी वर्मा तथा महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय द्वारा स्थापित मथुरा-वृन्दावन के बीच स्थित 'हासानन्द गौशाला' आज ४३ वर्षों से गोपालन और गोसम्वर्धन का कार्य निष्ठा से कर रही है। वर्तमान गौशाला में २७० गोवंश है जिसमें पचास के लगभग दुधारू गायें हैं। हरियाणा सांडों द्वारा हमने हरियाणा नस्ल का विकास किया है और कर रहे हैं। पार्श्ववर्ती क्षेत्रों की गायों को भी अपने सांडों द्वारा हम निःशुल्क सेवा देते हैं। गोपालन और गोसम्वर्धन की दिशा में इस भाँति किये जा रहे हमारे कार्यों से सन्तुष्ट होकर 'पशुपालक विभाग, उत्तर प्रदेश गौशाला फेडरेशन' तथा सम्बन्धित विभागीय अधिकारी समय-समय पर हमें संस्तुति-पत्र प्रदान करते रहे हैं किन्तु बाधायें सत्कार्यों को भी प्रायः आ घेरती हैं; यद्यपि वह अग्निपरीक्षा होती है परन्तु कार्य तो बाधा से प्रभावित होता ही है।

इस वर्ष हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ है। मथुरा की बाढ़ के प्रकोप के समाचार आपने पढ़े और सुने होंगे। इस बाढ़ से खादर की ४० एकड़ की हमारी सारी खेती बर्बाद हो गई है जिसके एवज़ में गायों के लिये भूसे का प्रबन्ध करने तथा अन्न की क्षतिपूर्ति पर हम पर २०००० रु० से अधिक का अतिरिक्त भार आ पड़ा है। यमुना के सहारे-सहारे ४०० एकड़ भूमि में फैली हमारी चरागाह भी, जिसमें न केवल हमारा गोवंश ही, वरन् यहाँ की सभी गौशालाओं का तथा आसपास के गाँवों का भी पशुधन चरता और विश्राम पाता था, प्रायः दलदल बन गया है। चरकर पेट भरने के लिये भी कोई स्थान बचा ही नहीं है। चारा, जो थोड़ा-बहुत बाज़ार में मिलता है, बहुत महँगा हो गया है। फलतः चारे की विषम समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई है। इस विपदा में गौशाला के गोवंश का पालन आप-जैसे गो-सेवकों के सहयोग पर ही निर्भर करता है।

हमें आशा है कि चारा अथवा धन के रूप में अपना योगदान देकर आप गौमाता का उद्धार करेंगे। आप गौमाता का भला करेंगे तो गौमाता आपका भी भला करेगी।

आपके सहयोग के लिये हम आपके अति आभारी होंगे।

सधन्यवाद दान प्राप्त

२५१.०० रमेशचन्द्र जी, कैलाश नगर, दिल्ली
२५१.०० अजय प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली
५१.०० चन्द्रप्रकाश शिवनाथ राघव, काशी, वाराणसी

मन्त्री, मथुरा-वृन्दावन हासानन्द गोचर भूमि ट्रस्ट-समिति, मथुरा।

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक ५]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया   [दिसम्बर १९७८

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

एक और एथेन्स का सत्यार्थी—
महर्षि दयानन्द सरस्वती

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

स्वर्गीय सुदर्शन की एक कहानी पढ़ी थी 'एथेन्स का सत्यार्थी'। वह सत्यान्वेषी एथेन्स का तरुण दार्शनिक सत्य के नग्न दर्शन में बावला हो गया। और जब उसने सत्य का नग्न स्वरूप देखा तो वह नयन-ज्योति से विहीन हो गया।

कहानी का नायक भले ही काल्पनिक हो परन्तु भारत में भी एक और एथेन्स का सत्यार्थी हुआ था। वह कल्पना अथवा भावुकता नहीं थी—वह यथार्थ था, नितान्त यथार्थ और जीवित यथार्थ !

वह एथेन्स का सत्यार्थी था, वह एक व्यक्तित्व था : **महर्षि दयानन्द सरस्वती !** जी हाँ ! महर्षि दयानन्द सरस्वती !! विद्यामल्ल, तर्क-कर्ण, अजेय विचार-सेनानी, दृढ़, उग्र, अक्खड़, साहसी और जुझारू !!

स्वामी दयानन्द सरस्वती सचमुच एक व्यक्तित्व थे। ऊँचाई ६ फुट आठ इंच। विशाल काया। मुखमण्डल पर अद्वितीय तेजस्विता !! अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा अनुभूत योगसिद्धि ने उनके व्यक्तित्व को अपूर्व कान्ति, आकर्षण, प्रभाव तथा दर्प से अभिभूत कर लिया था।

वे कबीर की भाँति अक्खड़ थे—सब कुछ को झाड़-फूंककर रखनेवाले। कालिदास के समान अनासक्त योगी और आर्य-धर्म के उत्थान में रसखान के समान निष्ठापूर्ण प्रीतियुक्त। उनमें भूषण का राष्ट्रदर्प था। उन्हें समूचे भारत ने 'महर्षि' कहा। वे ठीक महर्षि ही थे। परन्तु तुलसी के समान **'कबित विवेक एक नहीं मोरे, सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे'** वे भी कहा करते थे कि मैं यदि कपिल तथा कणाद के युग में हुआ होता तो उनके सेवक बनने की भी पात्रता नहीं रखता था।

एक ओर एथेन्स के सत्यार्थी थे—गांधी जी, परन्तु वे मध्यम-मार्गी थे, जबकि स्वामी जी अतिवादी। उन्होंने किसी से समझौता नहीं किया। कदापि मध्यम मार्ग स्वीकार नहीं किया।

भीष्म पितामह के बाद उनसे बड़ा दूसरा कोई ब्रह्मचारी नहीं हुआ। जगद्गुरु शंकराचार्य के पश्चात् उनसे बड़ा कोई विद्वान् नहीं हुआ।

उन्होंने अपने जीवन के अड़तालीस वर्ष विद्या के अखाड़े में दण्ड पेलने में व्यतीत किये थे। उनका शरीर फौलाद तथा बुद्धि कुशाग्र हो गई थी। वे महायज्ञ दण्डी स्वामी परिव्राजकाचार्य विरजानन्द महाराज के पट्ट शिष्य थे। उन्होंने तीन वर्षों में अपने शिष्य को ऐसा तैयार किया कि वे रामानन्द के लिए कबीर, समर्थ रामदास के लिए छत्रपति, महामति प्राणनाथ के लिए महाराजा छत्रसाल, परमहंस के लिए स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गांधी के लिए जवाहरलाल नेहरू बन गये। स्वामी जी ने वैदिक धर्मप्रचार, आर्योत्थान, शास्त्रार्थ तथा भीषण प्रहारों से आक्रान्त हिन्दू धर्म की समुचित रक्षा की।

उनका जीवन क्या था?—शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ और शास्त्रार्थ!! वे शास्त्रार्थ-समरांगण के अपराजेय योद्धा थे। वे हिन्दू धर्म की तलवार बने। उन्होंने चुनौती दी, ललकारा। देश की पण्डित-मण्डली में वे वनराज की भाँति प्रवेश करते थे और दहाड़ते थे। उनकी सिंहगर्जना ने भारतीय संस्कृति के घोर आलोचकों तथा विरोधियों के कान खड़े कर दिए। कलकत्ता में रामकृष्ण परमहंस ने उनके मुख-मण्डल पर दर्प-युक्त लालिमा देखी थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनको गुरुदेव कहा था। महर्षि अरविन्द ने उन्हें सच्चे सैनिक, योद्धा तथा शिल्पी के रूप में स्मरण किया था। सरदार वल्लभभाई पटेल ने स्पष्टतया लिखा था कि 'मेरे प्रथम गुरु दयानन्द हैं और दूसरे गांधी जी'।

वे सत्य के शहीद थे। उन्हें सत्य से कोई डिगा नहीं सका। इसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ी। उन्हें सत्रह बार विष दिया गया था। वे ज़िन्दा शहीद थे। सत्य की यज्ञाग्नि में उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था। वे जीवित समिधा थे। उन्होंने सत्य के कारण न किसी से समझौता किया और न कोई सन्धि। उनकी भाषा खड्ग की भाषा थी। उनका तूणीर अक्षय था। हिमालय के एक महन्त ने उनको समस्त सम्पदा देने को कहा परन्तु वे आडम्बर स्वीकार नहीं कर सके। रुपयों से भरे बोरे उनके पास भेजे गये परन्तु उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध समाप्त नहीं किया। काशी के विद्वानों ने कहा था कि यदि आप प्रतिमा-पूजन के विपरीत वक्तव्य देना बन्द कर दें तो आपकी हाथी पर सवारी करके शोभायात्रा निकाली जावे और आपको अवतार घोषित कर दिया जावे। परन्तु वे टस से मस नहीं हुए। जोधपुर में जाते समय उनके शुभचिंतकों ने भावी संकट को देखते हुए उन्हें रोका था। इस पर महर्षि ने ऐतिहासिक उत्तर दिया था : "यदि लोग मेरी उँगलियों की बत्तियाँ बनाकर जलायें तब भी मुझे कुछ शंका नहीं हो सकती। मैं वहाँ जाऊँगा और अवश्य वैदिक धर्म का, प्रचार करूँगा।"

उनके खण्डन-खड्ग ने सबको धराशायी कर दिया। हरद्वार में फहरायी उनकी पाखण्ड-खण्डिनी पताका ने अपने विलोडन में समूचे भारत को ले लिया। उन्होंने सत्य के पीछे प्राणोत्सर्ग भी कर दिया। उनकी टंकारा (सन् १८२४) की धनुष टंकार अजमेर (सन् १८८३) में जाकर शाश्वत परिणति पा गयी। वे 'शिवरात्रि' (ऋषि-बोधोत्सव) के लोक-कल्याण से सम्पृक्त होकर 'दीपावली' (निर्वाण-पर्व) के ज्ञान-दीपक बन गये। नश्वर देह चली गयी परन्तु आलोकपुंज आज भी लहरा रहा है। सत्याग्रही होने के नाते उन्होंने '**सत्यार्थ प्रकाश**' लिखा। वे पक्षपात-रहित, निःसंग तथा ताटस्थ्य-वृत्ति से सम्पन्न थे—"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ भी बर्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में बर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी बर्तना योग्य है क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करने और दूसरे मत की निन्दा, हानि और वध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता···परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। उनको अपने युग ने ग़लत समझा था—परन्तु इस ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य-जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य-जाति की उन्नति का कारण नहीं है।"

उन्होंने अवतार, मसीहा, पैगम्बर, महन्त, पोप, पण्डे, पुरोहित तथा आडम्बर-पूर्ण धर्म का डटकर विरोध किया था। इस दिशा में वे अत्यन्त निर्मम थे। किसी को भी बख्शते नहीं थे। दो टूक, बेलाग बातें कहते थे। सत्यार्थी रूप ने उन्हें निर्भीक, प्रखर तेजस्वी और जुझारू सेनापति बना दिया था। उनकी स्पष्टोक्ति थी—"मैं अपना मंतव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना, और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।" महर्षि के उपदेशों का सारभूत अंश तथा मुख्य प्रयोजन निम्न था—"सर्वसत्य का प्रसार कर, सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबसे सबको सुख-लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा-सहाय और आप जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाये, जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का सिरमौर तथा सर्वोपरि 'सत्य' है। वे समस्त मनुष्यों को एक ईश्वर की सन्तान मानते थे। उन्होंने प्रारब्ध को ललकारा और पुरुषार्थ को अंग लगाया। एकमात्र परमेश्वर ही उनका उपास्य देव था। वेद उनके लिए समस्त ज्ञान-विज्ञान तथा विद्या की अपौरुषेय कृति है। उनके सत्यनिष्ठ

व्यक्तित्व ने आचार्य सायण, महीधर तथा मेक्समूलर से वैमत्य स्थापित करके वेदों का सच्चा तथा शुद्ध भाष्य प्रस्तुत किया। वे चाहते थे कि आजीवन प्रत्येक व्यक्ति मुस्कराता रहे। संन्यासी होते हुए भी उन्होंने गृहस्थ धर्म को अप्रतिम महत्ता दी और गृहस्थों को सद्गृहस्थ बनाया। आर्यसमाज के दस नियमों में सत्यपरक नियमों का प्राबल्य है। उन्होंने गडरियों के गीतों को विश्व में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने 'वेदों की ओर' का शंखनाद किया। वेद तथा शिक्षा के द्वार नारियों तथा अवर्णों के लिए खोले। उन्होंने वास्तविकता तथा बुद्धिवाद के द्वारा धर्म को निष्ठापूर्ण, आचरणमूलक तथा सत्यासत्य-विभेदक बनाया। वे मानव-समता, जन्मना नहीं अपितु कर्मणा वर्ण-व्यवस्था तथा नारी-जागरण के अग्रणी थे। उन्होंने कांग्रेस की स्थापना के पूर्व स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा, स्व-संस्कृति तथा स्व-ऐक्य का सूत्रपात किया। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व और उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा हिन्दी साहित्य प्रभावित हुआ। इसीलिए उनका जीवन-चरित्र गांधी जी के ईर्ष्या का विषय बन गया था। 'स्वराज्य माझा जन्मसिद्ध अधिकार आहे' के उद्घोष के अर्द्धशती पूर्व उन्होंने सिंह-गर्जना की थी—"अत्याचार करनेवाले की अपेक्षा सहन करनेवाला अधिक पापी होता है।" गौरांग महाप्रभुओं के काले शासन के मध्य उन्होंने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा था—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"

स्वामी जी ने ही सर्वप्रथम भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में 'भारत भारतीयों का है' की ऋचा हमें प्रदान की थी। उनकी शिष्य-मण्डली ने राजनीति, क्रान्ति, धर्म, समाज-सुधार तथा शिक्षा-आन्दोलन में जो अविस्मरणीय कार्य किये, उनका सामना या सानी सिर्फ गांधी जी की ही शिष्य-मण्डली कर सकती है। वे सर्वोदयी थे। उन्होंने व्यष्टि से लेकर समष्टि, स्वास्थ्य से लेकर मोक्ष तक को अपने चिन्तन तथा कार्य-परिधि में समेटा है। वे आज की समग्र क्रान्ति के आदिपुरुष थे।

प्रवचन, मनन, गवेषणा, शास्त्रार्थ, यात्रा तथा सम्भाषण के व्यस्त तथा संघर्ष-पूर्ण जीवन के मध्य में से समय निकालकर वे स्वाध्याय तथा ग्रन्थलेखन का कार्य भी कर लिया करते थे। भारत के इतिहास में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जिसे साढ़े तीन हज़ार ग्रन्थ कण्ठस्थ हों। उनके साथ सदा-सर्वदा बारह सौ ग्रन्थ रहते थे। उनमें बचपन से ही अध्ययन तथा मनन की अटूट स्पृहा थी। मथुरा में स्वामी विरजानन्द के आश्रम में वे दिनभर तो पढ़ा करते थे परन्तु रात में स्वाध्याय करने हेतु वे विचित्र तथा अनुकरणीय उपक्रम करते थे कि चौराहों पर जो स्त्रियाँ दीपक जलाकर रख जाया करती थीं, उन सबको एकत्र करके रातभर पढ़ते थे। जब स्वामी जी लाहौर पहुँचे थे, तब उनको लिवा लाने के लिए स्टेशन पर चार गाड़ियाँ आयी थीं। उनमें से एक गाड़ी तो स्वामी जी के ग्रन्थों से ही भर गई थी। इसी स्वाध्यायी पृष्ठभूमि ने उन्हें सत्य का प्रह्लाद बना दिया था। उनके स्वाध्याय की प्रशंसा मेक्समूलर ने की थी। उनके ऋण को लाला लाजपतराय, शहीद भगतसिंह, लाला हरदयाल, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा वीर सावरकर ने स्वीकार किया था। स्वामी जी के शिष्य

न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे और उनके शिष्य गोपालकृष्ण गोखले तथा उनके भी शिष्य महात्मा गांधी थे। दयानन्द के परमप्रिय शिष्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजी-कृष्ण वर्मा थे जिनके शिष्य वीर सावरकर और उनके भी शिष्य मदनलाल ढींगरा थे। इस प्रकार स्वामी जी के व्यक्तित्व-रूपी हिमालय से गंगा की धारा गांधी जी में और यमुना की धारा सावरकर-ढींगरा में आ समायी थी।

ऐसा था स्वामी जी का घनिष्ठ व्यक्तित्व जो कि अतुल शौर्य-पराक्रम-शक्ति का आगार था। वे अपने युग तथा समकालीनों में दुर्लभ व्यक्तित्व-सम्पन्न थे। 'प्रसाद' की 'कामायनी' के मनु के व्यक्तित्व की रेखाएँ उन पर सटीक चरितार्थ होती थीं—

अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराएँ स्वच्छ रक्त का होता था जिनमें संचार।

गोस्वामी तुलसीदास की पंक्तियाँ भी उनसे दूर जाती नहीं दिखाई पड़तीं—

वृषभ-स्कन्ध केहरि-ध्वनि
बलनिधि बाहु विशाल।

वे झुके नहीं, टूटे नहीं। सब कुछ दे दिया परन्तु सत्य को नहीं छोड़ा—सत्य को निबाहा। कबीर का 'नेह' दयानन्द का 'सत्य' है—

नेह निबाहे ही बने, दूजी बने न आन।
तन दे, मन दे, शीश दे, नेह न दीजे आन॥

वे जहाँ भी गये, सनातनियों ने उनका विरोध किया, ईंट-पत्थर बरसाये। परन्तु वे उन्हें पुष्पहार मानते रहे। 'एक भारतीय आत्मा' ने मरण-त्यौहार के गीत गाये। 'नवीन' ने मृत्यु-गीत लिखे परन्तु दोनों को जिया दयानन्द ने। मृत्यु कई बार आकर लौट गयी। वे आजीवन अनिकेतन बने रहे। भारत ही उनका निकेतन तथा मनुष्यता ही उनका आवास बनी। 'नवीन' का क्या यह बाना नहीं था ?—

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन,
हम तो रमते राम, हमारा क्या घर ? क्या दर ! कैसा वेतन ?
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन।
अब तक इतनी यों ही काटी,
अब क्या सीखें नव परिपाटी ?
कौन बनाए आज घरौंदा ?
हाथों चुन-चुन कंकड़-माटी।
ठाट फकीराना है अपना, बाघम्बर सोहे अपने तन,
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन।

भारत-दिवाकर दयानन्द की वाक्पटुता, शास्त्रदर्शिता, तार्किकता, प्रकाण्ड पाण्डित्य, वेदनिष्ठा, आर्ष ज्ञान का प्रचार-प्रसार, अप्रतिम मेधा, प्रचण्ड संघर्ष-शक्ति तथा सर्वकल्याणक-वृत्ति ने उनको भारतीय इतिहास के पाँच सहस्र वर्षों की व्याप्ति में सर्वथा अनुपमेय बना दिया। उन्होंने व्यक्ति की अपेक्षा सिद्धान्त को अधिक महत्त्व दिया। इसीलिए सन् १८७७ में लाहौर में उन्होंने स्पष्ट कहा था और काश्मीरपति

महाराजा रणवीरसिंह के धनागार को अस्वीकार करते हुए कहा—"मैं वेद-प्रतिपादित ब्रह्म को सन्तुष्ट करूँगा न कि काश्मीरपति को।"

उनके मतानुसार सारे अधर्मों, पापों तथा भ्रष्टाचार की जड़ मूर्ति-पूजा थी। इसीलिए उन्होंने बड़ी प्रचण्डता, आन्तरिकता तथा योग्यता के साथ इसका प्रबलतम विरोध किया। विकट प्रतिकूलताओं, प्रचण्ड संग्राम, घोरतम विरोध, लुभावने प्रलोभनों और विरोधियों द्वारा प्राणनाश के भागीरथ तथा अनवरत प्रयासों के मध्य भी उनकी सत्य-ध्वजा झुकी नहीं। भगवान् बुद्ध, जगद्गुरु शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, मध्वाचार्य आदि आचार्यों की परम्परा में आचार्य दयानन्द का मौलिक, अभूतपूर्व तथा अनूठा प्रदेय है—उनका भारतीय राष्ट्रीय एकता का नैष्ठिक प्रतिपादक रूप। वे 'आर्य', 'आर्यावर्त' तथा 'आर्य भाषा' के पुरस्कर्ता थे। उनके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए किये गए परिपक्व तथा व्यावहारिक कार्य अविस्मरणीय हैं। उनके 'सत्यार्थप्रकाश' के चार अंग्रेज़ी अनुवाद हो चुके हैं। अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त, हाल ही में उसके बर्मी तथा चीनी भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं।

दयानन्द ने व्यक्ति को नहीं प्रत्युत संस्था को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उन्होंने मोर्चे खोले, लड़ाइयाँ लड़ीं और हिन्दुओं की रीढ़ की हड्डी को सीधा किया। पहली बार सिंहनाद से हिन्दू जनता में राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा गरिमा की झंकृति आयी। सांस्कृतिक पुनर्जागरण को उन्नीसवीं शताब्दी में चरितार्थ करनेवाले घटक तथा उपादानों तथा 'प्रथम आत्मीय सभा' (बंगाल : सन् १८१५), 'ब्रह्मा सभा' (सन् १८२८), 'परमहंस सभा' (बम्बई, सन् १८४०), 'वेद समाज' (मद्रास, सन् १८६५) 'प्रार्थना समाज' (बम्बई, सन् १८६७), 'नव विधान समाज' (कलकत्ता : सन् १८७२-७३), 'सनातन धर्म रक्षिणी सभा' (पंजाब, सन् १८७७), 'उपासना सभा' (अमृतसर : सन् १८७७-७८), 'सत्य धर्मावलम्बी-सभा' (अलीगढ़ : सन् १८७९), 'हिन्दू सत्यसभा' (दानापुर : सन् १८७९), 'वैदिक धर्म सभा' (उदयपुर : सन् १८८१), और 'सत्सभा' (पंजाब), हिन्दू सभा' (पंजाब), 'थियोसोफिकल सोसायटी'; 'देव समाज' (लाहौर) आदि के मध्य 'आर्य समाज' (सन् १८७५) का ऐतिहासिक तथा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लोकजीवन के विभिन्न पक्षों-पार्श्वों तथा साहित्य को जितना 'आर्यसमाज' ने प्रभावित किया वह 'भूतो न भविष्यति'। दयानन्द-युग ने गांधी-युग की सर्वतोमुखी समग्र चेतना के निर्माण की पूर्व-पीठिका तैयार की।

ऐसा था एथेन्स का सत्यार्थी जो कि भारत का निडर मार्टिन लूथर बना।



माँसाहार

☐ पण्डित राजेन्द्र जी

बुद्ध

बौद्ध मत के पंचशील में पहला स्थान 'प्राणातिपात विरति' अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा न करे, को दिया गया है। किन्तु हम देखते हैं कि जितने घोर मांसाहारी बौद्ध हैं, संसार में कदाचित् ही दूसरे मतावलम्बी होंगे। अन्य मतों में कुछ ऐसे भी पशु हैं जिनका मांस खाना वर्जित है, परन्तु बौद्धों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यह क्यों ? बौद्ध मत में पाँच प्रकार के मांसाहार में हिंसा नहीं समझी जाती—अदृष्ट, अश्रुत, अपरिशंकित, स्वाभाविक मृत, पक्षीहृत अर्थात् ऐसे पशुपक्षी का मांस जो देखने, सुनने और इस सन्देह से रहित हो कि उसे खाने के लिये मारा गया है तथा जिसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई हो अथवा किसी हिंसक पशु-पक्षी द्वारा मारा गया हो। इस सम्बन्ध में डॉ० अम्बेदकर ने अपनी पुस्तक 'अछूत कौन और क्यों' में निम्न प्रकार लिखा है—श्री टामस वाल्टन ने भिक्षुओं में इस प्रथा की उत्पत्ति की इस प्रकार व्याख्या की है; उसकी कथा के अनुसार—

"बुद्ध के समय में वैशाली सिंह नाम का एक धनी सेनापति था, जिसने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। वह भिक्षु-संघ का उदार नायक बन गया और भिक्षुओं को मांस-भोजन की कमी न होने देता था। जब यह बाहर पता लगा कि भिक्षु इस प्रकार का भोजन ग्रहण कर लेते हैं, तो लोगों ने उसकी निन्दा करनी शुरू की। जो संयमी, तपस्वी भिक्षु थे, जब उन्होंने यह सुना तो भगवान् को सूचना दी। भगवान् ने भिक्षुओं को इकट्ठा किया। जब वे इकट्ठा हुए तो भगवान् ने उन्हें सम्बोधन करके कहा—भिक्षुओ ! किसी ऐसे पशु का मांस नहीं खाना चाहिये, जिसे तुमने देखा हो कि तुम्हारे लिये मारा गया है, जिसके बारे में सुना हो कि तुम्हारे लिये मारा गया है। किन्तु उन्होंने भिक्षुओं को त्रि-कोटि परिशुद्ध मत्स्य-मांस की आज्ञा दे दी अर्थात् ऐसे पशु के मांस की जिसको न देखा हो कि हमारे लिए मारा गया है, न सुना हो कि हमारे लिए मारा गया है। पालि और सु-फेन विनय (पिटक) के अनुसार बुद्ध और भिक्षु-संघ को मध्याह्न-भोजन दिया गया था। उस भोजन के लिए ही एक बैल की लाश की व्यवस्था की गई थी। निर्ग्रन्थों ने भिक्षुओं की निन्दा की। बुद्ध ने यह त्रि-कोटि-परिशुद्ध का नया नियम बनाया। अब से जो मांस-भोजन भिक्षु कर सकते थे, वह 'त्रिकोटि-परिशुद्ध' अथवा 'त्रिकोटि-परिशुद्ध मांस' कहलाने लगा। इस थोड़े में 'अदृष्ट, अश्रुत, अपरिशंकित, अथवा चीनी अनुवाद के ढंग पर 'मेरे लिये मारा गया, ऐसा न देखा, न सुना, न सन्देह हुआ' कहा गया। तब दो और तरह का मांस भिक्षुओं के लिए नियमानुकूल ठहराया गया। जिस पशु की स्वाभाविक मृत्यु हो गई हो, तथा जो शिकारी पक्षी अथवा किसी जंगली पशु द्वारा मारा गया हो। इस प्रकार पाँच तरह का ऐसा मांस हुआ, जिसका

कोई बौद्ध स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग कर सकता था। तब यह 'अदृष्ट, अश्रुत और अपरिशंकित' एक जाति हो गई और 'स्वाभाविक मृत्यु' तथा 'पक्षीहत' को मिला देने से तीन बन जाता है ! (पृष्ठ १४२-१४३)

महात्मा बुद्ध की इस बड़ी भूल और अदूरदर्शिता-पूर्ण अहिंसा की व्याख्या का ही दुष्परिणाम है कि आज मांसाहार का अबाध्य रूप में प्रचार बौद्धों में देख रहे हैं। बहुत-से लोग बुद्ध के नाम से जोड़ी गई ऐसी कथाओं की सत्यता में सन्देह करते हैं, परन्तु जो बात सिद्धान्तरूप से भी सभी बौद्धों को मान्य है उस पर शंका करने का दूसरों को क्या अधिकार है ! बौद्ध तो आज उच्च स्वर से यह घोषणा करते हैं कि बुद्ध स्वयं मांसाहारी थे और उनकी मृत्यु रुग्णावस्था में शूकर-मांस खाने से हुई। राहुल सांकृत्यायन ने लोगों की इस धारणा का कि 'शूकर मांस, शूकर मांस न होकर एक शाक अथवा शकरकंदी थी' खंडन किया है और उनका स्पष्ट मत है कि वह शूकर-मांस ही था।

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी को भी सत्य-अहिंसा का अवतार माना जाता है। उनकी अहिंसा की परिभाषा क्या थी और उनके अनुयायी जो आज खुले रूप में मांस, मछली और अंडों के आहार का प्रचार कर रहे हैं उनका महात्मा गांधी के विचारों से कहाँ तक मेल खाता है, इस पर यहाँ कुछ प्रकाश डाला जाता है।

एक बार महात्मा जी ने अपने 'हरिजन' पत्र में लिखा था कि जब तक देश में खाद्यान्न की कमी है, यहाँ से मछलियों का निर्यात बन्द कर दिया जाय। इस पर एक सज्जन ने उनसे प्रश्न किया कि आप क्या मछली खाने में हिंसा नहीं समझते ? महात्मा जी ने इसका उत्तर यह दिया कि "मेरे विचार में मांसाहार से अधिक हिंसा मांसाहार के निषेध करने में है।" ये पंक्तियाँ लेखक ने 'हरिजन' में स्वयं देखी हैं; दुर्भाग्य से उसकी अंक और वर्ष-संख्या अंकित न रख सका। यदि किन्हीं सज्जन के पास 'हरिजन' की फाइलें हों तो मुझे लिख भेजने की कृपा करें। यही बात अंडों के सम्बन्ध में भी है। श्री काका कालेलकर ने लिखा है—'गांधी जी स्वयं कहते थे कि मुर्गे के सम्बन्ध के बिना जो मुर्गी अंडे देती है और जिसमें से बच्चा कतई पैदा नहीं होता और जो दीर्घकाल रखने से सड़ते नहीं किन्तु सूख जाते हैं, ऐसे अंडे खाने में कोई दोष नहीं। जिस अंडे में जीव है नहीं और जीव पैदा होना सम्भव है नहीं, उस अंडे को खाना दुग्धाहार के जितना ही निर्दोष है।'

उन्होंने ऐसे अंडे स्वयं खाने का प्रयोग नहीं किया। लेकिन काफी दाम खर्च करके ऐसे अंडे मँगवाकर शाकाहारी मरीजों को खिलाये थे सही।

जब मुझे वर्धा में हैजा हुआ था तब उन्होंने मुझे ऐसे अंडे खाने की सलाह दी थी। मैंने कहा था कि मैं भी मानता हूँ कि ऐसे निर्जीव अंडे खाने में अहिंसा की दृष्टि से तनिक भी दोष नहीं है, लेकिन मैं खाऊँगा नहीं। मैंने कहा कि ऐसे अंडे खाना शुरू

क्रिया तो मामूली अंडे खाते देर नहीं लगेगी। इसलिए जो आहार मैंने त्याज्य माना है, उससे दूर रहूँ यही अच्छा है। (आरोग्य सितम्बर १९५९)

इस प्रकार गांधीजी की अहिंसा भी बुद्ध-जैसी ही थी। परिणामतः यदि आज की कांग्रेस सरकार मांस, मछली, अंडों का प्रचार कर रही है तो उनके विचार और सिद्धान्त के प्रतिकूल, जैसा कि प्रायः लोग समझते हैं, कार्य नहीं कर रही। श्री विनोबा भावे के भी ऐसे ही विचार हैं। अहिंसा की गांधी जी की व्याख्या अद्भुत है। मांसाहार बिना जीव-हिंसा के प्राप्त नहीं होता और यह जीव-हिंसा का स्थूल रूप है; वाणी और मन की हिंसा तो उसका सूक्ष्म रूप है।

उपर्युक्त विचार महात्मा बुद्ध और गांधी के विचारों की तुलना में कितने दूरगामी और दूरदर्शितापूर्ण हैं, पाठक स्वयं ही इसका निर्णय करें। महापुरुष की साधारण भूलें मनुष्य-जाति को कितना पथभ्रष्ट कर सकती हैं, इसका उदाहरण आज के बौद्ध मतावलम्बी और हमारी सरकार की वर्त्तमान दोषयुक्त अहिंसा-नीति है।

विवेकानन्द

आइये, इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द की मांसाहार-सम्बन्धी मान्यता पर भी थोड़ा विचार कर लें। स्वामी विवेकानन्द के अध्यात्मवादी विचारों और लेखों की संसार में धूम है। अंग्रेज़ी-शिक्षित समुदाय तो आज उन पर लट्टू है। इस देश और विदेश में सर्वत्र उनके पाण्डित्य की धाक है। स्वा० विवेकानन्द के अपने एक शिष्य-द्वारा यह पूछे जाने पर कि संन्यासियों को मांस-मछली खाना चाहिये या नहीं, स्वामी जी ने कहा, 'हाँ निन्दा का भय माने बिना मांस-मछली तुम जी-भर खा सकते हो। शाक-पा खाकर जीनेवाले आमाशय के रोगी साधुओं से सारा देश भर गया है। ये लक्षण सत्त्व के नहीं, भयानक तमस् के हैं और तमस् मृत्यु की कालिमा का नाम है। आकृति मे दमकती हुई कान्ति, हृदय में अदम्य उत्साह, कर्म-चेष्टा की विपुलता और उद्वेलित शक्ति, ये सत्त्व के पहचान हैं। इसके विपरीत तमस् का लक्षण आलस्य और शैथिल्य है, अनुचित आसक्ति और निद्रा का मोह है। कौन भोजन शुद्ध और कौन अशुद्ध है, क्या इसी विचिकित्सा में जीवन बिता दोगे अथवा इन्द्रिय-निग्रह का भी कुछ ध्यान है? हमारा लक्ष्य इन्द्रियों का निग्रह है, मन का वश में लाना है। अच्छे और बुरे का भेद, शुद्ध और अशुद्ध का विचार, इन्द्रिय-निग्रह नहीं, उस उद्देश्य के सहायक-मात्र हैं।' (संस्कृति के ४ अध्याय, पृष्ठ ५०१-५०२)

यह विश्वविख्यात दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द के मांसाहार-सम्बन्धी विचार कितने विलक्षण और युक्तिशून्य हैं? स्वामी जी स्वयं मांसाहारी थे।

दयानन्द

अब दयानन्द के विचारों को देखें। दयानन्द ने सर्वप्रकार के मांसाहार का चाहे वह मारे हुए पशु का हो अथवा स्वाभाविक रीति से मरे हुए का, सर्वथा निषेध

किया है। मनु का प्रमाण देते हुए उन्होंने पशु-पक्षियों के मारने का परामर्श देनेवाले, काटनेवाले, मारने, लेने और बेचने, मांस को पकाने, परोसने और खानेवाले आठ प्रकार के घातक और हिंसक माने हैं। स्वाभाविक रीति से मरे हुए पशु के मांसाहार में हिंसा न होने से उसके खाने में क्या दोष है? इसके उत्तर में दयानन्द ने दो स्थानों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं—

" 'क्या बिना हिंसा किये अर्थात् मरे हुए पशु का मांस खाना भी पाप है?' जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे तो उसका स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी नहीं बच सकेगा, इसलिए किसी अवस्था में भी मांस नहीं खाना चाहिये।"

प्रश्न—"यदि राजपुरुष हानिकारक पशुओं वा मनुष्यों को मार दें; तो फिर क्या उनका मांस फेंक दें?"

उत्तर—"चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें या जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावें, तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती; किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।"

यहाँ मैंने संसार के चार महापुरुषों के मांसाहार-सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक विवेचन किया है। यद्यपि बहुत-से लोग इन महापुरुषों के तुलनात्मक विवेचन को अनुचित कहते हैं किन्तु मेरी दृष्टि में इसमें कोई दोष नहीं है।

महापुरुषों की साधारण भूल के परिणाम संसार के लिए बड़े भयानक सिद्ध होते हैं—इतिहास इसका साक्षी है। अतएव उन पर पर्दा डालना भीरुता और विचारों की दासता है।

उपर्युक्त विचार-विवेचन से पाठक समझ सकते हैं कि सन्त-महात्मा तथा एक आप्त पुरुष और ऋषि में क्या भेद है। आप्त पुरुषों के विचार सदा रहनेवाले और दोषरहित होते हैं।



ऐसा न्याय करो तो जानें !

जिन लोगों को भारतीय चिन्तनशैली पर ही विश्वास नहीं है, उनकी बात ही और है; पर जिन्हें भारत के प्राचीन सदाचार, व्यवहार, नीति और दण्डविधान पर अभिमान है, वे उससे प्रेरणा लेकर आदर्श शासक सिद्ध होते रहे हैं।

अभी दो पीढ़ी पहले की बात है। धरती का स्वर्ग कहलानेवाली भूमि काश्मीर के प्रजा-पालक नरेश थे श्री रणवीरसिंह। उन्हें महाभारत में वर्णित 'राजधर्म' पर बड़ी श्रद्धा थी। समय-समय पर विद्वानों को बुलाकर वे प्राचीन ग्रन्थों में से प्रजा-वत्सल नरेशों के चरित्र सुना करते और विद्वानों से उसी प्रकार का नरेश बनने के लिए आशीर्वाद माँगा करते थे। महाभारत की ये पंक्तियाँ उन्हें बहुत ही प्रिय थीं और वे अक्सर गुनगुनाया करते थे—

मात्स्य न्यायं प्रवर्तते यदि राजा न पालयेत्।

तथा

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति धार्मिकः।

अर्थात्—'यदि राजा धर्मपूर्वक प्रजा का पालन न करे तो जैसे बड़ी मछ[ली] छोटी मछली को खा जाती है, उसी प्रकार बलवान् लोग मदान्ध होकर निर्बल क[ा] सब-कुछ छीन लिया करते हैं' तथा 'जिस देश में भयानक काले रङ्ग का एवं लाल-लाल आँखोंवाला किन्तु धर्म पर आधारित राजदंड (राज का भय) विचरण करता रहता है, वहाँ अपराधी लोग नहीं रहा करते।'

इन पंक्तियों का ही यह प्रभाव था कि वे स्वयं तो आदर्श न्याय करने के लिए हर समय तैयार रहते ही थे, उनके नीचे के कर्मचारी भी कुछ ग़लत काम करते हुए घबराते थे। प्रजा में चारों ओर सुख-चैन था।

एक दिन एक सेठ ने महाराज के दरबार में उपस्थित होकर कहा—"अन्नदाता ! मेरा दिवाला निकल गया है। व्यापार में बुरी तरह घाटा आ गया है और सिर पर दो लाख से अधिक रुपयों का कर्ज़ा हो गया है। माँगनेवाले मुझे बुरी तरह परेशान कर रहे हैं। इसलिए हुज़ूर, मेरे दिवाले की अर्ज़ी मंजूर करके मुझे दिवालिया घोषित कर दें।"

महाराज ने दिवाली तो कई बार देखी-सुनी थी परन्तु 'दिवाला' शब्द उनके लिए एकदम नया था। इसलिए उन्होंने पूछा—"सेठ जी ! दिवाला होता क्या है ?"

सेठ ने रिरियाते हुए कहा—"अन्नदाता ! जैसे शरीर में से प्राण निकल जाते हैं वैसे ही किसी व्यापारी की सारी दौलत व्यापार में डूब जाने से दिवाला निकल जाता है। ब्रिटिश भारत में ऐसे व्यापारी को सरकार कानूनी ढङ्ग से दिवालिया मान लेती है और फिर कोई लेनदार उसे रुपये के लिए तङ्ग नहीं कर सकता।"

महाराज यह सुनकर बोले—"देखिए सेठ जी ! जब आपने लोगों का रुपया लिया हुआ है तो उसके लौटाने की ज़िम्मेवारी भी आप पर है। आप उनसे बचने की कोशिश

मत कीजिए। अपने सगे-सम्बन्धियों से रुपया उधार लेकर वह कर्ज़ा चुकाने का प्रयत्न कीजिए।"

"अन्नदाता ! मेरा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है। मैं तो अब इस दुनिया में जैसे अकेला ही रह गया हूँ।" कहते-कहते सेठ रोने लगा।

उसे इस प्रकार जी छोटा करते देखकर महाराज बड़ी नर्मी से बोले—"सुनो सेठ ! तुम रोओ नहीं। देखो, अगर तुम्हारा इस दुनिया में कोई भी नहीं है तो हम तो हैं ! तुम हमारी प्रजा हो। हम तुम्हारी इज़्ज़त-आबरू बचाने के लिए कुछ भी उठा न रखेंगे। हम यह नहीं चाहते कि हमारी प्रजा में कोई भी आदमी बड़ी मछली की तरह छोटी मछलियों अर्थात् निर्बल एवं दीन लोगों को निगल जाय। इसलिए तुम ऐसा करो, दो लाख रुपये बिना किसी सूद के हमसे ले लो और सबका कर्ज़ा चुका दो। उन बेचारे लोगों को भी तो रुपये की ज़रूरत होगी न ! रहा हमारा रुपया लौटाने का सवाल, सो तुम तो उत्साही व्यापारी हो, कमाकर देते रहना।"

महाराज के इन शब्दों से भी साहूकार को कुछ शान्ति न हुई तो महाराज ने गरजकर कहा "मन्त्री जी ! यह सेठ कहता है कि जैसे मनुष्य के शरीर से प्राण निकल जाते हैं, उसी प्रकार इसका दिवाला निकल गया है। भला, निष्प्राण शरीर को पड़ा रहने दिया जायगा तो भयंकर बदबू भी तो फैलेगी न ! आप इस सेठ की दुकान के बाहर पचास मन लकड़ियों का ढेर लगवाइये और उसमें आग लगाकर इस सेठ को जला दीजिए।"

यह कहते ही महाराज उठ खड़े हुए और सेठ की किसी भी अनुनय-विनय पर कोई ध्यान नहीं दिया।

भरे बाज़ार में हज़ारों मनुष्यों की भीड़ के बीच सेठ की दूकान के सामने जब सेठ जी को पूरे पचास मन लकड़ियों के ढेर पर बैठाया जाने लगा तो सेठ जी बिखर गये। मौत सामने नाचती देखकर उनका लोभ हिरन हो गया और दूसरे ही क्षण सेठ जी के घर में से पूरे दो लाख रुपये निकलकर बाहर आ गये।

मन्त्री जी ने महाराज की सेवा में जाकर निवेदन किया—"अन्नदाता, साहूकार सबका रुपया लौटाना चाहता है और हुजूर से प्राणों की भीख माँगता है।"

महाराज मुस्करा पड़े और बोले—"हमें यह पहले ही पता था मन्त्री जी ! जानते नहीं—यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति धार्मिकः।"

यह है एक भारतीय शासक की कहानी। किन्तु आज के शासकों को ऐसी कहानियाँ सुनने या पढ़ने की फुर्सत कहाँ है ? महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र, शुक्रनीति एवं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों का सार विद्वानों से सुनने के बजाय उन्हें क्लबों में बैठकर सुन्दरियों के नृत्य देखने में जीवन की अधिक सार्थकता जँचती है।

न्याय के नाम पर 'दूध का दूध और पानी का पानी' छानने के लिए भारतीय नरेशों की तरह मुकद्दमों की तह में पहुँचने का कष्ट उठाने के बजाय बहादुरशाह रङ्गीले की तरह सुरा-सुवर्ण सुन्दरी की उपासना करना ही उन्हें ज़्यादा पसन्द है।



आत्म-सुपर्ण

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद् दृंह ॥
—यजु० १७।७२

शब्दार्थ—आत्मन् ! तू (सुपर्ण असि) शोभन पक्षों वाला पक्षी है। तू (गरुत्मान्) महान् आत्मा वाला है। तू (पृष्ठे पृथिव्याः सीद) गौरवपूर्ण आत्मा वाला होकर संसार में विराजमान हो। तू (भासा अन्तरिक्षम् आ पृण) अपनी आभा से अन्तरिक्ष को भर दे। तू (ज्योतिषा दिवम् उत् तभान) अपनी ज्योति से द्युलोक को उन्नत कर और (तेजसा दिशः उद् दृंह) अपने तेज से सब दिशाओं को उन्नत कर।

व्याख्या—मन्त्र में आत्म-उन्नति करते हुए संसार के उद्धार करने का सुन्दर उपदेश और सन्देश है। आइए, एक-एक पद पर चिन्तन और विचार कीजिए—

१. सुपर्णः असि

हे आत्मन् ! तू शोभन पंखों से युक्त पक्षी है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध मन्त्र **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** [१।१६४।२०] में परमात्मा और जीवात्मा दोनों को 'सुपर्ण' कहा है। ब्रह्म और जीव दोनों चेतना और पालन आदि गुणों के कारण सदृश, व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर मित्रतायुक्त, सनातन एवं अनादि हैं। ये दोनों एक-दूसरे का आलिंगन किये हुए वैसे ही अनादि प्रकृतिरूपी वृक्ष पर स्थित हैं।

कैसा है यह आत्म-सुपर्ण ?

तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः।
योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा ॥—तैत्तिरीय ब्राह्म० ४

श्रद्धा उस [आत्म-सुपर्ण] का सिर है। ऋत=ज्ञान उसका दाहिना पंख है, सत्य उसका बायाँ पंख है। चित्तवृत्ति का निरोध उसका आत्मा है और तेज एवं हृदय की विशालता उसकी पूँछ है।

अन्य ग्रन्थों में अन्य पक्ष भी बताये गये हैं। योगवासिष्ठ में कहा है—

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम् ॥ —यो० वा० १।७

जैसे आकाश में पक्षी दो पंखों से उड़ता है, एक से नहीं, उसी प्रकार साधक को ज्ञान और कर्म दोनों के अनुष्ठान से परमपद की प्राप्ति होती है। अतः ज्ञानी और कर्मयोगी बनो।

२. गरुत्मान्

हे आत्मन् ! तू गरुत्मान् है। तू महान् आत्मा है। गरुत्मान् शब्द 'गॄ सेचने' धातु से निष्पन्न होता है। अतः अर्थ होगा—तू सींचने वाला है। अपनी जीवन-वाटिका का सिंचन तू स्वयं ही करेगा। तुम स्वयं अपनी जीवन-नैय्या के नाविक बनो। महात्मा

बुद्ध के उस सन्देश का सदा स्मरण रखो —'**अप्पो दीपो भव**'—तुम स्वयं अपने दीपक बनो। रूसी लेखक गोरकी ने भी कहा है—

Burn like a lamp and lit your way yourself.

दीपक की भाँति जलो और अपने मार्ग को स्वयं प्रकाशित करो।

परमात्मा कुदाल लेकर तुम्हारा मार्ग निर्माण करने नहीं आयेगा, तुम्हें स्वयं ही पुरुषार्थ करके अपना निर्माण करना होगा। अपनी असफलताओं पर निराश मत होओ। मार्ग के अन्धकार से उत्साहहीन मत बनो। वेद के सन्देश को सदा अपने समक्ष रखो—

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।
रुचे जनन्त सूर्यम्॥ —सा० ५०२

मनुष्य अनुकरणप्रिय होते हैं। आगे बढ़ने के लिए, उन्नति करने के लिए वे सदा नया पग उठाते हैं। यदि उन्हें मार्ग नहीं सूझता, यदि मार्ग में अन्धकार दिखाई देता है तो वे प्रकाश के लिए अपनी रुचि के अनुसार नया सूर्य निर्माण कर लेते हैं।

गरुत्मान् का एक अर्थ है—मन और आत्मा के बल से मुक्त होकर गौरवशाली बनना चाहिए।

३. पृष्ठे पृथिव्याः सीद

आत्मन्! तू गौरवपूर्ण बनकर संसार में विराजमान हो, संसार में विचरण कर। पृथिवी की पीठ पर बैठने का तात्पर्य है, संसार में रहना सीखो।

एक बार स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने एक निर्मले सन्त बहादुरसिंह जी से पूछा—"महात्मन्! कोई तत्त्व की बात बताइये।" उन्होंने उत्तर दिया—"मैंने अब तक सत्सङ्ग द्वारा जो कुछ प्राप्त किया है, उसका सार यह है कि मनुष्य को चार बातें आनी चाहियें। जिसे ये चार बातें आती हैं, वह संसार में कहीं रमे, सुखी ही रहेगा और यदि ये चार बातें नहीं आतीं तो चाहे वह विद्वान् हो, साधु हो, धनी हो, गृहस्थ हो—सब जगह दुःख पायेगा। वे चार बातें हैं—१. कहणी, २. सहणी, ३. बहणी और ४. रहणी।

१. कहणी—क्या कहना, कब कहना, कैसे कहना—जिसे यह आता हो, वह सबको अपने वश में कर लेगा।

२. सहणी—सहन करना। कोई कठोर वचन कहता है, अपशब्दों का प्रयोग करता है, लाञ्छन लगाता है, उन सबको सहन करना। जो सहिष्णु नहीं है, वह दुःखी है; जिसमें सहनशीलता है, वह सुखी रहता है।

३. बहणी—बैठना। कहाँ बैठना, किस स्थान पर बैठना—जो इस बात को जानता है वह सर्वत्र सम्मानित होता है। बड़े-बूढ़े, गुरुजनों के पास बैठने का प्रकार और है, संगी-साथियों के पास बैठने की विधि दूसरी है, योगाभ्यास में बैठने का आसन और है। जो बैठने का ठीक प्रकार जानता है, वह सर्वत्र आदर और मान पाता है।

४. **रहणी**—मनुष्य को कहाँ किस प्रकार रहना चाहिए। संसार में रहना सीखो। कैसे रहें संसार में ? संसार में रहो परन्तु अपने लक्ष्य को सदा ध्यान में रखो—

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिय माहीं।
तैसे नर जग में रहे, प्रभु को बिसरे नाहीं ॥

और सुनिए—

आदमी को चाहिए दुनिया में रहना इस तरह।
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कमल ॥

संसार में रहो, खाओ-पिओ, परन्तु परमात्मा को मत भूलो।

'पृथिवी शरीरम्' [अ० ५।६।७] पृथिवी का अर्थ है शरीर। अपने शरीर में बैठकर साधना कर। शरीर में इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है। साधना के द्वारा इन्हें निर्मल और निर्दोष बना। इन्द्रियों के विषयों में फँसकर मनुष्य दुःखी होता है और इन्द्रियों को वश में करके सिद्धि को प्राप्त करता है।

४. भासा अन्तरिक्षम् आ पृण

'आत्मन् ! तू अपनी आभा से, अपनी ज्योति से, अपने ज्ञान की जगमगाहट से अन्तरिक्ष को भर दे।' अन्तरिक्ष के समान समस्त प्रजा को घेरकर तू उनपर छत्रछाया रख।

अन्तरिक्ष का एक अर्थ हृदय भी है। अपने हृदय को **भासा**=उस प्रभु के दिव्य तेज से भर ले। कैसा है उस प्रभु का तेज ? उसका तेज है सहस्रों सूर्यों से भी प्रखर, परन्तु साथ ही अत्यन्त शीतल और आनन्ददायक।

जब साधक इस दिव्य तेज को धारण कर अध्यात्मप्रसाद को प्राप्त कर लेता है तब उसकी स्थिति क्या होती है ? योगदर्शन १।४७ का भाष्य करते हुए व्यास जी ने कहा है—

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति ॥

'प्रज्ञालोक प्रकट होने पर शोचनीय विषयों से रहित हुआ योगी, सोचते हुए जनों को ऐसे देखता है, जैसे पर्वत पर खड़ा हुआ मनुष्य भूमि पर स्थित लोगों को देखता है।'

वह केवल देखता ही नहीं रहता; उनके उद्धार में लग जाता है। महर्षि दयानन्द ने संसार की दुरवस्था को देखकर अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया।

५. ज्योतिषा दिवम् उत् तभान

'आत्मन् ! अपनी ज्योति से द्युलोक को उन्नत कर।' अपने यश और कीर्ति से दिग्दिगन्त को व्याप्त कर दे। द्यौ को भी अपनी ज्योति से द्यौतित कर दे। यशस्वी बन और घोषणा कर दे—

अहमस्मि यशस्तमः ॥—अथर्व० ६।३९।३

'मैं संसार में सबसे अधिक यशस्वी हूँ।'

धन के द्वारा यशस्वी बनो तो इतना धन प्राप्त करो कि डिण्डिम घोष के साथ कह सको—

मूर्धाहं रयीणाम् ॥—अथर्व० १६।३।१

'मैं ऐश्वर्यशालियों का मस्तक हूँ, ऐश्वर्यशालियों में शिरोमणि हूँ ।'

इसी प्रकार बल में, विद्या में, बुद्धि में जिसमें भी यशस्वी बनो, उच्चकोटि के यशस्वी बनो । अपने यश से भूमण्डल को आपूर कर दो ।

ज्योतिषा दिवमुत् तभान् का यह भी तात्पर्य है कि तू ज्ञान से अपने मस्तिष्क को उन्नत रख। विद्या का बड़ा महत्त्व है । विद्या से मोक्ष की प्राप्ति होती है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परागताः ।
न तत्र दक्षिणा यान्ति नाविद्वाꣳ सस्तपस्विनः ॥—शत० १०।४।२।१६

'विद्या के प्रभाव से मनुष्य उस पद को प्राप्त करता है, जहाँ सब सुखों की सीमा है । जो पदार्थ धन, चतुरता और विद्याहीन तप से प्राप्त नहीं हो सकते, वे सब विद्या के प्रताप से प्राप्त हो जाते हैं ।'

निरुक्तकार महर्षि यास्क लिखते हैं—

विद्यातः पुरुषविशेषो भवति ।—नि० १।५

'विद्या से मनुष्य श्रेष्ठ एवं पूजनीय बन जाता है ।'

भीष्म पितामह ने कहा है—

नास्ति विद्या समं चक्षुः । महा० शान्ति० १७५।३५

'संसार में विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है ।'

भर्तृहरि जी लिखते हैं—

विद्याविहीनः पशुः ।—नीति० २०

'विद्या से रहित मनुष्य पशु के समान है ।'

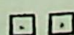
६. तेजसा दिशः उद् दृंह

'आत्मन् ! तू अपने तेज से सब दिशाओं को, दिशाओं में रहनेवाले मनुष्यों को उन्नत कर ।'

अपने जीवन को विद्या से भरपूर करके, अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर, अपने-आपको योग की विभूतियों, अष्टसिद्धियों और नवनिधियों से लैस करके संसार में भ्रमण कर । संसार के मानवों के लिए अपने ऐश्वर्यों को बिखेर दे । अपनी विद्याओं को छिपा मत, उन्हें अपने साथ लेकर मत मर, उन्हें दूसरों को सिखा, दूसरों को प्रदान कर ।

महर्षि दयानन्द व्याख्यान देते हुए योग के गूढ़ रहस्यों का भी उद्घाटन कर देते थे । एक भक्त ने निवेदन किया—"ऋषे ! इन गूढ़ रहस्यों को सभा में नहीं कहना चाहिए । यह तो सुअर के आगे मोती बिखेरने के सदृश है ।" महर्षि ने उत्तर दिया—"इतनी बड़ी सभाओं में जिज्ञासु भी आया करते हैं और ईश्वर की कृपा हो जाए तो सुअर भी हंस बन जाता है ।"

मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं तेजस्वी होकर प्रत्येक दिशा में, जन-जन में, मानव-मानव में, योग, यज्ञ और विद्या का प्रचार और प्रसार करके सभी के जीवन को योगमय एवं यज्ञमय बनाकर उन्नत कर दे ।



एक नवीन प्रकाशन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की शताब्दी के अवसर पर महर्षि के ग्रन्थों के आधार पर संकलित

सत्यार्थ-सरस्वती

[सत्यार्थ प्रकाश का भाष्य]

इसके संकलनकर्त्ता हैं पं० मदनमोहन जी विद्यासागर

ग्रन्थ में १४ प्रवाह हैं। आरम्भ के १० प्रवाह बहुत विस्तृत हैं। सत्यार्थप्रकाश के साथ ही अनेक बातों को महर्षि के अन्य ग्रन्थों से लेकर उस-उस विषय के साथ ग्रथित कर दिया गया है। अनेक स्थानों पर नवीन प्रश्नोत्तर भी जोड़ दिये गये हैं; कठिन स्थलों को सरल बना दिया गया है। जो विषय यत्र-तत्र फैले हुए थे, उन्हें एक स्थान पर रख दिया गया है। अन्त में 'आर्योद्देश्य-रत्नमाला' भी संग्रहीत कर दी गई है। पुस्तक का कागज और छपाई उत्तम है। संकलन में परिश्रम किया गया है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य है २५ रुपये।

पुस्तक सीमित संख्या में छपी है। तुरन्त आदेश भेजें।

५०·०० के ग्रन्थ ४०·०० में !

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में

१. सत्यार्थ प्रकाश २५·००

[सम्पादक पं० भगवद्दत्त]

२. सत्यार्थ सरस्वती २५·००

[लेखक पं० मदनमोहन विद्यासागर]

दोनों ग्रन्थ एक-साथ खरीदने पर ५०·०० के स्थान पर ४०·०० में प्राप्त करें; डाकखर्च अलग।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५·००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, तत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, र्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०·००; राज संस्करण ३०·००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

स्वाध्यायसंग्रह ४.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए.

यज्ञ की महिमा १.५०

बालोपयोगी पुस्तकें

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता १.५०

पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००
वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०
वेदार्थ विज्ञान १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण निवारण ८.००
गर्भस्थिति प्रसव व शिशुपालन ४.००

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०
सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०
बालशिक्षा-धर्मशिक्षा ०.६०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५
व्यवहारभानु १.००
बालशिक्षक ०.३७

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ? २.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ? २.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ? २.००
जो चाहें सो कैसे पायें ? २.००
अपना खर्च कैसे घटायें ? २.००
अवसर को पहचानो ! २.००
अपने आपको पहचानिए ! २.००
आप सफल कैसे हों ? २.००
उन्नति कैसे करें ? २.००
धनकुबेर कैसे बनें ? २.००

सीताराम सहगल

अमर भारती ३.००

मनहर चौहान

महाभारत ३.००
रामायण ३.००

महिला-उपयोगी

सुबोध मेक-अप ४.००

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।

